# उत्तरमण्डल की राजनीति : दशा और दिशा

## बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

पी एच.डी. (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत

2007
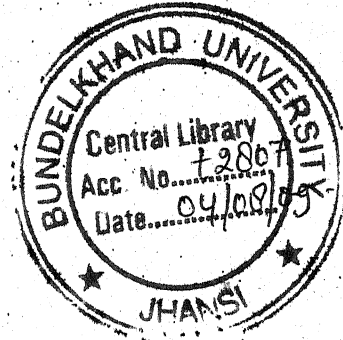
निर्देशक

**डॉ० रिपुसूदन सिंह**
रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
डी.वी. (पी.जी.) कालेज
उरई (जालौन)

अनुसंधानकर्ता

**अतुल आशुतोष शरण गुबरेले**
एम.ए. (राजनीति विज्ञान)
डी.वी. (पी.जी.) कालेज
उरई (जालौन)
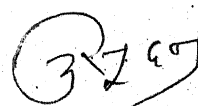
शोध केन्द्र : दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

डॉ० रिपुसूदन सिंह
रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
एवं शोध केन्द्र
डी.वी.(पी.जी.) कॉलेज,
उरई (जालौन)

## प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री अतुल आशुतोष शरण गुबरेले ने राजनीति विज्ञान विषय में "पीएच.डी." की उपाधि हेतु शीर्षक "उत्तरमण्डल की राजनीति : दशा और दिशा" पर मौलिक शोध कार्य मेरे निर्देशन में नियमानुसार अपेक्षित समय सीमा के अन्तर्गत पूर्ण किया है। मैं इसे परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु संस्तुत करता हूँ।

दिनांक 12-09-07
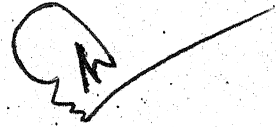
(डॉ० रिपुसूदन सिंह)

## घोषणा-पत्र

मैं, अतुल आशुतोष शरण गुबरेले यह घोषित करता हूँ कि राजनीति विज्ञान विषय के अन्तर्गत ''उत्तरमण्डल की राजनीति : दशा और दिशा'' शीर्षक पर पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं का मौलिक प्रयास है।

मेरी जानकारी में उक्त विषय पर किसी भी अन्य शैक्षणिक संस्था में शोधकार्य नहीं किया गया है।

दिनांक.................

अतुल आशुतोष शरण गुबरेले

# प्राक्कथन

# प्राक्कथन

भारत में लोकतन्त्र की सफलता के लिए नागरिक चेतना युक्त समाज का निर्माण पहला लक्ष्य है जिसकी पूर्ति में जाति आधारित सामाजिक पूर्वाग्रह गम्भीर बाधा सिद्ध हो रहे हैं। देश की चुनाव प्रक्रिया पर इस स्थिति ने अत्यंत दूषित प्रभाव डाला है और जाति नायक बनकर अपराधी तत्व विधायिकाओं में अपना वर्चस्व स्थापित कर रहें हैं। प्रशासन में भी जाति पूर्वाग्रहों का बोलबाला रहने से व्यवसायिक निष्ठा बलवती न हो पाने के कारण गुणवत्ता की भी भारी कमी देखी जा रही है। यहां तक कि न्यायपालिका की भूमिका भी जातीयता के आधार पर कठघरे में खड़ी की जा रही है, जिससे इसकी विश्वसनीयता संदेह से परे नहीं रह गयी है। यह प्रायः मान लिया गया है कि भारत में जातिरहित और वर्ग रहित समाज के निर्माण की प्रक्रिया शुरू करने से पहले जातियों की दीवार तोडना अनिवार्य शर्त है।

इस जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिए हमारे लंबे इतिहास में लगातार प्रयास भी हुए। किंतु इस व्यवस्था से पोषित सवर्ण जातियां शेष आबादी के मुकाबले इतनीं शक्तिशाली थी कि ऐसे प्रयास हमेशा विफल होते रहे। पहले महात्मा बुद्ध ने जातियों के बन्धन को ढीला करने की कोशिश की, लेकिन जाति व्यवस्था की पोषक शक्तियों ने बौद्ध धर्म को देश से निकाल दिया। फिर सिद्धों, नाथों और सन्तों ने ऊँच–नीच का भेदभाव समाप्त करने और समाज में समता का मूल्य स्थापित करने का

प्रयास किया किंतु सगुण भक्ति के आन्दोलन ने उनके प्रभाव को भी नष्ट कर दिया। और फिर वर्ण व्यवस्था की जड़ें मजबूत कर दीं। आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द, महात्मा फुले, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और केशवचन्द्र सेन जैसे समाज सुधारकों ने एक बार फिर वर्ण व्यवस्था को बदलने की कोशिश की तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उनके काम को आगे बढ़ाया गया। लेकिन वर्ण व्यवस्था की ताकतें इतनी मजबूत थीं कि उन्होंने इन सुधारों को आज तक लागू नही होने दिया। इन सुधारों को लोकतांत्रिक पद्धति से लागू करने की कोशिश का परिणाम है आरक्षण व्यवस्था। जिसकी शुरूआत इस सदी के प्रारम्भ में हुयी और उसका अन्तिम चरण मण्डल आयोग की रिपोर्ट है।

स्वातंत्र्योत्तर जिस राजनीतिक परिघटना ने भारतीय समाज को सर्वाधिक झकझोरा वह थी 1990 में केंद्र सरकार द्वारा पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरी में आरक्षण के लिए मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करना। हालांकि पिछड़े वर्गो के लिए सरकारी नौकरी में आरक्षण का प्रावधान कोई अपूर्व बात नहीं थी। मंडल आयोग की रिपोर्ट लागू होने से पहले कई राज्य सरकारें इस दिशा में कदम उठा चुकी थी फिर भी मंडल आयोग की रिपोर्ट लागू होते ही भारतीय समाज में जड़ों तक घात–प्रतिघात का ऐसा वातावरण बना कि मानो अत्यंत तीव्र भूकम्प सी हलचल शुरू हो गयी हो। इसी प्रवृत्ति के चलते उक्त प्रक्रिया को मंडल क्रांति के नाम से संबोधित किया गया है। अनुमान किया जाता है कि राम जन्मभूमि आंदोलन उन्माद भी मंडल क्रांति के गर्भ से उत्पन्न विष

का ही परिणाम था। लेकिन मंडल की उत्ताल तरंगे अब शान्त पड़ चुकीं हैं।

यद्यपि मंडलवादी सामाजिक न्याय के पीछे इरादे नेक थे और इसका अकेला मकसद पिछड़ों को राजसत्ता में भागीदारी देना था। लेकिन अब तो सच यही है कि दलित और अति पिछड़े मंडल को सामाजिक अन्याय का प्रतीक मान रहे हैं क्योंकि बाहुबली पिछड़ों से सम्पूर्ण समाज त्रस्त हैं।

उत्तर मण्डल राजनीति के अध्ययन से इस बात का जायजा लिया जा सकता है कि मण्डल क्रांति अपनी तार्किक परिणति तक कहां तक पहुँची है और भारतीय समाज में इसके जरिए किस तरह के बदलावों को अंजाम दिया जा सकता है। इसके माध्यम से उन कारकों की भी पड़ताल की गयी है जिसकी वजह से मंडल क्रांति इतनी वेगवान होने के बाबजूद विफल होने को अभिशप्त हुई। मुझे उम्मीद है कि ''उत्तर मण्डल की राजनीति : दशा और दिशा'' शोध के माध्यम से कुछ ऐसे मौलिक निष्कर्ष प्रतिपादित करने में सक्षम रहा हूँ जिससे भारतीय राजनीति की आगे की सकारात्मक दिशा की झलक मिल सके।

इस दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुए भारत में सामाजिक परिवर्तनों के आंदोलन के तार्किक अध्ययन की उपादेयता स्वतः स्पष्ट है। मण्डल क्रांति इस तरह के प्रयास की सबसे नवीनतम कड़ी रही है। लेकिन यह भी अपनी परिणति पर नहीं पहुँची। तदापि इस हलचल ने समूचे भारतीय परिदृश्य पर जो प्रभाव डाला, वह अत्यन्त दूरगामी है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से इन प्रभावों का जायजा लेते हुए, उन कारणों

को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है जिनके कारण मंडल क्रांति को ह्रस्र का शिकार होना पड़ा। इसके साथ–साथ के अवशेषों ने उन बिंदुओं को सुस्पष्ट करने का भाव भी शोध में सन्निहित है, जिन पर बल देकर सही दिशा में आगे बढने का प्रयास जारी रखा जा सकता है।

प्रस्तावना में शोध प्रबन्ध की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया है ताकि इस ऐतिहासिक परिघटना और इसके दूरगामी प्रभाव के सार रूप की झलक दिखाई जा सके।

दूसरे अध्याय में "उत्तर मण्डल राजनीति के सैद्धांतिक अध्ययन के पहलू स्पष्ट किए गए हैं।

तीसरे अध्याय में भारत के जाति व्यवस्था के एतिहासिक, सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

चौथे अध्याय में डॉ. राममनोहर लोहिया की राजनीतिक समझ, उनकी वैचारिक राजनीति और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थतियों में उस प्रभाव को स्पष्ट किया गया है।

पांचवे अध्याय में मण्डल आयोग की रिपोर्ट के प्रणेता वी.पी. मण्डल का जीवन व्रत, पिछडी जातियों के लिए इससे पूर्व बने आयोग की रिपोर्ट से उसमें अंतर का ब्यौरा दिया गया है।

छठवे अध्याय में जनता दल में प्रभावी सामाजिक वर्गों, उनके दबाब, तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह के राजनैतिक संकट आदि का समावेश करते हुए, मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के घटनाक्रमें, मीडिया पर उसकी प्रतिक्रिया, राजनैतिक समीकरणों में इससे आए

परिवर्तनों का विवरण देते हुए, उ0प्र0 में सपा, बसपा गठबंधन के शासनकाल का कालखण्ड, भारतीय जनता पार्टी में नेतृत्व के सवाल पर सामाजिक शक्ति परीक्षा और नवीनतम राजनैतिक घटनाक्रम को समेटा गया है।

सातवें अध्याय में मण्डल ज्वार थमने के बाद पिछडी और दलित जातियों के सम्बंधों में आए विखराव का जायजा पेश किया गया है।

आठवें अध्याय उपसंहार में मण्डल आयोग से जुड़े सभी पहलुओं पर समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट में मण्डल आयोग के सन्दर्भ में भविष्य की राजनीति की झलक देखने का प्रयास किया गया है। इसके अर्न्तगत वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर, मण्डल राजनीति के विशेषज्ञ मस्तराम कपूर समाजवादी चिंतक, राज्यसभा सदस्य जनेश्वर मिश्र, जनपद जालौन के चिंतक–पत्रकार, दैनिक जागरण के ब्यूरो चीफ के.पी. सिंह आदि का पहले से तैयार प्रश्नावली के आधार पर साक्षात्कार प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध की तैयारी से लिए मैंने प्रकाशित पुस्तकों, राजनीतिक संगठनों की रिपोर्ट, शोध प्रबन्ध तथा अन्य दूसरे तरह के प्रकाशनों का अध्ययन किया है। इन सभी स्रोतों से उचित सूक्ष्म परीक्षा के साथ सामग्रियां एकत्रित की कमी है। और मूल लेखों से प्रसंशोधित उद्धरण उदित हो गये है तथा प्राप्त लगभग सभी आधार ग्रन्थों का अध्ययन कर तार्किक निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की गयी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करते हुये क्षमा याचना करना चाहता हूँ। यथा सम्भव सुधार और परिश्रम करने पर भी प्रबन्ध में त्रुटियां अवश्य रह गयी होगी क्योंकि कोई भी कार्य कभी भी पूर्णतः का दावा नही कर सकता है। ज्ञान का क्षेत्र अनन्त हैं और उसमें विस्तार मनन चिन्तन की अनन्त सम्भावनायें हैं। इसलिए मैं भी पूर्णतः का दावा नहीं कर सकता। इतना ही कह सकता हूँ, कि उत्तर मण्डल की राजनीति दशा और दिशा नई दृष्टि से मण्डल क्रांति के मूल्यांकन का एक और चरण हैं। प्रत्येक नया चरण विकास का सूचक होता है।

मैं अपने निर्देशक डॉ. रिपुसूदन सिंह के प्रति हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करता हूँ जिनके कुशल निर्देशन एवं स्नेहिल सहयोग से ही यह शोध प्रबन्ध पूरा हो सका। अपने कार्य के सम्पादन में मुझे दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय की विभागाध्यक्ष डॉ. जय श्री पुरवार, डॉ. राजेन्द्र कुमार एवं डॉ. आदित्य कुमार का अमूल्य सहयोग मिला जिनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

मैं सांसद भानुप्रताप वर्मा और उनके सहयोगी श्री कमलेश खरे एवं पार्लियामेंट लाइब्रेरी के असि० डायरेक्टर जगवीरसिंह जी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने पार्लियामेंट के पुस्तकालय में विशेष सहयोग प्रदान किया। हम आभारी है अपने अभिन्न मित्र दीपक यादव के जिन्होंने मण्डल राजनीति के विशेषज्ञ मस्तराम कपूर दलित चिन्तक डॉ. राजकिशोर और राज्यसभा सदस्य जनेश्वर मिश्र के साक्षात्कार उपलब्ध करवाने में सहयोग प्रदान किया। दैनिक जागरण के ब्यूरो चीफ के.पी. सिंह जी का

समय–समय पर मुझे मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है जिनका में ह्रदय से कृतज्ञ हूँ।

मैं श्रीमती अमृतकुंवर महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. सतीश चन्द्र शर्मा, डॉ. सत्यवान, श्रीमती शीलू सेंगर, श्री राजेश कुमार, श्री विनोद त्रिपाठी, श्री योगेन्द्र सिंह और हिमांशु श्रीवास्तव जी का भी आभारी हूँ जिनका प्रस्तुत शोध में सहयोग प्राप्त हुआ। अपने इष्ट मित्र शोधार्थी श्री अरविन्द सिंह जी के द्वारा भी मुझे समय–समय पर सहायता सामग्री उपलब्ध करायी गयी उनका भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

मैं अपने माता–पिता, बहिन और पत्नी का भी आभारी हूँ जिनके स्नेह, प्रेरणा व मार्गदर्शन से इस कार्य को पूरा कर पाया हूँ। अन्त में पुनः अपने शोध निर्देशक डॉ० रिपुसूदन जी का आभार व्यक्त करता हूँ। जिनके कुशल निर्देशन के कारण ही प्रस्तुत शोध तार्किक निष्कर्ष पर पहुँच सका।

# अनुक्रमणिका

# अध्याय - प्रथम

## प्रस्तावना

भारत में जाति–व्यवस्था का इतिहास बहुत पुराना है। वैदिककाल में जब कर्म के आधार पर जाति का निर्धारण होता था तब एक ही परिवार में एक भाई का किसी जाति का और दूसरे भाई का दूसरी जाति का होना सम्भव था। जाहिर है कि इस तरह की परिस्थितियों में जाति के कारण किसी का सम्मान या अपमान कोई मूल्य नहीं रखता था। राजनीतिक स्तर पर उस समय गणतान्त्रिक पद्धति पर संचालित कबीले विद्यमान थे। लेकिन शनैः शनैः राज्य कायम हुए। राजशाही स्थापित हुई तो सामाजिक चरित्र भी बदलने लगा। जिस समय जाति व्यवस्था ने सामाजिक उपनिवेशवाद का रूप लिया उस निश्चित कालखण्ड को चिन्हित कर पाना कठिन काम है। श्रम विभाजन कैसे श्रमिकों का विभाजन बन गया और कैसे समता और समरसता को महत्व देने वाले समाज में शासित कौमें गुलामी से भी बदतर हो गयी, इस बारे में अलग–अलग स्थापनायें व अवधारणायें हैं।

अंग्रेजों का राज कायम होने के बाद दलित जातियों के बीच अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जागरण का एक नया दौर शुरू हुआ। इसकी मुखर अभिव्यक्ति शिक्षा आन्दोलन के रूप में हुई। ज्योतिबाफुले जैसे महापुरुष इसके प्रणेता बने।

अपने साम्राज्यशाही मंसूबों की पूर्ति के लिये अंग्रेज शासक भी इसमें सहायक सिद्ध हुये। दलित जातियों में अधिकारों की उग्रचेतना का परिणाम पेरियार रामास्वामी नायकर के दक्षिण भारत में चलाये गये संघर्षों के रूप में सामने आया। कांग्रेस के भी उदारपंथी नेताओं ने दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति का रुख अपनाने की वकालत की, जिससे कांग्रेस में गरम और नरम दलों के खेमे बन गये। सामाजिक मुद्दे पर विचार के लिए बनाये गये 1887 के सोशल कांफ्रेंस का पंडाल तिलक के नेतृत्व में गरमदलियों ने जला डाला। कालान्तर में बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का समर्थ बौद्धिक नेतृत्व दलित जातियों को मिला, जिसके परिणाम स्वरूप सन 1932 के पूना पैक्ट के माध्यम से अछूत विधानमण्डलों में अपनी अलग सीटें सुरक्षित कराने में सफल रहे। उसी समय गैर–अछूत वंचित जातियों के लिए विशेष अवसर देने की भी सहमति बनी। लेकिन जल्दबाजी के कारण इसके कोई मानक नहीं बनाये जा सके।[1]

स्वाधीनता के उपरान्त गैर–अछूत पिछड़ी जातियों के लिए बने काका कालेलकर आयोग की रिपोर्ट को खुद आयोग के अध्यक्ष के कवरिंग लेटर की वजह से कूड़ादान के हवाले

---

1. मस्तराम कपूर – 'मंडल–रिपोर्ट : वर्ण व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर' मयूर विहार, नई दिल्ली, पृ0 11–12

# अध्याय - प्रथम

## प्रस्तावना

भारत में जाति–व्यवस्था का इतिहास बहुत पुराना है। वैदिककाल में जब कर्म के आधार पर जाति का निर्धारण होता था तब एक ही परिवार में एक भाई का किसी जाति का और दूसरे भाई का दूसरी जाति का होना सम्भव था। जाहिर है कि इस तरह की परिस्थितियों में जाति के कारण किसी का सम्मान या अपमान कोई मूल्य नहीं रखता था। राजनीतिक स्तर पर उस समय गणतान्त्रिक पद्धति पर संचालित कबीले विद्यमान थे। लेकिन शनैः शनैः राज्य कायम हुए। राजशाही स्थापित हुई तो सामाजिक चरित्र भी बदलने लगा। जिस समय जाति व्यवस्था ने सामाजिक उपनिवेशवाद का रूप लिया उस निश्चित कालखण्ड को चिन्हित कर पाना कठिन काम है। श्रम विभाजन कैसे श्रमिकों का विभाजन बन गया और कैसे समता और समरसता को महत्व देने वाले समाज में शासित कौमें गुलामी से भी बदतर हो गयी, इस बारे में अलग–अलग स्थापनायें व अवधारणायें हैं।

अंग्रेजों का राज कायम होने के बाद दलित जातियों के बीच अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जागरण का एक नया दौर शुरू हुआ। इसकी मुखर अभिव्यक्ति शिक्षा आन्दोलन के रूप में हुई। ज्योतिबाफुले जैसे महापुरुष इसके प्रणेता बने।

अपने साम्राज्यशाही मंसूबों की पूर्ति के लिये अंग्रेज शासक भी इसमें सहायक सिद्ध हुये। दलित जातियों में अधिकारों की उग्रचेतना का परिणाम पेरियार रामास्वामी नायकर के दक्षिण भारत में चलाये गये संघर्षों के रूप में सामने आया। कांग्रेस के भी उदारपंथी नेताओं ने दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति का रुख अपनाने की वकालत की, जिससे कांग्रेस में गरम और नरम दलों के खेमे बन गये। सामाजिक मुद्दे पर विचार के लिए बनाये गये 1887 के सोशल कांफ्रेंस का पंडाल तिलक के नेतृत्व में गरमदलियों ने जला डाला। कालान्तर में बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का समर्थ बौद्धिक नेतृत्व दलित जातियों को मिला, जिसके परिणाम स्वरूप सन 1932 के पूना पैक्ट के माध्यम से अछूत विधानमण्डलों में अपनी अलग सीटें सुरक्षित कराने में सफल रहे। उसी समय गैर–अछूत वंचित जातियों के लिए विशेष अवसर देने की भी सहमति बनी। लेकिन जल्दबाजी के कारण इसके कोई मानक नहीं बनाये जा सके।[1]

स्वाधीनता के उपरान्त गैर–अछूत पिछड़ी जातियों के लिए बने काका कालेलकर आयोग की रिपोर्ट को खुद आयोग के अध्यक्ष के कवरिंग लेटर की वजह से कूड़ादान के हवाले

---

1. मस्तराम कपूर – 'मंडल–रिपोर्ट : वर्ण व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर' मयूर विहार, नई दिल्ली, पृ0 11–12

हो जाना पड़ा। इसी बीच कांग्रेस सरकार के जमींदारी उन्मूलन अभियान ने कुलक जातियों में विरोधी भावना जगायी। जाटों के सशक्त नेता चौ0 चरणसिंह के नेतृत्व में कांग्रेस के अन्दर इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विरोध का शंख फूंक दिया गया। संयोग से जाट भी गैर अछूत शूद्र जाति में आते हैं और ब्राह्मणों से इनका पुराना वैर रहा है। सिन्ध के ब्राह्मण राजा दाहिर के कार्यकाल में जाटों को अपमानित करने के लिए जिस तरह के रीति रिवाज बनाये गये थे, उनकी वजह से ही मुसलमानों का आक्रमण होने पर दाहिर को पराजय का मुंह देखना पड़ा। इसी पृष्ठभूमि में चौ0 चरण सिंह ने ब्राह्मण विरोधी चेतना के चलते अपने प्रतिरोध को जातिगत द्वन्द्व की शक्ल में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। उन्होंने प्रधानमन्त्री नेहरू को लिखे पत्रों में सरकार में ब्राह्मण जातियों को जरूरत से ज्यादा प्रतिनिधित्व की शिकायत की। इसकी वजह से खेती करने वाली पिछड़ी विरादरियों में चौ0 चरण सिंह का कद मसीहा के बतौर उभरता चला गया। इधर राम मनोहर लोहिया के नेतृत्व में जनतान्त्रिक प्रक्रियाओं को और सुचारु बनाने के लिए सोशलिस्टों ने कांग्रेस से अलग होकर एक सशक्त राजनीतिक वजूद बना लिया। आगे चलकर जब डॉ0 लोहिया को लगा कि कांग्रेस की सत्ता का विकल्प बनने के लिए सामाजिक खेमेबन्दियों का सहारा लेना

आवश्यक है तो उन्होंने नारा लगा दिया कि "पिछड़ों ने बांधी गांठ, सौ में पावें साठ"। यद्यपि समाज के सभी वंचित वर्गों में एकता के व्यापक उद्‌देश्य से इस नारे को संयुक्त करते हुये उन्होंने दलितों और स्त्रियों के अधिकार की भी बात उठायी थी। लेकिन जैसा कि बाद में वी0पी0 मण्डल ने अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार किया है कि खेतिहर शूद्र जातियां दलित मजदूरों के साथ हर दर्जे की घृणा रखती थी। इसी विरोध के आभास की वजह से डॉ0 लोहिया दलितों को कांग्रेस की गिरफ्त से मुक्त होकर अपने साथ लेने के लिये नहीं मना सके।[2]

सन् 1969 में कांग्रेस छोड़कर चौ0 चरणसिंह उ0प्र0 में संयुक्त विधायक दल के मुख्यमन्त्री बने तो जैसे डॉ0 लोहिया की पिछड़ीवादी राजनीतिक प्रविधि को अपना मुकाम मिल गया। 1977 में केन्द्र में बनी जनता पार्टी सरकार भी एक तरह से संविद सरकार ही थी। सरकार के गठन के समय चौ0 चरणसिंह ने जगजीवन राम को प्रधानमंत्री न बनने देकर डॉ0 लोहिया के सपनों की विरोधाभासी नियति को फिर गहरा दिया। लेकिन इस वजह से प्रधानमंत्री बनाये गये मोरारजी देसाई ने चौ0 चरणसिंह से पिछड़ा जनाधार की विरासत को छीनने के लिए बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री विन्देश्वरी प्रसाद मण्डल की

---

2. वही पृष्ठ 10

अध्यक्षता में मण्डल आयोग का गठन कर डाला। संयोग से इस आयोग ने जब अपनी अन्तिम रिपोर्ट पेश की उस समय इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री पद पर आरूढ़ हो चुकी थीं और उन्होंने रिपोर्ट को ठण्डे बस्ते में डाल दिया।[3]

जनता पार्टी के विभाजन के बाद चौ० चरणसिंह के नेतृत्व में बिहार, उ०प्र०, हरियाणा व राजस्थान आदि राज्यों में लोकदल एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरा और सन् 1989 में जनता दल के गठन में लोकदल का सबसे प्रमुख योगदान रहा है। इसको देखते हुये कहा जा सकता है कि मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करना जनता दल की अपरिहार्य नियति थी। लेकिन इसका श्रेय लिया तत्कालीन प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह ने। उन्होंने इसको व्यापक औचित्य प्रदान करने के लिए संसद भवन में डॉ० अम्बेदकर की प्रतिमा लगवाने, उनकी जयन्ती पर सरकारी अवकाश घोषित करने और मण्डल के पक्ष में जनभावना के एकत्रीकरण के लिए रामविलास पांसवान जैसे दलित नेताओं को आगे रखकर वर्ण व्यवस्था के खिलाफ दलित और पिछड़ी जातियों के ध्रुवीकरण का मंच तैयार करने हेतु प्रतीकात्मक कार्यवाहियां कीं, जिससे दूसरे ध्रुव पर भी जबरदस्त हलचल हुई। मीडिया द्वारा भावनायें भड़काने के कारण

---

3. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी– विन्देश्वरी प्रसाद मंडल और उनका आयोग, चौथी दुनिया, अक्टूबर 1990

सवर्ण छात्रों ने आत्मदाह जैसी घटनायें कर डालीं और शम्बूक वध की कथा के प्रतीक से प्रतिगामी सामाजिक भावनाओं को बल देने के माध्यम समझे जाने वाले महापुरुष राम के अयोध्या में एक विवादित स्थल पर मन्दिर निर्माण का उग्र आन्दोलन शुरू होना इसके गवाह बने। व्यक्तित्वों के टकरावों के चलते जनता दल सरकार का पतन हो गया। जिसमें सर्वाधिक विडम्बना का विषय यह रहा कि पिछड़ी जातियों के प्रमुख नेता मुलायम सिंह यादव, और चौ0 देवीलाल ने उस कांग्रेस का उपकरण बनना मंजूर किया जिसका अपने पूरे राजनीतिक जीवन में उन्होंने जबरदस्त विरोध किया था और जिसने चन्द्रशेखर की सरकार का केन्द्र में गठन, मण्डल आयोग की रिपोर्ट का प्रभाव शून्य करने के लिये कराया था। उच्चतम न्यायालय ने मंडल आयोग के प्रतिवेदन के बारे में अपने ऐतिहासिक फैसले में इस तर्क को मान्यता दे दी कि संविधान में पिछड़े वर्गों का आधार पिछड़ी जातियां हैं। सन् 1993 में सपा—बसपा के गठबन्धन के माध्यम से उ0प्र0 में पुनः एकबार पिछड़ी जातियों की राजनीति वर्णव्यवस्था के विरोध में उन्मुख हुयी। लेकिन जल्द ही यह गठबन्धन बिखर गया और हद तो यह हुई कि मायावती से व्यक्तिगत विरोध की वजह से मुलायम सिंह ने डॉ0 अम्बेदकर के स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान को लेकर सवर्ण नेताओं की

तरह सवालिया निशान उठा दिये और अनुसूचित जाति उत्पीड़न की जबरदस्त मुखालफत भी कर डाली। 20वीं सदी का अन्तिम दशक मण्डल राजनीति का अन्तिम अध्याय सिद्ध हुआ। केन्द्र की संयुक्त मोर्चा सरकार के पतन के साथ ही वर्ण व्यवस्था वादी ताकतें पुनः मजबूत हो गयीं। उ0प्र0 जिसे मण्डल राजनीति का गढ़ कहा जाता है, में पिछड़ी जाति के कल्याण सिंह को मुख्यमंत्री पद से खदेड़कर भाजपा ने मानो इसका उपसंहार लिख डाला। लेकिन नई सदी का पहला दशक खत्म होते–होते समाज की वैज्ञानिक प्राप्ति के सूत्र के अनुरूप यह साबित होता जा रहा है कि इतिहास अपने आपको ज्यों का त्यों कभी नहीं दोहराता। यही वजह है कि तात्कालिक घटनाक्रम को छोड़कर उत्तर प्रदेश में राजनीतिक व्यवस्था के शीर्ष पर सवर्ण सत्ता के युग का अवसान हो गया है। यह दूसरी बात हे कि गैर सवर्ण सत्ताधारी अपने राजनैतिक समायोजन को मजबूत करने के लिये सवर्ण तुष्टीकरण की राह को अपनाने को मजबूर दिखने लगे हैं। इससे रोचक स्थितियां उत्पन्न हुई हैं और कई नये प्रश्न खड़े हो गये हैं? चाहे डॉ0 अम्बेदकर हों या फिर डॉ0 राम मनोहर लोहिया सामाजिक न्याय की राजनीतिक धारा को गति प्रदान करने वाले इन महामानवों ने देश के सफल लोकतंत्र की आवश्यकता के रूप में जाति व्यवस्था को ध्वस्त करने की

राजनीति पर जोर दिया था। जबकि इसकी कोख से उपजे सत्ताधारियों में लोकतान्त्रिक निष्ठा की पूरी तरह कमी है। मण्डल राजनीति की तार्किक परिणति फासिस्ट नेताओं को सत्ता दिलाने वाली साबित हुई है। अतः इस उथल–पुथल से यह निष्कर्ष प्रतिपादित हुआ है कि सामाजिक न्याय की कोई स्वतंत्र राजनीति नहीं हो सकती। लोकतान्त्रिक और संवैधानिक शासन के एक अंग के रूप में ही सामाजिक न्याय की राजनीति समाहित है। इस तथ्य को विस्तृत करना बहुत बड़े जोखिम को मोल लेने के बराबर है।

उत्तर मण्डल राजनीति के सम्बन्ध में शुरूआती क्षणों पर भी विचार करने की जरूरत हैं। जब चौ0 देवीलाल के विद्रोह के कारण जनता दल के भीतर तूफान उठ गया था, वी0पी0 सिंह सरकार संकट में आ गई थी और ओबीसी सांसद देवीलाल के पीछे लामबन्द होने लगे थे। तब एक नेता शरद यादव ने इतिहास की इस अद्भुत घड़ी को भांप लिया था। वे जान गये कि वी0पी0 सिंह को प्रधानमंत्री बने रहना है तो मण्डल आरक्षण लागू करना होगा। जिससे ओवीसी सांसद उनके साथ हो जायेंगे। वी0पी0 सिंह को यह बात समझ में आ गयी और शरद यादव ने इतिहास की एक बड़ी लड़ाई जीत ली। मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर 1980 में सरकार को

सौंप दी थी तब से ही ओबीसी राजनीति में नेताओं की एक नई पीढ़ी खड़ी हुई थी। 1990 में मंडल लागू कर देने के बाद वी0पी0 सिंह, शरद यादव और लालू प्रसाद सामाजिक न्याय के सबसे बड़े प्रतीक के रूप में उभरे। मण्डल कमीशन का लागू होना दलित नेता रामविलास पासवान के उदय का भी यही वक्त रहा है। इस पूरे दौर में मंडलवादी सामाजिक न्याय की वैचारिक कमान शरद यादव के ही हाथ में रही। सामाजिक न्याय का पारा इतने उफान पर था कि प्रगतिशील श्रेणी का शायद ही कोई बुद्धिजीवी ऐसा होगा जिसने सामाजिक बदलाव की इस मुहिम का खुलकर समर्थन न किया हो। मंडलवादी सामाजिक न्यायं का पूरा सैद्धान्तिक आधार ही इस तर्क पर बुना गया था कि चूंकि ओबीसी जातियां परम्परागत समाज के चौथे पायदान पर रहीं और ऐतिहासिक रूप से उन्हें द्विज/सवर्ण जातियों के अत्याचार झेलने पड़े हैं। इसलिये उन्हें दलितों की ही तरह आरक्षण की सुविधा मिलनी चाहिये। इस नारे की एक व्यापक अपील थी। लिहाजा ओबीसी जातियां इसके और इसे उछालने वाले नेताओं के पीछे गोलबंद होना शुरू हो गई। इसका शुद्धतम रूप उत्तर भारत के दो प्रमुख राज्यों बिहार और यू0पी0 में देखने को मिला।

लेकिन मंडल रिपोर्ट लागू हुए एक दशक भी नहीं हुआ

कि सामाजिक न्याय के नेतृत्व में बिखराव आने लगा। लालू से शरद, नीतीश और पासवान अलग हो गये। फिर पासवान ने नीतीश और शरद यादव का साथ छोड़ दिया। मुलायम सिंह यादव पहले ही अपना अलग खेमा बना चुके थे। मंडल लागू करने वाले वी0पी0 सिंह बिल्कुल ही अलग–थलग पड़ गये। अब तो मंडलवादी खेमा उन्हें अपने मंचों पर भी बुलाना उचित नहीं समझता। बहरहाल एक तरफ मंडल का नेतृत्व बिखर गया, तो वहीं परम्परागत रूप से मंडल विरोधी पार्टियों (कांग्रेस तथा बीजेपी) का मंडलीकरण हो गया। यू0पी0 में जब बीजेपी की सरकार बनी तो मुख्यमंत्री कल्याण सिंह बने। मध्य प्रदेश में उमाभारती मुख्यमंत्री बनी। उमा का प्लेसमेंट बाबूलाल ग़ौर के रूप में मिला जो जन्म से यादव हैं। गौर का रिप्लेसमेंट शिवराज सिंह चौहान मिले जो पिछड़ों में किरार जाति के हैं। राजस्थान में बीजेपी ने वसुन्धरा राजे को जाट बहू के रूप में पेश किया। कांग्रेस पार्टी का उत्तर भारत में कुछ खास बचा नहीं, तो लालू के साथ लग गई। हरियाणा में उसने हुड्डा के रूप में एक जाट को प्रोमोट किया। लेकिन इसी बीच एक रोचक बात हुई। राजनीतिक दलों का मंडलीकरण तो हुआ लेकिन सामजिक न्याय का स्लोगन धीरे–धीरे गायब होने लगा। जो बौद्धिक तबका लालू और मुलायम को सामाजिक न्याय के

# अध्याय - प्रथम

# प्रस्तावना

भारत में जाति–व्यवस्था का इतिहास बहुत पुराना है। वैदिककाल में जब कर्म के आधार पर जाति का निर्धारण होता था तब एक ही परिवार में एक भाई का किसी जाति का और दूसरे भाई का दूसरी जाति का होना सम्भव था। जाहिर है कि इस तरह की परिस्थितियों में जाति के कारण किसी का सम्मान या अपमान कोई मूल्य नहीं रखता था। राजनीतिक स्तर पर उस समय गणतान्त्रिक पद्धति पर संचालित कबीले विद्यमान थे। लेकिन शनैः शनैः राज्य कायम हुए। राजशाही स्थापित हुई तो सामाजिक चरित्र भी बदलने लगा। जिस समय जाति व्यवस्था ने सामाजिक उपनिवेशवाद का रूप लिया उस निश्चित कालखण्ड को चिन्हित कर पाना कठिन काम है। श्रम विभाजन कैसे श्रमिकों का विभाजन बन गया और कैसे समता और समरसता को महत्व देने वाले समाज में शासित कौमें गुलामी से भी बदतर हो गयी, इस बारे में अलग–अलग स्थापनायें व अवधारणायें हैं।

अंग्रेजों का राज कायम होने के बाद दलित जातियों के बीच अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जागरण का एक नया दौर शुरू हुआ। इसकी मुखर अभिव्यक्ति शिक्षा आन्दोलन के रूप में हुई। ज्योतिबाफुले जैसे महापुरुष इसके प्रणेता बने।

अपने साम्राज्यशाही मंसूबों की पूर्ति के लिये अंग्रेज शासक भी इसमें सहायक सिद्ध हुये। दलित जातियों में अधिकारों की उग्रचेतना का परिणाम पेरियार रामास्वामी नायकर के दक्षिण भारत में चलाये गये संघर्षों के रूप में सामने आया। कांग्रेस के भी उदारपंथी नेताओं ने दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति का रुख अपनाने की वकालत की, जिससे कांग्रेस में गरम और नरम दलों के खेमे बन गये। सामाजिक मुद्दे पर विचार के लिए बनाये गये 1887 के सोशल कांफ्रेंस का पंडाल तिलक के नेतृत्व में गरमदलियों ने जला डाला। कालान्तर में बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का समर्थ बौद्धिक नेतृत्व दलित जातियों को मिला, जिसके परिणाम स्वरूप सन 1932 के पूना पैक्ट के माध्यम से अछूत विधानमण्डलों में अपनी अलग सीटें सुरक्षित कराने में सफल रहे। उसी समय गैर–अछूत वंचित जातियों के लिए विशेष अवसर देने की भी सहमति बनी। लेकिन जल्दबाजी के कारण इसके कोई मानक नहीं बनाये जा सके।[1]

स्वाधीनता के उपरान्त गैर–अछूत पिछड़ी जातियों के लिए बने काका कालेलकर आयोग की रिपोर्ट को खुद आयोग के अध्यक्ष के कवरिंग लेटर की वजह से कूड़ादान के हवाले

---

1. मस्तराम कपूर – 'मंडल–रिपोर्ट : वर्ण व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर' मयूर विहार, नई दिल्ली, पृ0 11–12

हो जाना पड़ा। इसी बीच कांग्रेस सरकार के जमींदारी उन्मूलन अभियान ने कुलक जातियों में विरोधी भावना जगायी। जाटों के सशक्त नेता चौ0 चरणसिंह के नेतृत्व में कांग्रेस के अन्दर इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विरोध का शंख फूंक दिया गया। संयोग से जाट भी गैर अछूत शूद्र जाति में आते हैं और ब्राह्मणों से इनका पुराना वैर रहा है। सिन्ध के ब्राह्मण राजा दाहिर के कार्यकाल में जाटों को अपमानित करने के लिए जिस तरह के रीति रिवाज बनाये गये थे, उनकी वजह से ही मुसलमानों का आक्रमण होने पर दाहिर को पराजय का मुंह देखना पड़ा। इसी पृष्ठभूमि में चौ0 चरण सिंह ने ब्राह्मण विरोधी चेतना के चलते अपने प्रतिरोध को जातिगत द्वन्द्व की शक्ल में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। उन्होंने प्रधानमन्त्री नेहरू को लिखे पत्रों में सरकार में ब्राह्मण जातियों को जरूरत से ज्यादा प्रतिनिधित्व की शिकायत की। इसकी वजह से खेती करने वाली पिछड़ी विरादरियों में चौ0 चरण सिंह का कद मसीहा के बतौर उभरता चला गया। इधर राम मनोहर लोहिया के नेतृत्व में जनतान्त्रिक प्रक्रियाओं को और सुचारु बनाने के लिए सोशलिस्टों ने कांग्रेस से अलग होकर एक सशक्त राजनीतिक वजूद बना लिया। आगे चलकर जब डॉ0 लोहिया को लगा कि कांग्रेस की सत्ता का विकल्प बनने के लिए सामाजिक खेमेबन्दियों का सहारा लेना

आवश्यक है तो उन्होंने नारा लगा दिया कि ''पिछड़ों ने बांधी गांठ, सौ में पावें साठ''। यद्यपि समाज के सभी वंचित वर्गों में एकता के व्यापक उद्देश्य से इस नारे को संयुक्त करते हुये उन्होंने दलितों और स्त्रियों के अधिकार की भी बात उठायी थी। लेकिन जैसा कि बाद में वी0पी0 मण्डल ने अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार किया है कि खेतिहर शूद्र जातियां दलित मजदूरों के साथ हर दर्जे की घृणा रखती थी। इसी विरोध के आभास की वजह से डॉ0 लोहिया दलितों को कांग्रेस की गिरफ्त से मुक्त होकर अपने साथ लेने के लिये नहीं मना सके।[2]

सन् 1969 में कांग्रेस छोड़कर चौ0 चरणसिंह उ0प्र0 में संयुक्त विधायक दल के मुख्यमन्त्री बने तो जैसे डॉ0 लोहिया की पिछड़ीवादी राजनीतिक प्रविधि को अपना मुकाम मिल गया। 1977 में केन्द्र में बनी जनता पार्टी सरकार भी एक तरह से संविद सरकार ही थी। सरकार के गठन के समय चौ0 चरणसिंह ने जगजीवन राम को प्रधानमंत्री न बनने देकर डॉ0 लोहिया के सपनों की विरोधाभासी नियति को फिर गहरा दिया। लेकिन इस वजह से प्रधानमंत्री बनाये गये मोरारजी देसाई ने चौ0 चरणसिंह से पिछड़ा जनाधार की विरासत को छीनने के लिए बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री विन्देश्वरी प्रसाद मण्डल की

---

2. वही पृष्ठ 10

अध्यक्षता में मण्डल आयोग का गठन कर डाला। संयोग से इस आयोग ने जब अपनी अन्तिम रिपोर्ट पेश की उस समय इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री पद पर आरूढ़ हो चुकी थीं और उन्होंने रिपोर्ट को ठण्डे बस्ते में डाल दिया।[3]

जनता पार्टी के विभाजन के बाद चौ0 चरणसिंह के नेतृत्व में बिहार, उ0प्र0, हरियाणा व राजस्थान आदि राज्यों में लोकदल एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरा और सन् 1989 में जनता दल के गठन में लोकदल का सबसे प्रमुख योगदान रहा है। इसको देखते हुये कहा जा सकता है कि मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करना जनता दल की अपरिहार्य नियति थी। लेकिन इसका श्रेय लिया तत्कालीन प्रधानमंत्री वी0पी0 सिंह ने। उन्होंने इसको व्यापक औचित्य प्रदान करने के लिए संसद भवन में डॉ0 अम्बेद्कर की प्रतिमा लगवाने, उनकी जयन्ती पर सरकारी अवकाश घोषित करने और मण्डल के पक्ष में जनभावना के एकत्रीकरण के लिए रामविलास पासवान जैसे दलित नेताओं को आगे रखकर वर्ण व्यवस्था के खिलाफ दलित और पिछड़ी जातियों के ध्रुवीकरण का मंच तैयार करने हेतु प्रतीकात्मक कार्यवाहियां कीं, जिससे दूसरे ध्रुव पर भी जबरदस्त हलचल हुई। मीडिया द्वारा भावनायें भड़काने के कारण

---

3. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी– विन्देश्वरी प्रसाद मंडल और उनका आयोग, चौथी दुनिया, अक्टूबर 1990

सवर्ण छात्रों ने आत्मदाह जैसी घटनायें कर डालीं और शम्बूक वध की कथा के प्रतीक से प्रतिगामी सामाजिक भावनाओं को बल देने के माध्यम समझे जाने वाले महापुरुष राम के अयोध्या में एक विवादित स्थल पर मन्दिर निर्माण का उग्र आन्दोलन शुरू होना इसके गवाह बने। व्यक्तित्वों के टकरावों के चलते जनता दल सरकार का पतन हो गया। जिसमें सर्वाधिक विडम्बना का विषय यह रहा कि पिछड़ी जातियों के प्रमुख नेता मुलायम सिंह यादव, और चौ0 देवीलाल ने उस कांग्रेस का उपकरण बनना मंजूर किया जिसका अपने पूरे राजनीतिक जीवन में उन्होंने जबरदस्त विरोध किया था और जिसने चन्द्रशेखर की सरकार का केन्द्र में गठन, मण्डल आयोग की रिपोर्ट का प्रभाव शून्य करने के लिये कराया था। उच्चतम न्यायालय ने मंडल आयोग के प्रतिवेदन के बारे में अपने ऐतिहासिक फैसले में इस तर्क को मान्यता दे दी कि संविधान में पिछड़े वर्गों का आधार पिछड़ी जातियां हैं। सन् 1993 में सपा--बसपा के गठबन्धन के माध्यम से उ0प्र0 में पुनः एकबार पिछड़ी जातियों की राजनीति वर्णव्यवस्था के विरोध में उन्मुख हुयी। लेकिन जल्द ही यह गठबन्धन बिखर गया और हद तो यह हुई कि मायावती से व्यक्तिगत विरोध की वजह से मुलायम सिंह ने डॉ0 अम्बेदकर के स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान को लेकर सवर्ण नेताओं की

तरह सवालिया निशान उठा दिये और अनुसूचित जाति उत्पीड़न की जबरदस्त मुखालफत भी कर डाली। 20वीं सदी का अन्तिम दशक मण्डल राजनीति का अन्तिम अध्याय सिद्ध हुआ। केन्द्र की संयुक्त मोर्चा सरकार के पतन के साथ ही वर्ण व्यवस्था वादी ताकतें पुनः मजबूत हो गयीं। उ0प्र0 जिसे मण्डल राजनीति का गढ़ कहा जाता है, में पिछड़ी जाति के कल्याण सिंह को मुख्यमंत्री पद से खदेड़कर भाजपा ने मानो इसका उपसंहार लिख डाला। लेकिन नई सदी का पहला दशक खत्म होते–होते समाज की वैज्ञानिक प्राप्ति के सूत्र के अनुरूप यह साबित होता जा रहा है कि इतिहास अपने आपको ज्यों का त्यों कभी नहीं दोहराता। यही वजह है कि तात्कालिक घटनाक्रम को छोड़कर उत्तर प्रदेश में राजनीतिक व्यवस्था के शीर्ष पर सवर्ण सत्ता के युग का अवसान हो गया है। यह दूसरी बात हे कि गैर सवर्ण सत्ताधारी अपने राजनैतिक समायोजन को मजबूत करने के लिये सवर्ण तुष्टीकरण की राह को अपनाने को मजबूर दिखने लगे हैं। इससे रोचक स्थितियां उत्पन्न हुई हैं और कई नये प्रश्न खड़े हो गये हैं? चाहे डॉ0 अम्बेदकर हों या फिर डॉ0 राम मनोहर लोहिया सामाजिक न्याय की राजनीतिक धारा को गति प्रदान करने वाले इन महामानवों ने देश के सफल लोकतंत्र की आवश्यकता के रूप में जाति व्यवस्था को ध्वस्त करने की

राजनीति पर जोर दिया था। जबकि इसकी कोख से उपजे सत्ताधारियों में लोकतान्त्रिक निष्ठा की पूरी तरह कमी है। मण्डल राजनीति की तार्किक परिणति फासिस्ट नेताओं को सत्ता दिलाने वाली साबित हुई है। अतः इस उथल–पुथल से यह निष्कर्ष प्रतिपादित हुआ है कि सामाजिक न्याय की कोई स्वतंत्र राजनीति नहीं हो सकती। लोकतान्त्रिक और संवैधानिक शासन के एक अंग के रूप में ही सामाजिक न्याय की राजनीति समाहित है। इस तथ्य को विस्तृत करना बहुत बड़े जोखिम को मोल लेने के बराबर है।

उत्तर मण्डल राजनीति के सम्बन्ध में शुरूआती क्षणों पर भी विचार करने की जरूरत हैं। जब चौ0 देवीलाल के विद्रोह के कारण जनता दल के भीतर तूफान उठ गया था, वी0पी0 सिंह सरकार संकट में आ गई थी और ओबीसी सांसद देवीलाल के पीछे लामबन्द होने लगे थे। तब एक नेता शरद यादव ने इतिहास की इस अद्‌भुत घड़ी को भांप लिया था। वे जान गये कि वी0पी0 सिंह को प्रधानमंत्री बने रहना है तो मण्डल आरक्षण लागू करना होगा। जिससे ओवीसी सांसद उनके साथ हो जायेंगे। वी0पी0 सिंह को यह बात समझ में आ गयी और शरद यादव ने इतिहास की एक बड़ी लड़ाई जीत ली। मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर 1980 में सरकार को

सौंप दी थी तब से ही ओबीसी राजनीति में नेताओं की एक नई पीढ़ी खड़ी हुई थी। 1990 में मंडल लागू कर देने के बाद वी0पी0 सिंह, शरद यादव और लालू प्रसाद सामाजिक न्याय के सबसे बड़े प्रतीक के रूप में उभरे। मण्डल कमीशन का लागू होना दलित नेता रामविलास पासवान के उदय का भी यही वक्त रहा है। इस पूरे दौर में मंडलवादी सामाजिक न्याय की वैचारिक कमान शरद यादव के ही हाथ में रही। सामाजिक न्याय का पारा इतने उफान पर था कि प्रगतिशील श्रेणी का शायद ही कोई बुद्धिजीवी ऐसा होगा जिसने सामाजिक बदलाव की इस मुहिम का खुलकर समर्थन न किया हो। मंडलवादी सामाजिक न्यायं का पूरा सैद्धान्तिक आधार ही इस तर्क पर बुना गया था कि चूंकि ओबीसी जातियां परम्परागत समाज के चौथे पायदान पर रहीं और ऐतिहासिक रूप से उन्हें द्विज/सवर्ण जातियों के अत्याचार झेलने पड़े हैं। इसलिये उन्हें दलितों की ही तरह आरक्षण की सुविधा मिलनी चाहिये। इस नारे की एक व्यापक अपील थी। लिहाजा ओबीसी जातियां इसके और इसे उछालने वाले नेताओं के पीछे गोलबंद होना शुरू हो गई। इसका शुद्धतम रूप उत्तर भारत के दो प्रमुख राज्यों बिहार और यू0पी0 में देखने को मिला।

लेकिन मंडल रिपोर्ट लागू हुए एक दशक भी नहीं हुआ

कि सामाजिक न्याय के नेतृत्व में बिखराव आने लगा। लालू से शरद, नीतीश और पासवान अलग हो गये। फिर पासवान ने नीतीश और शरद यादव का साथ छोड़ दिया। मुलायम सिंह यादव पहले ही अपना अलग खेमा बना चुके थे। मंडल लागू करने वाले वी0पी0 सिंह बिल्कुल ही अलग–थलग पड़ गये। अब तो मंडलवादी खेमा उन्हें अपने मंचों पर भी बुलाना उचित नहीं समझता। बहरहाल एक तरफ मंडल का नेतृत्व बिखर गया, तो वहीं परम्परागत रूप से मंडल विरोधी पार्टियों (कांग्रेस तथा बीजेपी) का मंडलीकरण हो गया। यू0पी0 में जब बीजेपी की सरकार बनी तो मुख्यमंत्री कल्याण सिंह बने। मध्य प्रदेश में उमाभारती मुख्यमंत्री बनी। उमा का प्लेसमेंट बाबूलाल गौर के रूप में मिला जो जन्म से यादव हैं। गौर का रिप्लेसमेंट शिवराज सिंह चौहान मिले जो पिछड़ों में किरार जाति के हैं। राजस्थान में बीजेपी ने वसुन्धरा राजे को जाट बहू के रूप में पेश किया। कांग्रेस पार्टी का उत्तर भारत में कुछ खास बचा नहीं, तो लालू के साथ लग गई। हरियाणा में उसने हुड्डा के रूप में एक जाट को प्रोमोट किया। लेकिन इसी बीच एक रोचक बात हुई। राजनीतिक दलों का मंडलीकरण तो हुआ लेकिन सामजिक न्याय का स्लोगन धीरे–धीरे गायब होने लगा। जो बौद्धिक तबका लालू और मुलायम को सामाजिक न्याय के

नाम पर आँख मूंदकर समर्थन दे रहा था उसने एक दशक के भीतर अपने समर्थन का आधार सेकुलरिज्म को बना लिया।[4]

तो क्या इसका मतलब यह है कि मंडल और सामाजिक न्याय के बीच एक बड़ा अन्तर्विरोध खड़ा हो गया है ? सच तो यही है। मंडल आन्दोलन का निचोड़ यह निकला कि द्विज/सवर्ण वर्चस्व को तोड़कर उग्र या अगड़ी ओबीसी जातियों का वर्चस्व कायम किया जाये। यानि एक दबदबे की जगह दूसरा दबदबा। इसीलिये मंडल लागू होने के महज डेढ़ दशक के भीतर ही दलित और अतिपिछड़ी जातियों ने खुद को मंडल से अलग कर लिया। यही दो वर्ग सामाजिक न्याय के सबसे जरूरतमंद हैं।[5]

चन्द्रभान प्रसाद का मानना है कि मंडलवादी सामाजिक न्याय के सेनापति शरद यादव से इतिहास कई सवाल पूछेगा। ये सवाल वी0पी0 सिंह से नहीं पूछे जायेंगे क्योंकि मंडल लागू करने से पहले मंडल के पक्ष में लड़ाई लड़ने का उनका कोई इतिहास नहीं है। इससे पहले सामाजिक न्याय जैसी किसी चीज से भी उनका कोई रिश्ता नहीं रहा। राजीव गांधी से लड़ने के बाद उन्हें अपनी अहमियत दिखानी थी, इसीलिये मंडल

---

4. चन्द्रभान प्रसाद– ''कहाँ खो गया सामाजिक न्याय'', नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 20 दिसम्बर, 2005
5. नवभारत टाइम्स नई दिल्ली, 20 दिसम्बर, 2005

आयोग की रिपोर्ट लागू की लेकिन ऐसा करते हुये उन्होंने यह भी नहीं देखा कि मंडल आयोग के अकेले दलित सदृस्य एल0आर0 नाइक ने क्यों इस रिपोर्ट पर दस्तखत करने से इन्कार कर दिया था। नाइक का कहना था कि मंडल आरक्षण को दो हिस्सों में बांट दिया जाये। पिछड़े और अति–पिछड़े क्योंकि अगड़े ओवीसी इस बात का फायदा हड़प लेंगे। नाईक ने यह बात दिसम्बर 1980 में कही थी और आज वैसा ही हो रहा है। यह सच है कि मंडलवादी सामाजिक न्याय के पीछे इरादे नेक थे और इसका अकेला मकसद पिछड़ों को राजसत्ता में भागीदारी देना था। लेकिन अब तो वास्तविकता यही है कि दलित और अति–पिछड़े मंडल को सामाजिक अन्याय का प्रतीक मान रहे हैं।

यद्यपि आज जातियों में जातिगत आधार पर अपनी पारम्परिक श्रेणी से ऊपर उठने की आकांक्षा भी बलवती होती जा रही है। पिछड़ी जातियाँ दलितों से दूर और अगड़ी जातियों के साथ समीपता और प्रतिद्वन्द्विता के रिश्ते बना रही हैं। इसके चलते शिक्षा के प्रसार, समाज सुधार और सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रयत्न भी हो रहे हैं। ऐसे प्रयास दलितों में भी चल रहे हैं। सभी जातियों में जाति एकता, सामूहिक अभिव्यक्ति और जातीय गौरव की कामना भी तेज हुई है और इस सबके चलते

जिस एकता की जरूरत महसूस हो रही है उसके स्थान पर दूरी, तनाव और वैमनस्य बढ़ते जा रहे हैं।[6]

धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों से इन जातियों को कहीं–कहीं जो दूरी पैदा होती है, उसका भी कारण यह है कि वे अगड़ी जातियों के संकीर्ण तत्वों की तरह सोचने लगती हैं और उसकी पृष्ठभूमि यही है कि सामाजिक स्तर पर वे उनके जितने समान बन सकें, बनें। सामान्य हताशा और नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण का भी प्रभाव है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के अवरुद्ध होने के कारण संकुचित और संकीर्ण भावनायें बढ़ी हैं। इसीलिये साम्प्रदायकि तनाव भी तीखे बने हैं। अतः राजनीतिक चेतना का स्तर नीचे गिरा है और प्रतिक्रियावादी सोच बढ़ी है।[7]

इसमें कोई शक नहीं है कि वर्तमान भारतीय राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण कारक है। बिना इसे ध्यान में रखे राजनीति पर कोई बात नहीं हो सकती। लोहिया भी पिछड़ी जातियों के उत्थान की बात करते हैं पर वह सप्तक्रान्ति की भी बात करते हैं। जे0पी0 सम्पूर्ण क्रान्ति के हिमायती हैं लेकिन सामजिक न्याय के नेतागण भूल जाते हैं कि जातियों में भी

---

6. सुरेन्द्र मोहन– 'समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 281

7. वही, पृ0 282

वर्ग की छायायें हैं। जाति और वर्ग एक दूसरे से बिल्कुल अलग भी नहीं हैं। दोनों के बीच एक द्वन्द्वात्मक रिश्ता भी है। जिस प्रकार सवर्ण का पिछड़ों तथा दलितों के साथ द्वन्द्व है उसी तरह पिछड़ी जातियों और अतिपिछड़ी जातियों के बीच भी एक द्वन्द्व है। यहाँ तक पिछड़ी जातियों के बीच भी। इसका कारण यह है कि आज पूरी लड़ाई सत्ता विमर्श की लड़ाई बन गयी है। वह परिवर्तन की लड़ाई नहीं है।[8] विगत 1 मार्च 2007 को लखनऊ में आयोजित बसपा की सत्ता प्राप्त करने की रैली इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उत्तर मंडल परिदृश्य नया नया रूप ग्रहण कर रहा है। जो राजनीति के असली चरित्र को भी स्पष्ट कर रहा है। उत्तर मण्डल राजनीति को समझने के लिये पूर्व मण्डल, मण्डल व उत्तर मण्डल राजनीति के समस्त बिन्दुओं को एक साथ जोड़कर उसका तथ्यात्मक और शोधपरक विश्लेषण करके एक तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचना होगा। एक जाति का अभिजन दूसरी जाति के अभिजन को हराकर सत्ता हथियाना चाहता है। बगैर इस बात को समझे मंडल के राजनीतिक निहितार्थ को नहीं समझा जा सकता।

---

8. विमल कुमार – रिजर्वेशन से समाज नहीं बदलेगा, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 17 जनवरी, 2006

# अध्याय - द्वितीय

## उत्तर मण्डल राजनीति का सैद्धान्तिक अध्ययन

उत्तर मण्डल राजनीति का दौर 1990 के दशक में शुरू हुआ । उस समय राष्ट्रीय क्षितिज पर एक साथ तीन प्रवृत्तियां उभरी। यह सोवियत संघ के विघटन का भी समय था ,जिसने भारतीय राजनीति में समाजवादी विचारधारा का बोलबाला खत्म कर दिया था।

ये तीन प्रवृत्तियां हैं, मंडल, मंदिर और मार्केट। विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार ने अगस्त 1990 में जब अचानक पिछड़ों के लिये आरक्षण की सिफारिशों को लागू कर दिया तब मंडल पिछडों के उस आंदोलन का पर्याय बन गया। मंदिर से तात्पर्य संघ परिवार के रामजन्मभूमि आंदोलन से है जिसकी परिणति छः दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद के ध्वंस में हुई। तीसरी प्रवृत्ति यानी मार्केट से आशय आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीय अर्थव्यवस्था से जुड़ी नीतियों से है। चार दशकों तक समाजवाद का नाम लेने वाले नीति–निर्माताओं ने यकायक उलटे घूम जाने का निर्णय लिया। इस मुद्दे पर जनादेश लेने की तो दूर, उन्होंने मतदाताओं को इसके लिए आगाह भी नहीं किया । 1991 में कांग्रेस की एक अल्पमत सरकार के वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने इन नीतियों की घोषणा करके दुनिया को ही नहीं,

भारतवासियों को भी हैरत में डाल दिया। इन नीतियों का नियंत्रण अब विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के हाथों में है।[1]

वास्तव में ये परिवर्तन उतने आकस्मिक नहीं थे जितने कि नजर आते हैं। राजीव गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल के पहले दो सालों में इस तरह के कुछ परिवर्तनों की आहट सुनायी दी थी । उनके पहले दो बजटों से 1990 के दशक के आर्थिक सुधारों के संकेत सबसे पहले मिले थे। यह बात अपने आप में काफी विडंबनापूर्ण है कि ये दोनों ही बजट विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पेश किये थे। यह भी सच है कि इन तीन मकारों की शुरुआत के लक्षण पहले चरण में भी मौजूद थे, दक्षिणी राज्यों में अपने अधिकारों के लिए अन्य पिछडे वर्गो ने 1960 के दशक से ही दबाव बनाना शुरू कर दिया था, गोहत्या के विरोध में हिंदू कट्टरपंथियों ने 1966 में अभियान छेड़ा था और 1974 में सरकार को गेहूँ के थोक व्यापार के राष्ट्रीयकरण के अपने फैसले को बदलना पड़ा था। लेकिन ये प्रवृत्तियाँ नब्बे के दशक में ही राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक एजेंडे पर हावी हुई।

इन तीन प्रवृत्तियों के कारण राजनीतिक विमर्श में

---

1. योगेन्द्र यादव– 'कायापलट की कहानी' लोकतंत्र के सात अध्याय, पृ0 52–53 वाणी प्रकाशन प्रा0 लि0 दरियागंज, नई दिल्ली।

बुनियादी बदलाव आया। यह बदलाव किस हद तक था इसे सैद्धांतिक शुद्धतावाद की पैरोकार कम्युनिस्ट पार्टियों की सोच में आये कुछ परिवर्तनों से समझा जा सकता है। अनेक दशकों तक वर्ग के सिद्धांत में बँधी रही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने मंडल आंदोलन के बाद यह सच्चाई मान ली कि भारतीय समाज में सामाजिक असमानता की जनक जाति भी है। दोनों ही कम्युनिस्ट पार्टियों को मंदिर मुद्दे पर यह जरूरी लगा कि वे भाजपा का सामना करने के लिये हिंदू धर्म में प्रगतिशील तत्वों की तलाश करें । अन्य राज्य सरकारों की भाँति पश्चिम बंगाल सरकार भी अपनी विचारधारा के बावजूद राज्य के औद्योगिक विकास के लिये विदेशी निवेश आकर्षित करने में खुल कर जुट गयी । दूसरी पार्टियों ने भी चुपचाप ही सही, पर फौरन अपनी विचारधारात्मक भंगिमाओं में संशोधन किये। जोर–शोर से अपनी स्वदेशी आर्थिक नीतियों की घोषणा करने वाली भाजपा वफादारी के साथ कांग्रेस के आर्थिक एजेंडे को अपनाये रही। मंडल रिपोर्ट के खिलाफ प्रदर्शनों को उकसाने के बावजूद भाजपा ने आधिकारिक रूप से उसे स्वीकार कर लिया और तब से वह लगातार संगठन के भीतर पिछड़े वर्गों के उभार को समायोजित करने की भरसक कोशिशों में लगी हुई है। देर से ही सही कांग्रेस ने भी मंडल परिघटना को मंजूर किया। सोनिया गाँधी

को भी महिला आरक्षण विधेयक पर पार्टी के पिछडे सांसदों की माँगों के आगे झुकना पडा। बाबरी मस्जिद ढहाने पर कांग्रेसी सरकार की चुप्पी और निष्क्रियता भी यह दर्शाती थी कि वह अपने स्थापित सेकुलरवाद के सिद्धांत से डिग चुकी है। इस तरह सार्वजनिक जीवन में व्यवहार के जो स्वीकृत नियम माने जाते थे वे इन तीन मकारों के कारण एक दशक से कम समय में ही बुनियादी रूप से बदल गये। बहरहाल, ये नाटकीय परिवर्तन जनमानस से लोकतंत्र की भाषा की मुठभेड़ की हमारी इस कहानी के अगले अध्याय की रचना करते हैं। अचानक पैदा हुई उथल–पुथल ने एक ऐसा संदर्भ रचा जिसमें नीचे से आये विचार पहली बार सैद्धांतिक विचारधाराओं पर अपनी छाप छोडने की स्थिति में आ गये।

समाज के प्रतीकात्मक वर्चस्व के टूटने का असर दो तरफा साबित हुआ। इसने लोकतांत्रिक बहस के दायरे को बढ़ाया लेकिन उस बहस को कमजोर भी किया। इस चरण में समाज के निचले स्तर से आये कुछ विचार जो मुद्दे उठा पाये उन्हें सैद्धांतिक विचारधाराओं की सरपरस्ती के दौर में उठा पाना मुमकिन नहीं था। इसने कांशीराम और लालूप्रसाद यादव जैसे नेताओं को अपने तबकों की माँगों को सैद्धांतिक विचारधारा के खाँचे में बनाये रखने के बंधन से आजाद किया। दरअसल

यह खाँचा पिछडे और दलितों के आड़े आता था। क्षेत्रीय पार्टियों का अब 'तीसरे मोर्चे' के रूप में एकजुट होना ओर वामदलों से गठजोड़ बनाना भी संभव हो गया था। इसके पहले बुनियादी विचारधारात्मक मतभेदों के कारण वाम दलों द्वारा ऐसा गठजोड़ बनाना मुमकिन नहीं था।

यह सही है कि तीसरे चरण में विचार निचले स्तर से ऊपर की ओर गये पर यह प्रक्रिया सभी विचारधाराओं और सभी मुद्दों के आर–पार नहीं चली। निजीकरण और मुक्त–व्यापार की विचारधारावाली नयी आर्थिक नीति निचले स्तर से आये विचारों से कतई प्रभावित नहीं कही जा सकती । दरअसल इस दौर में वैचारिक विमर्श का एजेंडा ही सिकुड़ चुका था। यही थी वह कीमत जो राजनीतिक विमर्श पर नीचे से पड़े प्रभावों के बदले चुकायी गयी थी । आर्थिक नीति राजनीतिक महत्व के विषयों की सूची से हट चुकी थी। महत्वपूर्ण राजनीतिक फैसले अब तकनीकी दायरे में चले गये थे और विशेषज्ञ लोग उनका गुणा–भाग करते रहते थे। इस चरण में राजनीति की उस असाधारण स्वायत्तता का क्षय हो गया था जो उसे स्वतंत्रता के बाद हासिल हुई थी।[2]

दूसरे चरण ने राजनीति के नये उद्यमियों के लिए यह

---

2. वही पृ0 54–55

जरूरी कर दिया था कि आम मतदाता की पसंद–नापसंद का ध्यान रखें, तो तीसरे चरण ने मतदाता को राजनीति के बाजार के एक घाघ किस्म के ग्राहक में बदल दिया। यह ग्राहक खुद ठोंक–बजा कर बिकाऊ माल को परखना चाहता था। अब पहली बार विचारों के स्तर पर ऊपर और नीचे के बीच आदान–प्रदान की दोहरी प्रक्रिया शुरु हुई। आज तक सत्ता और अधिकार से वंचित तबके लोकतांत्रिक उभार के दौर से गुजरना शुरु हुए। इस सिलसिले में उन दो बड़े और प्रातिनिधिक राष्ट्रीय सर्वेक्षणों के कुछ निष्कर्ष ध्यान देने योग्य हैं जो विकासशील समाज अध्ययन पीठ ने भारतीय मतदाताओं के बारे में 1996 और 1998 के आम चुनावों के वक्त कराये थे। ये सर्वेक्षण बताते हैं कि दलितों में राजनीतिक हिस्सेदारी के प्रति जबर्दस्त उत्साह पैदा हुआ है। यह उत्साह मतदान से ले कर राजनीतिक दलों के सदस्य बनने तक की सभी राजनीतिक गतिविधियों में दिखाई देता है। आदिवासी भी बदलते हुए दिखे। 1996 में उनका मतदान प्रतिशत यकायक बढ गया, हालाँकि उनकी अन्य गतिविधियों में यह बदलाव परिलक्षित नहीं हुआ। महिलाओं की भागीदारी हर क्षेत्र में बढ़ती हुई दिखायी दी, हालाँकि इसका असर मतदान में सबसे कम दिखायी देता है। दुनिया में भारत ही शायद एकमात्र ऐसा बड़ा लोकतंत्र है जहाँ गरीबों में

राजनीतिक सक्रियता उच्च–मध्यमवर्ग से ज्यादा है और वे ही ज्यादा बड़ी संख्या में मतदान करने पहुँचते हैं।

बहरहाल जनाकांक्षाओं से लोकतांत्रिक विचार की इस मुठभेड़ के गर्भ से अपने आप कोई आमूल परिवर्तनकारी राजनीतिक एजेंडा पैदा नहीं हुआ। उच्च सैद्धांतिक विचारधारा की स्थापित भाषा का बोलबाला घट चुका है लेकिन किसी देसी विकल्प के जरिये उसकी भरपायी नहीं हो पा रही है। इसलिए निचले तबकों की राजनीतिक जत्थेबंदियों को एक वैचारिक सूत्र में बाँधने की क्षमता भी नहीं पैदा हो सकी है। निचले उभार, विशेष कर दलित और पिछड़ों के उभार के फलस्वरूप जो आस्थाएँ राजनीति के केंद्र में आयीं, अपने चरित्र में वे प्रायः सबको जोड़नेवाली न होकर खंडित थीं। उनकी चिंताएँ अक्सर एक वर्ग और एक मुद्दे को ले कर रहती थीं। पिछड़ों के उभार की दो राजनीतिक अभिव्यक्तियों के तौर पर सपा और राजद को ही देखें तो पता चलेगा कि वे अब तक कोई एसी पहचान या एजेंडा पैदा नहीं कर सकीं जिससे वे दलित और पिछड़े समाज की एक साथ नुमाइंदगी कर सकतीं। आमतौर पर इन्हें यादवों के हितों को साधनेवाली पार्टियों के रूप में देखा जाता है। इसलिए आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कांग्रेस या अन्य किसी द्विज–आधारित पार्टी के बनिस्बत सपा दलितों की बहुजन

समाज पार्टी से ज्यादा खार खाई नजर आती है।[3]

नयी विचारधारात्मक प्रवृत्तियों की उद्‌बोधक क्षमता और संकीर्ण दृष्टि को बसपा का नारा 'वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा' बखूबी पकड़ता है। एक ओर यह स्वशासन के लिये लोकतांत्रिक अधिकारों का दावा करते हुए मुक्ति का आश्वासन देता है, वहीं दूसरी ओर इस समीकरण में 'हमारा' और 'तुम्हारा' का कड़ा विभाजन जन्म के आधार पर हो जाता है। 'राज हमारा' का इस संदर्भ में तात्पर्य है हमारे समुदाय में जन्मे लोगों का राज। उदार लोकतंत्र की भाषा की महीन परत में लिपटे ये तबकाई दावे शासन–व्यवस्था की समेकित दृष्टि देने की बात तो छोड़िये, भिन्न–भिन्न तबकों के बीच विचारधारात्मक मध्यस्थता की भी कोई कोशिश नहीं करते। बसपा ने ऐसी कोई कोशिश कभी नहीं की कि दलितों और जातिप्रथा के शिकार अन्य पिछड़ों या आदिवासी सरीखे अन्य दलित तबकों के बीच तालमेल बैठाया जाये। लोकतंत्र के पिछले चरण में विभिन्न पार्टियों के भीतर मध्यस्थता और समायोजन के जरिये जो हासिल किया गया था उसे अब विभिन्न पार्टियों के राजनीतिक गठजोड़ों से पाने की कोशिश की जा रही है। इस प्रक्रिया में इन पार्टियों के बचे–खुचे वैचारिक चीथड़ों के जोड़–तोड़ का सहारा लिया जा

---

3. वही, पृ0 56

रहा है। इस तरह दलितों और पिछड़ों के दावों का मिलाप बसपा और सपा के अस्थायी और जन्मजात कमजोर गठबंधन की शक्ल में हमारे सामने आ चुका है।

इस दौर की राजनीति में वयस्क मताधिकार की संपूर्ण संभावनाओं का इस्तेमाल होते हुए दिखता है। लोकतंत्रीकरण मुख्य तौर पर वोट की राजनीति के जरिये होने लगा है। समाज के निचले तबकों के लोगों का व्यापक राजनीतिकरण और हिस्सेदारी इस दौर की उल्लेखनीय उपलब्धि है, खासतौर पर राज्य और स्थानीय स्तर के चुनावों में। शहरी मध्यवर्ग में राजनीति को ले कर साफ तौर पर वैसा उत्साह नहीं है। राजनीतिक व्यवस्था को आज भी बहुत वैधता प्राप्त है, जबकि राजनीतिक नेताओं और संस्थाओं की वैधता घटी है। दूसरे चरण के साथ अगर पहला लोकतांत्रिक उभार साठ के दशक के अंत में माना जाये तो पिछले कुछ सालों में जो कुछ हमने देखा उसे दूसरा लोकतांत्रिक उभार कहना ही ज्यादा मुनासिब होगा।

भाजपा का नाटकीय ढंग से उभर कर सत्ता तक पहुँचना इस दौर की सर्वाधिक उल्लेखनीय राजनीतिक घटना है। अपने पुनर्जन्म के बाद जब 1984 में उसने अपना पहला आम चुनाव लड़ा, तब वह सिर्फ दो सांसदों को लोकसभा में भेज पायी थी। 1989 के चुनाव में वह एक नयी पार्टी जनता दल

की सफलता पर सवारी करते हुए अपने सांसदों की संख्या 80 तक बढ़ा ले गयी। 1991 का चुनाव मंडल–मंदिर की पृष्ठभूमि में लडा गया। जनता दल से अलग होने का भाजपा को लाभ मिला और लोकसभा में उसकी संख्या 121 हो गयी। फिर 1996 में चुनाव हुए और जो त्रिशंकु लोकसभा बनी उसमें 160 सांसदोंवाली भाजपा सबसे बड़ी पार्टी थी। सरकार बनाने का राष्ट्रपति का निमंत्रण उसने फटाफट स्वीकार तो कर लिया पर उसका प्रयोग 13 दिन से ज्यादा नहीं चला। तब कांग्रेस के बाहरी समर्थन से संयुक्त मोर्चा ने नयी सरकार बनायी जो 18 महीनें चली। 1998 के मध्यावधि चुनाव के बाद केंद्रीय सत्ता के लिए भाजपा की लंबी प्रतीक्षा उस समय समाप्त हुई जब वह 180 सांसद ले कर लोकसभा पहुँची। उसके क्षेत्रीय सहभागियों की संख्या जोड़ने पर वह 250 का आँकड़ा पार कर गयी। इस बार वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सरकार तेरह महीने टिंकी। उसके बाद हुए 1999 के मध्यावधि चुनाव में भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को स्पष्ट बहुमत मिला लेकिन भाजपा की संख्या जहाँ की तहाँ रही।[4]

उस समय भाजपा सत्ता तो पा गयी पर अभी उसे स्पष्ट जनादेश पाना बाकी है। कोई 25 फीसदी वोट पा कर

---

4. योगेन्द्र द्विवेदी– सामाजिक समता की सार्थक मुहिम, ''संदेश'' सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ द्वारा प्रकाशित संयुक्तांक अगस्त सितम्बर, 2001 पृ0 7–8

अब भी वह कांग्रेस से जरा पीछे और तकनीकी रूप से दूसरे नंबर की बड़ी पार्टी है। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि भाजपा को अभी भी वे तीन बाधाएँ पार करनी हैं जो सत्ता के उसके रास्ते को ऐतिहासिक रूप से अवरुद्ध करती रही हैं। भाजपा उत्तर और पश्चिम से आगे नही बढ़ पा रही है। यह भौगोलिक बाधा उसने पार करनी शुरू तो की है, पर दक्षिण और पूर्व में जो नये वोट उसने पाये हैं वे उसे अपने सहयोगियों से उधार में मिले हैं। तमिलनाडु में कभी अन्नाद्रमुक, तो कभी द्रमुक, उड़ीसा में बीजू जनता दल और पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस की बदौलत भाजपा ने ये वोट बटोरे हैं। दूसरी बाधा उसके एक वैचारिक अछूत होने की है, जिसने उसे मुख्यधारा से अलग–थलग कर रखा था। समता पार्टी जैसे अपने सहयोगियों की मदद से उसने इस छुआछूत को भी एक हद तक खत्म किया है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि पिछले एक दशक में राजनीति की मध्यवर्ती धारा भाजपा की ओर खिसक गयी है। तीसरी बाधा सबसे बड़ी है और इसे अभी पार करना बाकी है, वह है भाजपा का सामाजिक रूप से विशेषाधिकार पाये लोगों की पार्टी होना। अपनी इस छवि को वह नहीं बदल पा रही है। राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन 1998 के नतीजे बताते हैं कि भाजपा का सामाजिक आधार विस्तृत तो

हुआ है पर वैसा नहीं जैसा पहले कांग्रेस का हुआ करता था। भाजपा द्विज हिंदुओं और शहरी 'मध्य वर्गों' की पसंदीदा पार्टी ही है। हालाँकि उसे अन्य पिछड़ी जातियों के पर्याप्त वोट पाने में सफलता मिली है, पर दलित और आदिवासी उससे अभी भी दूर हैं। अल्पसंख्यकों के बीच थोड़ी–बहुत सफलता पाने के बावजूद भाजपा अभी भी मुसलमानों का भरोसा जीतने की शुरुआत तक नहीं कर पायी है।

भारतीय राजनीति के चरित्र को तो भाजपा ने बदला ही, पर भारतीय राजनीति ने भाजपा का जो कायाकल्प किया, वह भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है। दूसरी तमाम पार्टियों की तरह भाजपा में भी अगड़ों और पिछड़ों के बीच तीव्र होड़ है। आणुविक परीक्षण की अपनी योजना को पूरा करने में वह अवश्य कामयाब रही, पर पिछले दो दशकों में तकरीबन हर बड़ी राजनीतिक पार्टी में इन परीक्षणों के लिये भाजपा जैसा ही उत्साह था। बम की बातों के चक्कर में हमारा ध्यान इस तथ्य से नहीं हट जाना चाहिए कि सरकार चलाने के एजेंडे में भाजपा को सांस्कृतिक एकरूपता वाले अपने आक्रामक एजेंडे के कई आग्रहों को छोड़ना पड़ा। अपने क्षेत्रीय सहयोगी दलों की इच्छाओं का लिहाज करते हुए भाजपा को अयोध्या में राम मंदिर बनाने, कश्मीर का विशेष दर्जा हटाने और समान नागरिक आचार

संहिता बनाने जैसी अपनी पुरानी माँगों को छोड़ना पड़ा।

भाजपा के उभार को दलीय दायरे की व्यापक पुनर्रचना के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। हालाँकि 1989 से 1999 तक के चुनाव कई समान लक्षण दर्शाते हैं, पर यह कहना सही नहीं होगा कि भारतीय संदर्भ में चुनाव ने राजनीतिक पुनर्संयोजन की कोई भूमिका निभायी है, क्योंकि इस देश में कोई स्थिर गठजोड़ रहा ही नहीं। कदम–दर–कदम इन चुनावों ने एक पार्टी की प्रधानता को समाप्त किया और राष्ट्रीय स्तर पर भारत अब बहुदलीय व्यवस्था की ओर बढ़ता नजर आ रहा है। कांग्रेस 1984 से लगातार लोकप्रियता खोती रही है। उसके वोट घटते रहे हैं और अब अन्य पार्टियों की तरह वह भी मात्र एक पार्टी ही रह गयी है, पूरी व्यवस्था की धुरी नहीं। समाज और राजनीति के रिश्तों की ताजा रूपरेखा कांग्रेस के पतन, या उत्तर–कांग्रेस युग की ओर बढ़ने के साथ बनना शुरू हो गयी है। पहले दो चरणों में अगर कांग्रेस के प्रभुत्व की खासियत सामाजिक समुदायों का इंद्रधनुषी गठजोड़ था, तो तीसरे चरण में उस इंद्रधनुष की फाँक–फाँक बिखर रही है। कांग्रेस एक छोटे से इंद्रधनुष को अभी भी थामे हुए है जबकि उसके बड़े प्रतिस्पर्धियों का सामाजिक आधार बेतरतीब बना हुआ है मानो हर कोई इन्द्रधनुष की एक फाँक ले कर भाग रहा हो।

देश के सभी क्षेत्रों में कांग्रेस का सामाजिक आधार भी एक जैसा नहीं रह गया है। देश में कई जगह भाजपा के खिलाफ वह समाज के निचले तबकों की पार्टी है पर पश्चिम बंगाल और केरल जैसे राज्यों में कम्युनिस्टों के मुकाबले वह विशेषाधिकार–प्राप्त लोगों की पार्टी हो जाती है। आजादी के बाद ऐसा पहली बार हुआ कि विभिन्न समुदायों के साथ राजनीतिक पार्टियों की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर हो रही है। इसके साथ–साथ राजनीतिक अभिजनों का सामाजिक दायरा भी बढ़ गया है। देर से ही सही, उत्तर भारत में पिछड़ों को सत्ता–हस्तांतरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है।

राजनीति की इस राष्ट्रीय तस्वीर में नब्बे के दशक में उभरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू साफ नहीं झलकता। यह पहलू है राष्ट्रीय राजनीति से स्वतंत्र राज्यों की राजनीति का उभार। सत्तर और अस्सी के दशकों में राज्यों की राजनीति प्रायः राष्ट्रीय स्तर की घटनाओं को ही प्रतिबिंबित करती थी। विधानसभा चुनावों के लिए लोग इस तरह मतदान करते थे मानो वे प्रधानमंत्री चुन रहे हों। लेकिन अब हालत लगभग उलट गये है। सिर्फ इतना ही नहीं कि राज्यों का रणक्षेत्र राष्ट्रीय घटनाक्रम के प्रभावों से आमतौर पर मुक्त हो गया है बल्कि लोग अब राष्ट्रीय चुनाव में इस तरह मतदान करते हैं मानो वे अपना

मुख्यमंत्री चुन रहे हों। राज्य अब राष्ट्रीय फैसलों को प्रभावित करने की हैसियत पा गये हैं और इसने दलीय प्रणाली को बदल दिया है। राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ बहुदलीय प्रणाली का आभास होता है, वहीं राज्य–स्तरीय तस्वीर दो–दलीय प्रणाली के उभार को दर्शाती है। दलीय प्रणाली के इस चरित्र को 'बहुल द्वि–ध्रुवीयता' (मल्टीपल बाईपोलैरिटी) के रूप में वर्णित किया गया है। आमतौर पर हर राज्य दो–ध्रुवीय राजनीति की ओर बढ़ रहा है। लेकिन अलग–अलग राज्यों में दलों के भिन्न–भिन्न जोड़े होने से बहुदलीय व्यवस्था का आभास मिलता है। ताजा दौर की लोकतांत्रिक राजनीति का यह चित्र पूरा होने में कुछ और समय लेगा। एक चुनाव या शायद एक से ज्यादा चुनावों के बाद वह पूरी तरह स्पष्ट हो सकेगा। बहरहाल, इस दौर की प्रवृत्तियों में एक बात अत्यंत महत्वपूर्ण है और जिसे, हो सकता है कि कभी बाद में इस दौर का निर्णायक लक्षण माना जायेगा। यह है राजनीति की स्वायत्ता का क्षरण। आर्थिक भूमंडलीकरण के चलते यह क्षरण हुआ है और इसे जातीय विभाजनों ने प्रखर किया है। आर्थिक उदारीकरण के मामले में यह प्रक्रिया ज्यादा स्पष्ट दिखती है। आर्थिक नीतियों को उलट दिये जाने के इस कारनामे को चलते हुए एक दशक हो चुका है। इस बदलाव के बारे में न तो चुनाव घोषणा–पत्रों में कोई

जिक्र किया जाता है और न ही प्रचार–अभियान में। नयी आर्थिक नीतियों को लागू करने से पहले और न ही बाद में ऐसा काई साक्ष्य सामने आया है जिससे पता चलता हो कि इन्हें जनसमर्थन हासिल है। इस बीच देश में तीन आम चुनाव हो चुके हैं और तीन प्रधानमंत्री बदल चुके हैं, पर इस मुद्दे पर कोई गंभीर बहस नहीं चलायी गयी है। विश्व बैंक में प्रशिक्षित कुछ गिने–चुने नौकरशाह ही, गाहे–बगाहे राजनीतिक आकाओं के हस्तक्षेप और कुछेक सजावटी परिवर्तनों के साथ तमाम महत्वपूर्ण आर्थिक फैसले कर रहे हैं। आनेवाले लंबे समय में इसका लोकतंत्र की गुणवत्ता पर दूरगामी असर पड़े बिना नहीं रहेगा। दूसरे लोकतांत्रिक उभार ने अब तक वंचित रहे जिन लोगों को राजसत्ता तक पहुँचाया है उन्हें शायद अंत में यह पता चले कि इतिहास ने एक बार फिर उन्हें धोखा दे दिया है। उन्हें शायद यह भान हो कि राजसत्ता के जरिये ज्यादा कुछ नहीं किया जा सकता। लोकतंत्र की विचार–यात्रा की इस कथा की यह शायद सबसे गहरी विडंबना है।

आजादी मिलने के तीस साल बाद निचली जातियाँ कांग्रेस–प्रणाली के खिलाफ अपना असंतोष व्यक्त कर पायीं। किसानों, कारीगरों, दलितों और आदिवासियों ने अपना संरक्षक और आश्रित की तर्ज पर कांग्रेस के साथ अपने जुड़ाव पर

आपत्ति की। उनमें अपनी उस संख्यात्मक शक्ति का एहसास धीरे–धीरे बढ़ रहा था जिसके आधार पर वे राजनीतिक सत्ता में अपनी हिस्सेदारी बढ़ा सकते थे। उनके इस असंतोष ने राजनीतिक कार्यक्रमों और आंदोलनों का रूप लिया। अंग्रेजों के जमाने में निचली जातियों ने ऊँचा सामाजिक दर्जा प्राप्त करने तथा राजसत्ता में बड़े सामाजिक समुदायों के तौर पर हिस्सेदारी का दावा करने के लिए राजनीतिक तरीकों का इस्तेमाल करना शुरू किया था। परंतु आजादी के बाद उनकी यह चेतना कांग्रेस के दबदबे वाले साढ़े तीन दशकों तक सुस्त पड़ी रही।[5]

सत्तर के दशक के मध्य के आस–पास राष्ट्रीय राजनीति पर द्विज दबदबे को गंभीर चुनौती मिलनी शुरू हुई। इसका ज्यादातर श्रेय राज्य की उन सामाजिक नीतियों को जाता है जिन्हें मोटे तौर पर हम आरक्षण के नाम से जानते हैं। हालाँकि इन नीतियों पर अमल में सुस्ती बरती गयी लेकिन फिर भी सत्तर के दशक के अंत तक कई राज्यों में आरक्षण नाम की चीज ने होने के बावजूद प्रत्येक निचले जाति–समूह में एक छोटा, पर प्रभावी तबका उभर आया। इस तबके के सदस्यों को आधुनिक शिक्षा मिल चुकी थी और उसने नौकरशाही और अन्य

---

5. धीरू भाई सेठ– नये मध्यवर्ग का उदय : जाति व्यवस्था वर्ग रचना और लोकतांत्रिक राजनीति ''लोकतंत्र के सात अध्याय'' वाणी प्रकाशन प्रा0 लि0 दरियागंज, नई दिल्ली पृ0 108–109

गैरपरंपरागत व्यवसायों में प्रवेश पा लिया था। यही थी वह प्रक्रिया जिसके कारण निचली जातियों में एक छोटा पर बेहद मुखर राजनीतिक नेतृत्व पैदा हो गया।

भारत में जातियों के राजनीतिकरण की प्रक्रिया अस्सी के दशक की शुरूआत में ही अपने चरम पर पहुँच सकी। पिछड़ी जातियों के लिए बनाये गये दूसरे आयोग (मंडल आयोग) ने सभी राज्यों, केंद्रशासित प्रदेशों और केंद्र सरकार में अन्य पिछड़े वर्गों(छोटी किसान और कारीगर जातियाँ) के लिए भी नौकरियों और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण करने की सिफारिश की। इन सिफारिशों का द्विज और मध्यम दर्जे की उन जातियों ने कड़ा विरोध किया। ये जातियाँ एक अरसे से मध्यवर्ग की सदस्यता से जुड़े फायदे माँग रही थीं। उन्हें लगा कि राजनीति का नया स्वाद चखनेवाली निचली जातियाँ मध्यवर्ग में (खासतौर से लिखाई–पढ़ाईवाली नौकरियों में) जबरन घुस आना चाहती हैं और इसके लिए वे प्रतियोगिता का जरिया न अपना कर जातिगत आरक्षण का माध्यम अपना रही हैं। इस तरह द्विज और मध्य जातियाँ निचली जातियों के टकराव में खड़ी हो गयीं। इसका नतीजा राष्ट्रीय राजनीति में निचली जातियों के जबर्दस्त उभार में निकला और मध्यवर्ग में प्रवेश की महत्वाकांक्षा के साथ निचली जातियों की राजनीति शुरू हुई। इसी आयाम को अंग्रेजी

शिक्षित प्रभु–वर्ग हिकारत से 'राजनीति का मंडलीकरण' कहता है। राजनीति के मंडलीकरण यानी निचली जातियों के राजनीतिकरण की यह प्रक्रिया तभी से भारतीय राजनीति के सामाजिक आधार को आमूल–चूल बदलती जा रही है।

मण्डलोत्तर राजनीति का पहला असर तो यह हुआ कि कांग्रेसी दबदबे का अन्त हो गया। यह दबदबा अभी तक सवर्णों और अंग्रेजी–शिक्षित प्रभु–वर्ग की चौधराहट को कायम रखता था। अब कांग्रेस–प्रणाली के लिए पहले की तरह काम करते रहना नामुमकिन हो चुका था। अब वह क्षेत्रों और जातियों के ऊपर से नीचे की तरफ काम करने वाले समीकरणों के आधार पर राजनीति नहीं चला सकती थी। इस प्रणाली के शीर्ष पर बैठे प्रभु–वर्ग ने महसूस किया कि अब वह निचली जातियों द्वारा नीचे से सत्ता में बेहतर हिस्से और ज्यादा भागीदारी के लिए डाले जानेवाले दबाव को संतुष्ट नहीं कर सकता। सत्तर के मध्य से पूरे अस्सी के दशक तक सामाजिक समूहों के बड़े–तबके कांग्रेस को छोड़ते चले गये । उन्होंने अपने अलग राजनीतिक दलों का गठन किया और बदलते हुए गठजोड़ों की राजनीति में लग गये। कांग्रेस का ऊपर से नीचे की तरफ काम करनेवाला क्षेत्र–जाति समीकरण ध्वस्त हो गया। कांग्रेस, भाजपा और कम्युनिस्ट पार्टियों सरीखे राष्ट्रीय दलों को

राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए अन्य पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों या जनजातियों के सामाजिक–राजनीतिक संगठनों या इनके द्वारा गठित क्षेत्र–जाति दलों के साथ सीधी बातचीत करना अनिवार्य हो गया।[6]

दूसरा परिणाम यह निकला कि देश–भर के पैमाने पर उभरे नये स्तर–विन्यास में पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों ने मजबूत सामाजिक और राजनीतिक तात्पर्य ग्रहण करके नयी–नयी सामाजिक संरचनाएँ बना ली। ये तीनों श्रेणियाँ आरक्षण नीतियों को लागू करने के प्रशासनिक उद्देश्य से ही बनायी गयी थीं। और उनका कोई राजनीतिक मकसद नहीं था, लेकिन उनका जो नतीजा निकला वह पूरी तरह से राजंनीतिक–सामाजिक था। अब ये तीनों श्रेणियाँ राजनीतिक रूप से आत्मसचेत सामाजिक–आर्थिक समूहों की तरह सक्रिय हो गयीं। वे द्विज और मध्यवर्गीय प्रभु–वर्ग द्वारा दिये गये प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व से संतुष्ट होने वाली नहीं थीं। वे तो राजसत्ता अपने हाथ में लेना चाहती थीं। इस तरह राजनीति ऊँच–नीच वाले समीकरणों में होने की बजाय अर्थात् क्षैतिज समानं स्तर पर प्रतिनिधित्व के लिए होने वाली दौड़ के रूप में तब्दील हो गयी जिसमें आरक्षण की नीति के गर्भ से जन्मे

---

6. वही पृ0 110–111

सामाजिक समुदाय पहले से जमे बैठे सवर्णों और मध्यवर्ग से भिड़ रहे थे। इन समूहों ने विभिन्न पार्टियों से सौदेबाजी शुरू की या अपनी नयी पार्टियाँ बना लीं। अब पारंपरिक श्रेणीक्रम के जो भी रूप बचे थे, वे राजनीति में आ कर पूरी तरह ऊर्ध्वाधर की बजाय क्षैत्तिज हो गये।

तीसरा प्रभाव यह पड़ा कि मंडलीकृत राजनीति ने निचली जातियों में मध्यवर्गीय स्तर और जीवन–शैली के प्रति लगाव पैदा कर दिया जिससे वर्ग ध्रुवीकरण की प्रक्रिया रूक गयी। सामाजिक दायरे में इस राजनीति ने नयी विवशताओं को पैदा कर दिया। उच्च और मध्य जातियों की चौधराहटवाले मध्यवर्ग को मजबूरन अपना विस्तार करना पड़ा। अरुचि के साथ ही सही, उसे निचली ज्ञातियों के विभिन्न तबकों के लिए अपने अंदर संभावनाएं निकालनी पड़ीं। उधर निचली जातियों ने राजनीति में गठजोड़ बनाते हुए सामाजिक स्तर पर मध्यवर्ग के बढ़ते हुए दायरे में प्रवेश पाने के लिए आपस में भी तीखी होड़ शुरू कर दी।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आरक्षण ने जातियों के राजनीतिकरण को जबर्दस्त आवेग प्रदान किया । साथ ही अंतरजातीय संबंधों में कर्मकांडों का महत्व नगण्य हो गया। आरक्षण की नीति ने अनगिनत निचली जातियों के लिए शैक्षणिक

और व्यवसायगत विशेष सुविधाएँ मुहैया करके उनके निम्न कर्मकांडीय दर्जे को उनके लिए नुकसानदेह की बजाय लाभकारी बना दिया। अब वे पारंपरिक जाति–व्यवस्था में अपना निचली हैसियत के नाम पर नये सामाजिक स्तर–विन्यास में ऊँची जगह पाने का दावा करने लगे। शहरीकरण और उद्योगीकरण के विस्तार के साथ–साथ जातियों के राजनीतिकरण ने समाज में एक नये किस्म के स्तर–विन्यास के उदय में योगदान किया। इस नये विन्यास में पुराना मध्यवर्ग न केवल संख्यात्मक रूप से विस्तृत हो चुका था बल्कि उसने नयी सामाजिक और राजनीतिक खूबियाँ ग्रहण करनी शुरू कर दी थीं।[7]

उत्तर मण्डल राजनीति में दलित और पिछड़ी जातियां सत्ता केन्द्र के रूप में उभरी जिसमें गठबन्धन की राजनीति का दौर भी शुरू हुआ। इसी समय जातीय नायक के रूप में उभरे चाहे वह मुलायम सिंह यादव हो या मायावती हों या लालू प्रसाद यादव हों। परिणामस्वरूप जातीय ध्रुवीकरण का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। जाति तोड़ो आन्दोलनों से कुछ यही कवायद अंततोगत्वा जातियों के पुनर्स्थापन की परिणति पर पहुँची तो यह सवाल पूछा जाने लगा है कि क्या भारत में जाति व्यवस्था स्थायी है या उसका कोई तोड़ नहीं है?

---

7. वही पृष्ठ, 111–112

# अध्याय - तृतीय

## जातीय व्यवस्था का सूत्रपात

भारतीय समाज के अध्ययन की प्रक्रिया में जाति का सवाल सबसे प्रमुख सवाल रहा है। कुछ इतिहासकार जाति को अवर्गीय पद के रूप में व्याख्यायित करते हैं। कुछ लोग वर्ग, जाति एवं वर्ग इन तीनों पदों में ही घालमेल पैदा कर देते हैं। कुछ इतिहासकारों ने जाति के सवाल पर विचार करते समय यह आरोप लगाया है कि मार्क्सवादी चिंतक इसे समझने में असफल रहे हैं, तो कुछ लोग जाति के पुराने रूपों को पुनः स्थापित करने की कोशिश में एड़ी—चोटी का पसीना एक कर रहे हैं, तो कुछ संगठन वर्णाश्रम व्यवस्था की नये सिरे से स्थापना करना चाहते हैं। इसके लिये वे हिन्दू धर्म को कवच बना रहे हैं। पर यह सच- है कि 'जाति' का सवाल भारतीय समाज का सबसे जटिल सवाल है। मार्क्सवादी नजरिये से देखें तो सबसे पहले यह सवाल उठता है कि जाति को समाज के आधार में माना जाये या अधिरचना (सुपर स्ट्रक्चर) में।[1] पी0सी0 जोशी का मानना है कि "जाति को हम न तो पूरी तरह आधार पाते हैं, न पूरी तरह अधिरचना में, वह दोनों से ही सम्बन्धित है। प्रच्छन्न रूप से वह एक वर्ग भी है। और पूरी तरह वर्ग

---

1. सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के सांस्कृतिक आयाम— प्रो0 पी0सी0 जोशी, पृ0 226

भी नहीं है। वह पूरी तरह आर्थिक वर्ग नहीं है। लेकिन उसे वर्ग से अलग करके देखा भी नहीं जा सकता।"[2]

यह एक तरह से जाति के सामाजिक आधार की खोज की वेदांती व्याख्या हुई। वह वर्ग भी है, नहीं भी है, वह पूरी तरह वर्ग भी नहीं है, पर उसे वर्ग से अलग करके देखा भी नहीं जा सकता। इस तरह की विश्लेषण प्रक्रिया को क्या कहा जाये, जो वैज्ञानिकता के नाम पर वैज्ञानिक नियमों का पालन ही न करे तथा अनैतिहासिक दृष्टि से सारे मामले की खोज–खबर ले। ऊपर से यह, कि मार्क्सवादियों का एक तबका है जो यह मानता है कि भारत में जाति ही वर्ग है।[3]

मार्क्सवादियों ने कभी भी मौजूदा 'जाति' को पूर्व–पूंजीवादी समाज व्यवस्था की 'जाति' का प्रतिरूप नहीं माना। बेहतर होता कि पी0सी0 जोशी किसी मार्क्सवादी को उद्धृत करते। बिना नाम लिये मार्क्सवाद पर तोहमत लगाना कम से कम मार्क्सवादी नजरिया तो नहीं कहा जा सकता। अनैतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जाति के विकास को देखने का यह परिणाम होता है कि हम गलत निष्कर्षों तक पहुंच सकते हैं। 'जाति' के बारे में सही परिप्रेक्ष्य बनाने के लिये यह जरूरी है कि इसकी समूची विकास–यात्रा का अध्ययन किया जाये। तभी हम यह जान

---

2. वही– पृ0 227

3. वही– पृ0 227

सकेंगे कि भारतीय समाज की शुरूआत से लेकर आज तक का समाज कैसा था, उसकी सामाजिक संरचना कैसी थी; तथा उसमें जाति को हम 'आधार' में रखें या अधिरचना में। बिना विकास–प्रक्रिया को समझे तो यही सुविधाजनक होगा कि हम यह मानें कि 'जाति' न तो आधार में है और न अधिरचना में। वह कहीं बीच में हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से जाति के सवाल पर सोचें तो हमें उसे सामाजिक संरचना के विकास के सदंर्भ में रखना होगा। जाति का स्थान इस बात से तय होगा कि श्रम की प्रक्रिया में उसका स्थान कहाँ है। सामाजिक संरचना में उत्पादन शक्ति के रूप में जाति कहाँ है ? उत्पादन की प्रक्रिया में वह अतिरिक्त उत्पादन कैसे करती है ? इन सब सवालों से हमें गुजरना होगा।

डी0 डी0 कोशांबी का मानना है कि वैदिक समाज में जाति का उदय वर्णों के अन्दरूनी विभाजन से नहीं हुआ, बल्कि वर्गों के बाहर से चली आ रही प्रक्रिया से जाति का उदय हुआ।

भारतीय इतिहास की प्रक्रिया में यह देखा गया है कि आदिवासियों को अंतर्भुक्त करने की प्रक्रिया चलती रही है। यह भारतीय समाज के आधार का निर्माण करने वाली प्रभावी

प्रवृत्ति है। विशेषकर 'जाति' के निर्माण में इस प्रक्रिया ने मदद की।[4] डी0 डी0 कोशांबी ने माना कि उत्पादन की अवस्था में जाति ही वर्ग के रूप में जानी जाती है।[5] जनजातियों के आम भारतीय समाज में शामिंल होने की प्रक्रिया ने बड़े पैमाने पर उन जातियों को शामिल किया जो घुमंतू थे तथा अपने लिये भोजन जुटाते घूमते थे। वनों में रहते थे। इनसे ही कालांतर में किसान वर्ग का विकास हुआ।

आम समाज में 'सगोत्रीय' विवाह संस्कार की शुरूआत इन्हीं जनजातियों के प्रभाव के कारण हुई। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि जब बुद्ध ने कहा कि वे शाक्य जाति से हैं तो इसका स्वाभाविक अर्थ जनजाति है।

बुद्ध के यहाँ शाक्य बंधुओं की कथा देखकर लगता है कि वे अपनी ही बहनों से शादी करते थे तथा अपनी जनंजाति से बाहर शादी करने से परहेज करते थे। ये ही जनजाति लोग जब आम समाज में शामिल हुये तो अपने साथ 'सगोत्रीय विवाह' संस्कार भी ले आये।

इरफान हबीब का मानना है कि जनजातीय

---

4. ऐन इण्ट्रोडक्शन टू द स्टैडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री0, डी0डी0 कौशाम्बी, पृ0 25

5. कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एंसीएंट इण्डियाइन हिस्टोरिकल आउट लाइन, डी0डी0 कौशाम्बी, पृ0 सं0 50

लोग ही किसान समुदाय का प्रतिनिधित्व करते थे, जिन्होंने कालांतर में अपनी किसान जाति के तौर पर क्षेत्र भी बनाये।[6]

डी० डी० कोशांबी ने रेखांकित किया है कि नागा जनजाति के लोगों ने आर्यों को समृद्ध किया। जो लोग निचली जातियों में गिने गये वे इतनी निचली जाति में थे कि उनको चारों वर्णों के बाहर जगह दी गई ? इसके कारण 'मिश्रित' जातियों का उदय हुआ। इन मिश्रित जातियों की चर्चा 'मनुस्मृति' में भी मिलती है। इन जातियों को कृषि उत्पादन की प्रक्रिया से बाहर रखा गया था। इसके कारण बड़ी तादाद में भूमिहीन बेगारों का जन्म हुआ जिनका बड़ी जोत के क़िसानों एवं मालिकों ने उपयोग किया। यहां उल्लेखनीय है कि शुरू में जनजातियों को कृषि क्षेत्र में शामिल नहीं किया गया। उनके पुराने आजीविका के रूपों को नष्ट कर दिया गया या फिर बदल दिया गया।[7] इनको जो काम मिला, उसके कारण व्यापक समाज के प्रति इनकी घृणा बढ़ गई। असल में, यह बुनियादी अंतर्विरोध था जो श्रम करने वाली जनजातियों या जातियों और चारों वर्णों के बीच पैदा हुआ था। यह सीधे–सीधे हितों की

---

6. कास्ट एंड मनी इन इण्डियन हिस्ट्री– हरफान हबीब।

7. कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एंसीएंट इण्डिया, डी०डी० कौशाम्बी, पृ० 5

टकराहट थी। यह अर्थशास्त्रीय तथ्य है।

चारों वर्णों एवं जनजातियों के बीच में उभरे अंतर्विरोध को नजरंदाज कर देने से हम उस प्रक्रिया को समझ ही नहीं सकेंगे, जिसके कारण किसान समुदाय का निर्माण करने में मदद मिली। सामाजिक विकास की अवस्था में चार्तुवर्ण्य का जन्म एक तरह से वर्गीयसमाज की शुरूआत का संकेत है। चार वर्णों में समाज का विभाजन एक तरह से सामाजिक विभाजन था। यह उत्पादन, वितरण और उपभोग की एक व्यवस्था थी। कालांतर में, यह वर्ण विभाजन पुश्तैनी सजातीय विभाजन हो गया जिसने स्पष्ट रूप से वर्ग रचना और वर्ग सम्बन्धों को विकृत एवं रूपांतरित कर दिया। इस प्रक्रिया को समझने के लिये अतीत के इतिहास में जाना समीचीन होगा।

## ऋग्वैदिक काल (ई.पू. 1500 से 1000 ई.पू.)

यह मुख्य रूप से घुमंतू तथा पशुचारी समाज का युग है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरुष सूक्त में (जो कि क्षेपक माना जाता है) चार वर्णों का जिक्र है। यह हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह उत्तर वैदिक काल की रचना है। रामविलास शर्मा ने 'मार्क्स और पिछड़े हुये समाज' नामक पुस्तक में पुरुष सूक्त वाले वर्णभेद वाले हिस्से की

व्याख्या करते हुये लिखा कि 'जिस पुरुष को देवता विभाजित करते हैं, उसका मुख ब्राह्मण है। उसकी बाहें राजन्य हैं, जांघें वैश्य हैं और उसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये। ऋग्वेद में शूद्र वर्ण का यह एकमात्र उल्लेख है। चारों वर्ण एक ही पुरुष – एक ही समाज से सम्बद्ध हैं। वे किसी भी अन्य पुरुष – राक्षस या दैत्य समाज से लाकर तीन वर्णों वाले समाज में जोड़े नहीं गये।[8]

इस व्याख्या के माध्यम से यह पता चलता है कि वैदिक समाज में विभाजित समाज नहीं था। बी0 एम0 आप्टे ने 'वैदिक एज' में लिखा है कि वैदिक समाज में ब्राह्मण अलग वर्ण न बने थे। क्षत्रियों और वैश्यों के वर्ण तो और भी न बने थे। ऋग्वेद काल में सूक्त रचने और यज्ञ करने का अधिकार पुरोहित परिवारों तक सीमित नहीं था।[9] अलग जातियों का निर्माण तो और भी नहीं हुआ था। आप्टे कहते हैं कि अतः पेशा वंशगत हो, यह सिद्धान्त अभी स्वीकार नहीं किया गया था। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि कुछ पेशों को, जैसे पुरोहित के पेशों को या अभिजात भेद को मान्यता प्राप्त थी। किन्तु अन्य देशों या समाजों की तरह इनमें वंशगत

---

8. मार्क्स और पिछड़े हुये समाज– रामविलास शर्मा, पृ0 206

9. द वैदिक एज : वी0एम0 आप्टे– पृ0 388

बनने की प्रवृत्ति पाई जाती थी। किन्तु अन्य देशों या समाजों की तरह इनमें समाज के सभी अंगों के लोग शामिल होते रहे होंगे।[10] रामविलास शर्मा का मानना है कि ऋग्वेदिक काल में ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण उभर रहे थे। पुरोहित ब्राह्मण हुये। अभिजात क्षत्रिय हुये। सवाल यह है कि उस समय वैदिक समाज में वैश्य और शूद्र वर्ण भी उभर रहे थे या नहीं। कृषि और पशुपालन शूद्रों के लिये है। समाज द्विजों और शूद्रों में विभाजित नहीं हुआ था। अभी अवकाश भोगी वर्ग न बना था। इसलिये सेवकों का अलग वर्ग भी न था।[11]

यहां सवाल उठता है कि ऋग्वैदिक काल में भू–सम्पत्ति का स्वरूप एवं समाज से उसका रिश्ता कैसा था? इसे जाने बिना हम वैदिक समाज को समझ ही नहीं सकते। इस दौर के लोगों के लिये भूमि केवल भूमि ही थी, जिससे वे अपनी आजीविका का उत्पादन करते थे। कबीलों और विशों को पशुचारण के लिये चरगाहों की आवश्यकता थी। उनके जीवन में कृषि की भूमिका बहुत कम थी, जबकि भूमि का विस्तार असीम था। यही वजह है वर्ण–भेद दिखाई नहीं देता। इस काल में ऋत् की विचारधारा का प्रभाव मौजूद था। ऋतयुग

---

10. वही

11. मार्क्स और पिछड़े हुये समाजः रामविलास शर्मा– पृ0 206–207

का प्रकृतिवाद ऋग्वैदिक विचारों और अनुष्ठानों तक कायम रहा। यज्ञ, ऋग्वैदिक युग के केन्द्र थे। वे मानते थे कि प्रकृति और मानव समाज अपने आंतरिक नियमों द्वारा शासित है, न कि किसी बाहरी दैवी शक्ति की इच्छा से तमाम तरह के प्राकृतिक उपादान सूर्य, अग्नि, वायु, वर्षा, नदियां, पेड़ इत्यादि सभी मानवीय गुण धर्म से सम्पन्न थे और अपरिमित शक्ति के स्रोत थे। इन दोनों कालों में कार्य और विचार का विभाजन नहीं हुआ था। दोनों अलग–अलग नहीं थे। मसलन, एक ऋग्वैदिक ऋषि ने कहा कि वह अपनी कविता वैसे ही रचना है जैसे एक रथ को शिल्पी बनाता है। इसका अर्थ यही है कि इस समय तक विचारकों तथा श्रमिकों का अलगाव शुरू नहीं हुआ था। श्रम का अभूतपूर्व सम्मान था।

**<u>ब्राह्मण उपनिषद काल (1000 ई.पू. से 600 ई.पू. तक)</u>**

भारतीय समाज में इस काल को पशुपालन की अवस्था से कृषि व्यवस्था की ओर सक्रमण के काल के रूप में जाना जाता है। इस दौर में अनेकों किस्म का खाद्यान पैदा होता है। वर्ण भिन्नता का विकास इस दौर में होता है। वर्ण बनने की जो प्रवृत्तियां ऋग्वैदिक काल के अंत में शुरू हुई थी, वे इस काल में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगीं।

दरअसल, वर्णव्यवस्था की जरूरत उत्पादन की नई प्रणाली के कारण ही पैदा हुई थी, जिसमें वैश्य, दास कर्मकर और शिल्पी के रूप में शूद्र भी उत्पादन में भाग लेते थे।[12]

प्रो0 रामशरण शर्मा का मानना है कि उत्पादन के साधनों का असमान बंटवारा ही समाज में वर्णों को जन्म देता है। वर्ण व्यवस्था में यह बंटवारा हुआ। हालांकि असमानता उत्पादन के साधनों के बंटवारे में उतनी नहीं आई, जितनी उत्पादन के फल के बंटवारे में आई।[13]

चातुर्वर्ण का सामाजिक संरचना में इस तरह विभाजन किया गया जिससे समाज चार भागों में विभाजित हो गया। इनमें ब्राह्मण धर्म और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रतिष्ठापक (बुद्धि के व्यवसायी) क्षत्रिय योद्धा और शासक, वैश्य कृषि और पशु पालन जिनका धंधा था (अनेक शताब्दियों बाद व्यापार) और शूद्र थे, जो उक्त उच्च वर्णों के सामूहिक गुलाम थे।

वर्णों में विभाजित समाज में एक तरफ अवकाशभोगी वर्ग था, जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय थे, तो दूसरी ओर उत्पादक श्रम में लगे वैश्य एवं शूद्र वर्ण थे। इन दोनों में संघर्ष भी था। फर्क सिर्फ इतना था कि वैश्य वर्ण के लोगों

---

12. 'कथन' पत्रिका– मई–जून 1982, प्रो0 आर0एस0 शर्मा, पृ0 48

13. वही– पृ0 47

को ब्राह्मण–क्षत्रिय जैसे ही अधिकार प्राप्त थे, पर उसका स्थान इनके नीचे था। पर शूद्रों के ऊपर था।

इस युग में वर्णों का एक वर्ग सोचने–विचारने का काम करने लगा, जब कि उसी के नियंत्रण और अधिकार में काम करने वाले वर्ण आ गये। मानसिक कार्य करने वाले वर्ण ने शारीरिक श्रम करने वाले वर्ण को अपना दास बना लिया। यह वर्ग भेद ही है, जिसे शोषक और शोषित के रूप में जाना जाता है।

मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच पैदा हुये इस विभाजन ने विचारधारा के क्षेत्र में क्या प्रभाव छोड़ा ? इस प्रश्न का जवाब फेडरिक एंगेल्स ने बहुत सटीक दिया है। उनका मानना है कि प्रथमतः मस्तिष्क की उपज लगने वाले और मानव समाजों के अंदर प्रतीत होने वाले इन सारे सृजनों के आगे श्रमशील हाथ के बहुत सामान्य उत्पादन पृष्ठभूमि में चलें गये। ऐसा इस कारण हुआ कि समाज के विकास की बहुत प्रारम्भिक मंजिल से ही श्रम को नियोजित करने वाले मस्तिष्क ने, जो नियोजित श्रम को दूसरे के हाथों से करा सकने में समर्थ था, सभ्यता की द्रुत प्रगति का समूचा श्रेय मस्तिष्क को, मस्तिष्क–विकास एवं उसके क्रिया–कलाप को दे डाला।

मनुष्य अपने कार्यों की व्याख्या अपनी

आवश्यकताओं से करने के बदले अपने विचारों से करने के आदी हो गये (हालांकि आवश्यकतायें ही मस्तिष्क में प्रतिबिंबित होती है तथा चेतना द्वारा ग्रहण की जाती है), अतः कालक्रम उस भाववादी दृष्टिकोण का उदय हुआ जो प्राचीन यूनानी–रोमन समाज पतन के बाद से तो खासतौर पर मानवों के मस्तिष्क पर हावी रहा है। वह आज तक भी उनके ऊपर हावी है।[14]

भारतीय समाज में तकरीबन यही हुआ। उपनिषद् काल में भाववाद बहुत ही शक्तिशाली रूप में उभर कर सामने आया, जिसमें आत्मा को जीवन की प्रमुख शक्ति बना दिया गया। विचारधारा के रूप में यह वेदांत में व्यक्त हुआ। एंगेल्स ने बतलाया है कि एकेश्वरवाद ने तमाम आदिम देवताओं को एक ही ईश्वर में समाहित किया। आगे धर्म के अन्तर्गत पैदा हुआ ईश्वर तो भाववादी दर्शन में विचार का दैवीकरण है। उपनिषद्कालीन ऋषियों ने भी यही किया। उन्होंने ऋग्वैदिककालीन अनेकों देवताओं को एक ही देवता 'ब्रह्म' में समाहित कर दिया, जो ब्रह्मांड का अमूर्त सारतत्व था।

असल में उस युग के चिंतकों ने सम्पूर्ण प्रक्रिया को इसके तार्किक निष्कर्षों तक पहुंचाया। मानवीय विचार को जीवन–व्यवहार के कार्यकलाप की संचालन शक्ति मानते हुये

---

14. बानर से नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका: एंगेल्स, संकलित चनायें–मार्क्स–एंगेल्स–1978 खंड 3, भाग 1, पृ0 72

उसे आत्मा (व्यक्ति की आत्मा) में सीमित कर दिया। चूंकि दोनों ही विशुद्ध चेतना और विशुद्ध विचार से निःसृत थे, इसलिये दोनों एक जैसे ही माने गये। इस प्रक्रिया में आत्मा और ब्रह्म दोनों को मिलाकर चरम सत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया।

ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में शारीरिक श्रम को बहुत असम्मानजनक और घृणा योग्य बतलाया गया। मेहनत करने वालों को कुत्तों और सुअरों के समकक्ष रखा गया। यह भी प्रचार किया गया कि चातुर्वर्ण्य का निर्माण ब्रह्मा ने किया है। निचले वर्णों की बदहाल स्थिति के लिये उनके पूर्व जन्म के कर्म जिम्मेदार हैं। इनकी आत्मा को मोक्ष तभी प्राप्त हो सकता है, जबकि चातुर्वर्ण्य के विधिविधान का सख्ती से पालन किया जाये।

इस प्रक्रिया में वास्तविकता को माया बताया गया तथा माया को वास्तविकता के रूप में पेश किया गया। सम्पूर्णता में देखें तो पायेंगे कि इस युग में भाववादी दर्शन के प्रभाववश भौतिक वास्तविकता को नकारा गया। ये सारी बातें विशुद्ध चेतना के चरम सत्य, विशुद्ध विचार और आत्मा के समीकरण से अंतःसंबद्ध थी।

प्राचीन भारतीय इतिहास में उपनिषद काल की समाप्ति के बाद ई0पू0 600 वर्ष से लेकर ई0 500 वर्ष तक

का एक हजार वर्षों का इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसे सुविधा के तीन खंडों में रखकर विश्लेषित कर सकते हैं। पहला– मगधकाल 600 वर्ष ई0पू0 से 200 वर्ष ई0 पू0 यानी मौर्यों के अंत तक। दूसरा– 200 वर्ष ई0पू0 से 300 वर्ष ईस्वी तक। भारतीय ग्रीक शक कुषाण सातवाहन काल माना जाता है। तीसरा– गुप्तकाल, 300 वर्ष ईस्वी से 500 वर्ष ईस्वी तक रखा जा सकता है।

## मगधकाल

मगधकालीन समाज पहले वाले उपनिषद्कालीन समाज़ से ज्यादा जटिल समस्याओं एवं अंतर्विरोधों वाला समाज था। इस समाज में लोहे की खोज ने ऋग्वैदिक एवं उपनिषद् काल के चिंतन एवं समाज पर दूरगामी प्रभाव डाला। लोहे की खोज एवं उत्पादन–परिशोधन विधि के विकास ने कुल्हाड़ियों, गैंतियों, फावड़ों–फालों (हलका फाल), कीलों–मेखों, गाड़ियों के पहियों के लिये धातु की रिमों, अनेक नये हस्तशिल्प के औजारों और उपकरणों, तलवारों और इसी तरह की वस्तुओं का उत्पादन किया। इसके अलावा कुछ रासायनिक विधियों का भी विकास हुआ। मसलन, चमड़ा शोधन तथा चमड़ा उत्पादों को और ज्यादा अच्छा बनाने हेतु अनेकों विधियों का विकास हुआ। कृषि का

सुधार हुआ। व्यापार और परिवहन के काम में तेजी आई। मुद्रा पर आधारित नई अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। गांवों की जगह वास्तविक कस्बों एवं शहरों में विकास की प्रक्रिया का अनुसरण किया गया।

शहरों में व्यापारियों एवं शिल्पियों के संघ बनने लगे। केन्द्रीकृत शासन प्रणाली का गठन, विशाल सेनाओं का निर्माण, सरकारी नौकरों का (नागरिक सेवाओं) जाल फैलाया गया तथा प्रादेशिक राज्यों का गठन किया गया। यहां सवाल उठता है कि इतने बड़े पैमाने पर आये इस परिवर्तन को पैदा करने वाली श्रमशक्ति कौन थी ? ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन करें तो पायेंगे कि यह श्रमशक्ति थी– शूद्र, अछूत, आदिवासी जनजातियां, ग्रामीण शिल्पी, कस्बों के कारीगर शिल्पी, दास, उजरती, मजदूर, युद्धबंदी, स्वामित्व के वास्तविक अधिकार प्राप्त अनेक स्तरों वाले जोतदार किसान, बटाईदार तथा मेहनतकशों के ऐसे तबके जिनका मगधकाल में बड़े पैमाने पर शोषण हुआ था। इसका वर्णाश्रम व्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा। अनेक मिश्रित जातियों एवं उपजातियों का उदय इसी काल में हुआ।

मगधकाल में खेती का काम करने वालों में वैश्यों की प्रमुखता थी। उस समय शूद्रों का काम मजूरी एवं बटाई पर ही खेती करना था। बाद के शूद्रों का मुख्य काम

खेती करना हो गया। इससे दासों की संख्या में बहुत कमी आई। तथा पूर्ववर्ती काल की तुलना में बेगार प्रथा में बढ़ोत्तरी हुई। इस युग में अमीरों एवं मेहनत करने वालों के बीच में फासला साफ नजर आने लगा था।

इसी युग में उपनिषद्कालीन व्यवस्थाओं, विचारों, संस्कारों एवं वर्णाश्रम व्यवस्था को भी चुनौती मिली। उसके प्रति आलोचनात्मक रुख अख्तियार किया गया। इस दौर के अंतर्विरोध की अभिव्यक्ति महात्मा बुद्ध (लगभग 564 ई0पू0 से 480 ई0पू0 तक) ने ब्रह्म की सर्वोच्चता को चुनौती दी। उपनिषदों में व्यक्त मोक्ष की रहस्यमयता का विरोध करते हुये उन्होंने निर्वाण की व्यवस्था इसी संसार में की।

उन्होंने यज्ञ, कर्मकांडों में पशुबलि दिये जाने का विरोध किया। इसका प्रधान कारण तो यही था कि भारतीय समाज पशुपालन व्यवस्था से खेतीबाड़ी (कृषि) अवस्था की ओर रूपांतरित हो रहा था। पशुपालन व्यवस्था में आरम्भ हुई पशुबलि कृषि, व्यापार और परिवहन के नये युग में पूर्णतः अलाभकारी थी। इस समय तक बैल और घोड़े खेती के कारण अपरिहार्य जरूरत बन चुके थे। यही वजह है कि उस समय के व्यापारियों एवं किसानों का बुद्ध को व्यापक समर्थन मिला।

प्रो0 इरफान हबीब ने 'कास्ट एंड मनी इन

इंडियन हिस्ट्री' में आर0एस0 शर्मा का हवाला देकर लिखा है कि दूसरी शहरी क्रांति (पहली हड़प्पा संस्कृति थी) बुद्ध के उदय के साथ शुरू हुई, जिसे देखकर पता चलता है कि बहुआयामी उत्पादक शक्ति का विकास हो चुका था। नये—नये औजारों, श्रमिकों की रक्षा के उपायों का उदय तथा विशेषज्ञ शिल्पियों का उदय का उल्लेख पहली शती की तक्षशिला में मिलता है।

इरफान हबीब ने लिखा है कि जातकों से पता चलता है कि ऐसी उत्पादक इकाइयां एवं गांव सामने आ चुके थे, जो तरह—तरह की नई वस्तुयें बनाते थे। यह उन जातियों के लिये सम्भव था जो अपने सम्पूर्ण उत्पादन को समूचे समाज के सामने लाये। यह सब जो छितराये ढंग से हो रहा था, वह श्रम विभाजन की प्रक्रिया में ही हो पाया था। विभिन्न दस्तकार अपनी मूल जनजाति से इस प्रक्रिया में अलग—अलग जा पड़े तथा उन्होंने अपनी अलग जाति का निर्माण किया। इनको मनु ने मिश्रित जाति में शामिल किया है। प्रो0 इरफान हबीब ने एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य की ओर भी ध्यान खींचा है। वह यह है कि बुद्ध ने जाति निर्माण को नजरअंदाज किया। अशोक के जितने भी कीर्तिस्तम्भ एवं शिलालेख मिले हैं उनमें भी धर्म प्रचार अभियान में अप्रत्यक्ष ढंग से वर्ण या जाति का उल्लेख नहीं है।

पर, एक बात सच है कि बुद्ध ने ब्राह्मणों की धार्मिक सर्वोच्चता को चुनौती दी, उसे ठुकराया। वर्णों के विभाजन की अवधारणा को वेद–निःसृत मानने वाले विचार का खंडन किया।[15] उन्होंने समस्त जातियों के लोगों को अपने सम्प्रदाय में शामिल किया। उनके अनुयायियों में से अधिकांश लोग ब्राह्मणों और क्षत्रियों की बजाय वैश्यों, शूद्रों तथा अछूतों मे से आये। यद्यपि, यह भी सच है कि उनके संघों में कर्जदारों एवं दासों को प्रवेश की अनुमति नही दी गई। बहरहाल, उनके संघ में जाति और निजी सम्पत्ति निषिद्ध थी। यहां सवाल उठता है कि क्या बौद्ध धर्म ने जाति–व्यवस्था के निर्माण में कोई भूमिका अदा नहीं की ?

बौद्ध धर्म में कर्म के सिद्धान्त के तहत आत्मा से परमात्मा का सम्बन्ध जोड़ा गया। तार्किक ढंग से इस जन्म के कर्म को अगले जन्म के कर्म के साथ जोड़ा गया। यह जाति–व्यवस्था का आदर्शीकृत तार्किक रूप है। यह सिद्धान्त उन लोगों के मन में समान की न्यायिक अवधारणा पैदा करता है। जो जाति व्यवस्था के शिकार थे। 'मनुस्मृति' में भी ऐसी अवधारणायें हैं।

डी०डी० कोशांबी ने बुद्ध के अहिंसा के

---

15. मनी एंड कास्ट इन इण्डियन हिस्ट्री– इरफान हबीब, पृ0 7, 8

सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये लिखा है कि जिस समय बुद्ध ने जीव हत्या के खिलाफ तर्क दिया था, उस समय पशुपालन की बजाय संगठित खेती का युग शुरू हो चुका था। उस समय दुधारू पशुओं का पालन–पोषण वैश्यों में होता था और इनमें ही इनके बलिदान की भी परम्परा थी।

इरफान हबीब मानते हैं कि अहिंसा के सिद्धान्त से फलफूल संग्रह करके जीवन–यापन करने वाले समुदायों को परेशानी उठानी पड़ी। अशोक के शिलालेखों में मछली पकड़ने और शिकार करके जीवन यापन करने को निषिद्ध करार दे दिया गया था। बौद्धों ने जीवहत्या का निषेध उसी तरह किया जैसा कि ब्राह्मणवादी ग्रन्थों में लिखा मिलता है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म ने भी किसानों को वर्णाश्रम–व्यवस्था में और भी नीचे धकेल दिया। इरफान हबीब ने रेखांकित किया है कि जाति व्यवस्था का गठन बौर्द्ध धर्म के उदय एवं गुप्त युग के बीच में हुआ है। इसकी समर्थक विचारधारा के गठन का युग भी यही है। जाति–व्यवस्था श्रम विभाजन की कट्टर व्यवस्था के रूप में आई थी। इसका निर्माण उत्पादन के सम्बन्ध के रूप में हुआ था।

अब पुनः प्रश्न उठता है कि जाति को 'आधार' में माने या अधिरचना में या फिर दोनों के बीच मे। तो इस

सवाल का जवाब इस विश्लेषण से मिल जाता है कि उत्पादन के सम्बन्ध के रूप में जाति व्यवस्था का जन्म हुआ था। ये सम्बन्ध आधार में रहते हैं तथा अधिरचना का काम आधार की सेवा करना होता है। चूंकि उत्पादन के सम्बन्धों में अंतर्विरोध है तथा टकराहट है। अतः अधिरचना में भी यह अंतर्विरोध दिखाई देगा। पर, वर्चस्व उन्हीं जातियों का होगा, जिनका सामाजिक सम्बन्धों में वर्चस्व है। फिर भी अधिरचना में इस युग में मौजूद अंतर्विरोध को रेखांकित करना बेहद जरूरी है।

मगध काल में बड़े पैमाने पर उत्पादक शक्ति के तौर पर शूद्रों, वैश्यों एवं जनजातियों के लोगों को ब्राह्मण–क्षत्रिय ग्रुपों के साथ संघर्ष चलता रहा है। ये लोग चातुर्वर्ण्य के पक्षधर थे, जबकि पहले वाले ग्रुप के लोग चातुर्वर्ण्य के खिलाफ प्रतिरोध भी कर रहे थे। इस चातुर्वर्ण्य विरोधी ग्रुप की विचारधारात्मक अभिव्यक्ति अधिरचना के क्षेत्र में चार्वाक के लोकायत दर्शन में हुई। न्याय–वैशेषिक दर्शन ने भौतिकवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी। महात्मा बुद्ध के विचारों में भी भौतिकवादी दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। पर, इन सबमें लोकायतों के दर्शन में भौतिकवाद जिस स्पष्टता से अभिव्यक्ति पाता है, वह अद्वितीय है। इस युग का लोकायत ही एकमात्र ऐसा दर्शन था जिसने कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष के सिद्धान्तों को

पूरी तरह ठुकरा दिया। उन्होंने इसे ब्राह्मणवाद का छल–प्रपंच माना और आम जनता को लूटने और धोखा देने वाला बतलाया। पर ये लोग शोषितों को संगठित नहीं कर पाये। इसीलिये ये लोग अपने दर्शन को जनांदोलन में भी रूपांतरित नहीं कर सके।

**<u>मौर्योत्तर काल से गुप्त काल तक</u>**

इस काल में यूनानियों, शकों और कुषाणों का भारतीय इतिहास में प्रवेश हुआ, जो यहां के जीवन के समस्त क्षेत्रों में बहुत उत्तेजक कारक था। इन्होंने मगधकालीन प्रगतिशील परम्पराओं को समृद्ध किया। नगरीय हस्तशिल्प उद्योग का विकास किया, व्यापार और वाणिज्य केन्द्र के रूप में तक्षशिला का निर्माण किया, जो कुषाणों की राजधानी थी।

एक बात और कि शक और कुषाण कबीलों के झुण्ड के रूप में आये थे। उनकी परम्परायें चातुर्वर्ण्य से मेल नहीं खाती थीं। इससे जाति व्यवस्था का बंधन ढीला हुआ। इसी का परिणाम था कि वर्चस्वशाली वर्णों के हितों की रक्षा के लिये स्मृतियों की रचना की गई। ये एक तरह से कानून की किताबों की शक्ल में लाई गई। इनमें जीवन के प्रत्येक कार्य व्यापार के बारे मे नियमों का प्रावधान है। इन स्मृतियों में 'मनु–स्मृति' सबसे कठोर व्यवस्थाओं का निर्देश देती है।

जो लोग यह तर्क देतें हैं कि वर्णाश्रम व्यवस्था ईश्वर प्रदत्त है तथा लोग स्वेच्छा से इसे स्वीकार लेते हैं, उन्हें इस तथ्य को समझाना चाहिये कि वर्णाश्रम व्यवस्था को लोगों ने कभी भी ईश्वर प्रदत्त समझकर स्वीकार नहीं कर लिया था। बल्कि शोषक वर्णों ने समय–समय पर इसके लिये नियमों का विधान किया। नियमों के विधान को स्मृतियों के युग में हम अपने चरम रूप में देखते हैं। यह एक तरह से धर्मशास्त्र भी है।

इस विश्लेषण से एक अन्य धारणा का भी खण्डन हो जाता है कि जाति व्यवस्था सदा से एक जैसी चली आ रही है। इस संदर्भ में ज्यादा विश्लेषण में गये बिना हम 'अस्पृश्यता' की अवधारणा पर विचार करें तो पायेंगे कि वर्ण व्यवस्था के आरम्भ में अस्पृश्यता नहीं थी। इसका कोई आधार नहीं है कि दास और शूद्र अपवित्र समझे जाते थे। न ही इसका कोई प्रमाण मिलता है कि उनके छू जाने से उच्च वर्णों का शरीर और भोजन दूषित हो जाता था। अपवित्रता का सारा ढकोसला बाद में खड़ा किया गया, जब समाज कृषि प्रधान होने के बाद वर्णों में बंट गया और ऊपर के वर्ण अपने लिये तरह–तरह की सुविधायें और विशेषाधिकार मानने लगे। अस्पृश्यता के अनेक कारण माने जाते हैं, लेकिन मुख्य कारण आदिम

जातियों का संस्कारहीन जीवन था जो बाद में वर्ण व्यवस्था में शामिल हुई।[16]

जाति व्यवस्था जाति पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार थी। इसने सामाजिक श्रम के विकास के लिये नये उपकरणों के विकास का मार्ग अवरुद्ध किया। उत्पादन के औजारों को जड़ बनाया। इससे समाज की आविष्कार–भावना पूरी तरह अवरुद्ध हुई। उसका परिणाम यह निकला कि सामाजिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विकास भी अवरुद्ध हो गया। लोगों से कहा गया कि वैसा ही करो जैसा तुम्हारे पुरखे किया करते थे। यह धारणा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ब्रह्म वाक्य की तरह आम लोगो की चेतना में उतारी गई।

जाति व्यवस्था में प्रत्येक उच्च जाति अपने को नीची जाति की तुलना मे ऊँचा समझती थी तथा शुद्ध मानती थी और अपने से ऊपर की जाति से निम्न और अशुद्ध मानती थी। इस कारण समूचा जीवन छोटी–छोटी जातियों में विभाजित था। यही वजह है कि शोषित जातियां कभी भी एक जैसा दुख झेलने के बावजूद एकजुट नहीं हो पाई। वे संगठित ढंग से शोषक जातियों को चुनौती भी नहीं दे पाई। आम लोगों में जाति चेतना बहुत गहरे तक जड़ें जमाई हुई थी। शोषितों ने अपने

---

16. 'कथन' पत्रिका मई–जून 1982, प्रो0 आर0 एस0 शर्मा, पृ0 49

को कभी एक वर्ग के रूप में देखने की कोशिश ही नहीं की। यही वजह है कि भारतीय समाज में कभी भी सामाजिक क्रांति नही हो पाई और न ही कोई स्पार्टकस पैदा हुआ। इस मायने में जाति व्यवस्था न केवल जड़ एवं विषम व्यवस्था है, बल्कि यह आदमी को भयावह स्थिति तक विभाजित करने वाली व्यवस्था है, जिसमें उत्पीड़ित और शोषित वर्ग अपने जैसे ही शोषित उत्पीड़ित वर्ग के गिरने के लिये गड्ढा खोदता रहता है।

जो लोग आज भी जातिवाद की वकालत करते हैं, वे कुल मिलाकर शोषितों की एकता को मोड़ने एवं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का अवरुद्ध करने की भूमिका अदा करते हैं और इसी मायने में वे शासक वर्गों के मददगार साबित होते हैं।

असल में, जातिवाद या जाति के ऐतिहासिक विवेचन से हमें सबक हासिल करना चाहिये। जो लोग मध्यकाल या प्राचीनकाल में जाति की गौरवपूर्ण भावनाओं का बखान करते हुये थकते नहीं हैं, वे इस तथ्य को छिपाते हैं कि जाति–चेतना के कारण ही मध्यकाल में कोई सामाजिक क्रान्ति नहीं हो पाई। अगर आज भीहम जाति चेतना में जकड़े रहेंगे तो मौजूदा समाज में भी सामाजिक क्रान्ति असम्भव हो जायेगी।

प्रो0 इरफान हबीब ने मध्य काल में जातियों

एवं जाति चेतना की सामाजिक–सांस्कृतिक परिणतियों का मूल्यांकन करते हुये लिखा है कि– ''जाति व्यवस्था के निर्माण की प्रक्रिया में समाज में तनाव पैदा हुआ, संघर्ष हुये। पर इन संघर्षों में शामिल शोषित जनों ने अपने को कभी जाति चेतना से बाहर निकाल कर एक किसान के रूप में नहीं देखा। मध्यकाल में हुये विद्रोहों की एक सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि शोषित लोगों ने अपने को किसान समझने के बजाय सिक्ख, सतनामी, जाट, अफगान बगैरह समझा। यह उनकी धार्मिक चेतना का परिणाम था, जबकि सामाजिक–आर्थिक जीवन में वे किसान थे। जाति चेतना के कारण ही वे लोग अन्य जातियों के लोगों के साथ समान धरातल पर नहीं मिल सके। जबकि शोषित जातियों की समस्यायें समाज थीं, अगर वे शोषित जातियां अपने को किसान वर्ग के रूप में पहचानतीं, तो मध्यकालीन विद्रोहों की शक्ति ही कुछ और होती।[17]

## ब्रिटिश दौर (1885–1905) एवं जाति संघर्षों की प्रकृति

ब्रिटिश शासकों ने अपने शासन के दौरान भारतीय समाज को जड़ों तक झकझोरा। जाति व्यवस्था पर टिका श्रम–विभाजन खंडित हुआ। कृषि का पूंजीवादीकरण शुरू

---

17. मनी एंड कास्ट इन इण्डियन हिस्ट्री– इरफान हबीब

हुआ। नये उद्योग–धन्धों, संचार परिवहन आदि के कारण श्रम पर आधारित नये वर्गों का उदय हुआ। गांवों के स्व–शासन का खात्मा हुआ। समान कानून एवं न्याय पर आधारित व्यवस्था की शुरूआत हुई। सबके लिये शिक्षा को कानूनी दर्जा दिया गया। इन सबके कारण जातिवादी व्यवस्था का आधार कमजोर हुआ।

भारतीय समाज में वर्चस्वशाली उच्च जातियों तथा उच्च वर्गों के खिलाफ संघर्षों का सिलसिला शुरू हुआ। यहां उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासकों ने 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्रम के बाद से सामंतवादी मूल्यों के खिलाफ संघर्ष खत्म कर दिया तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया एक बार फिर से अवरुद्ध हो गई। अगर ब्रिटिश शासकों ने सामंतवाद विरोधी प्रयत्नों को उनकी तार्किक परिणतियों तक पहुंचाया होता तो आधुनिक भारत का नक्शा ही कुछ और होता।

ब्रिटिश शासन के दौरान उठे जाति संघर्षों की प्रकृति का अध्ययन करें तो पायेंगे कि इस दौर के संघर्षों के केन्द्र में भी जातिचेतना का ही वर्चस्व था। वर्गीय नजरिये से समस्याओं को देखने की प्रवृत्ति कमजोर थी। इन जाति संघर्षों में एक प्रवृत्ति परिवर्तनवादी भी थी, जिसने कालांतर में अपने को कम्युनिस्ट आंदोलन के साथ तथा कांग्रेस के साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष के साथ जोड़ा।

शुरूआती जाति संघर्षों में निचली जातियों या

अछूत कही जानेवाली जातियों में ब्राह्मण–विरोधी चेतना मुखर रूप में दिखाई देती है। पर, इस चेतना का दायरा बहुत सीमित है। ब्राह्मण विरोधी जाति चेतना के पीछे तत्कालीन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव प्रमुख कारण था। पर, इस तनाव की अभिव्यक्ति में साम्राज्यवाद–विरोधी एवं सामंतवाद–विरोधी दृष्टि नहीं है। जातिवाद–विरोधी संघर्षों के केन्द्र में दो तरह की प्रमुख मांगें रही हैं। पहले मांग यह थी कि निचली जातियों या अछूत जातियों को नौकरी तथा शिक्षा में ज्यादा स्थान दिये जायें। दूसरी मांग– मंदिर प्रवेश के अधिकार, निचली जाति से उच्च जाति में स्थापित कराने तथा उच्च जाति के संस्कारों को अपने (निचली जातियों में) यहां लागू कराने से सम्बन्धित थी।

सन् 1885 से 1905 तक के दौर में पैदा हुये जाति संघर्षों में जो प्रमुख थे, उनमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के गांवों में दलितों द्वारा चलाये गये आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस आन्दोलन के दौरान दलितों ने अपने को अछूत मानने के बजाय 'शिवनारायण एक्ट' से उद्भूत माने जाने की मांग उठाई। केरल में श्रीनारायण गुरू के नेतृत्व में ब्राह्मणों के खिलाफ संघर्ष शुरू हुआ। इन लोगों ने अपने रीति–रिवाजों के संस्कृतिकरण की मांग के साथ मंदिर प्रवेश के अधिकार के लिये संघर्ष किया। ई0एम0एस0 नंबूदिरीपाद ने एझवा

जाति के संघर्ष को किसानों का सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष माना है।[18]

दक्षिण तमिलनाडु की नागर जाति के लोगों नेअपने को 'अछूत' के सामाजिक स्तरसे ऊपर उठाकर 'क्षत्रिय' वर्ण में स्थापित कर ऊँचा दर्जा दिया। उत्तरी तमिलनाडु में 'पाल्लीज' जाति के लोगों ने अपने को क्षत्रिय कहना शुरू कर दिया। ये लोग विधवा विवाह भी करने लगे तथा इन्होंने ब्राह्मण के संस्कारों को अपना लिया। इसी तरह 'महाराष्ट्र' में महार जाति के लोगों ने अपने को गोपाल बाबा लांगेकर के नेतृत्व में उन्नीसवीं सदी के अंत में संगठित किया। इन्होंने अपने को क्षत्रिय घोषित कर दिया। कालांतर में इसने महार आन्दोलन का रूप ले लिया। ये लोग सर्विस क्षेत्र में ज्यादा नौकरियां दिये जाने की मांग कर रहे थे। तर्क यह दिया कि वे भारत के गांवों में अभी भी अछूत माने जाते हैं तथा वे सब कार्य करते हैं, जो अछूत करते हैं।

इतिहासकार सुमित सरकार ने 'माडर्न इंडिया' में इन प्रभावी जाति आन्दोलन का सम्बन्ध मध्यमार्गी जातियों से जोड़ा है, जो अछूत तो नहीं मानी जाती थीं, पर उच्च जातियों में इनकी गणना नहीं की जाती थी।

---

18. नेशनल क्वेशचंसइन केरल, पृ0 102

महाराष्ट्र में ब्राह्मण विरोधी संघर्ष का बिगुल सबसे पहले सन् 1870 में ज्योतिबा फुले के नेतृत्व में बजा। इन्होंने पहले 'गुलामगिरी' (1872) के नाम से पुस्तक प्रकाशिति की तथा अगले साल 'सत्यशोधक समाज' के तहत संगठित रूप से संघर्ष शुरू किया। इस आन्दोलन की शुरूआत गैर–शहरी मालि जाति के लोगों ने की थी। बाद में इसने मराठा किसानों में जड़ें जमा लीं। गिल ओमविट ने इस आन्दोलन का मूल्यांकन करते हुये लिखा कि "यह आन्दोलन एक तरफ अभिजाज्याधारित संकीर्ण प्रवृत्तियों तथा दूसरी तरफ वास्तविक अर्थों में जनाधारित परिवर्तनवादी प्रवृत्ति को अपने अन्दर समेटे हुये था।"[19]

यह आन्दोलन 'माडरेटों' के साथ संस्कृतिकरण की नीति पर विकसित हुआ। कभी कभी ये लोग क्षत्रियों का उद्भव मराठाओं से देखते थे। सन् 1870 से इस आन्दोलन को कोल्हापुर के महाराजा का भी संरक्षण मिला। इसके अलावा महाराष्ट्र में 'ब्राह्मण पार्टी' की जाति संघर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका थी। यही स्थिति इस दौर में मद्रास में भी दिखाई देती है, जहां नौकरियों एवं शिक्षा में ब्राह्मणों का वर्चस्व था। इसके खिलाफ तेलुगू रेड्डी, खम्मा जाति तथा मलयाली नायरों ने

---

19. 'कल्चर रिवोल्ट इन ए कोलोनियल सोसायटी : द नॉन ब्राह्मण मूवमेंट इन वैस्टर्न इण्डिया – 1873–1930 विल ओमविट

आवाज बुलंद की। इन संघर्षों का चरित्र अर्द्ध–आभिजात्य' था। इनके पीछे ब्रिटिशपरस्ती की भावना सक्रिय थी। इन संघर्षों के कारण ही 'द्रविड़वाद' और पृथकतावादी प्रवृत्ति की नींव पड़ी।

इस दौर में ब्रिटिश शासकों ने 'फूट डालों और राज करो' की कूटनीति के तहत आभिजात्य ग्रुपों में विभाजन पैदा किया। यह विभाजन अधिकतर धर्म के आधार पर हुआ, जो कभी–कभी जाति एवं क्षेत्रीय आधारों पर भी दिखाई देता है।[20]

एक अन्य प्रवृत्ति यह भी थी कि नये वर्गों मजदूर एवं पूंजीपति वर्ग का भी उदय इसी दौर में हुआ। मजदूर वर्ग एवं किसान वर्ग ने जहां तमाम निचली एवं अछूत जातियों को अपने में समाहित किया, वहीं पर पूंजीपति वर्ग का उदय उच्च जातियों में से हुआ। सन् 1885–1905 के दौर में मजदूर वर्ग की चेतना का प्रहार तथा जाति चेतना को वर्गीय चेतना मे तब्दील करने की कोशिशें शुरू हुई।

बीसवीं शदी के शुरू के दशकों में यह प्रवृत्ति देखी गई कि मध्यवर्ती निचली जातियों के शिक्षित ग्रुपों ने जाति सम्मेलनों, जाति संस्थाओं एवंलोगो को संगठनबद्ध किया तथा अंग्रेजी शिक्षा से प्रथम लाभान्वित ब्राह्मणों एवं उच्चजाति के लोगों

---

20. मार्डन इण्डिया – सुमित सरकार, पृ0 20

के खिलाफ संघर्ष चलाया। इस दौर में निचली समझी जाने वाली अनेक जातियों ने अपने को उच्च जाति घोषित कर दिया। उच्चवर्णों या जातियों के रीति–रिवाजों को अपना लिया। इसे इतिहासकारों ने 'संस्कृतिकरण' की प्रक्रिया के रूप में रेखांकित किया है।

जाति–संगठन दक्षिण भारत एवं महाराष्ट्र में प्रमुखता से पाये जाते हैं। इन राज्यों में ब्राह्मणों का वर्चस्व था। अतः ब्राह्मण–विरोधी संघर्षों की नींव भी इन्हीं राज्यों में पड़ी। संस्कृतिकरण के संघर्ष में दक्षिण तमिलनाडु की 'नाडार' जाति ने क्षत्रिय का दर्जा दिये जाने के लिये संघर्ष किया। इसके लिये इन लोगों ने अलग से शिक्षण संस्थायें खोलीं। ऊँची जाति के संस्कारों को अपना लिया तथा 1910 में नाडार महाजन सम्मेलन किया। दक्षिण के जाति संघर्षों में 'जस्टिस आन्दोलन' महत्वपूर्ण माना जाता है। यह आन्दोलन 1915–16 के करीब मद्रास में शुरू हुआ। इसका नेतृत्व सी०एन० मुदलियार, टी०एम० नायर तथा पी० त्यागराज ने किया। इसके पीछे मध्यवर्ती या मिश्रित जातियों के लोग थे। इसमें तमिल विलालस, मुदलियार, चेट्टियार के अलावा तेलुगू रेड्डियों, खम्मा, बलिजानायडु तथा मलयाली नायर जाति के लोग शामिल थे। कालांतर में इसी आन्दोलन के गर्भ से 'जस्टिस पार्टी' का जन्म हुआ। यह पार्टी

ब्रिटिश गोरों के प्रति वफादार थी। जस्टिस आन्दोलन में मिश्रित जातियों के अलावा जमींदारों एवं व्यापारियों ने भी हिस्सा लिया। ये लोग ब्राह्मणों की शिक्षा, राजनीति एवं नौकरियों में 'विशेष स्थिति' के खिलाफ थे। ब्राह्मण लोग ही बड़े—बड़े पदों पर थे। बड़े जमींदार भी थे। जस्टिस पार्टी के माध्यम से यह उम्मीद जगाने की कोशिश की गई कि अछूतों को ज्यादा नौकरियां तथा विधान सभाओं में विशेष प्रतिनिधित्व मिलेगा। 20 दिसम्बर, 1916 को ब्राह्मण विरोधी घोषणा पत्र भी जारी किया गया, जिसमें कहा गया कि जस्टिस पार्टी ऐसे किसी भी कार्य का विरोध करेगी, जिसके द्वारा ब्रिटिश शासकों के अधिकार एवं शक्ति को कम करके आंकने की कोशिश की जायेगी।

जस्टिस पार्टी के नेताओं का ब्रिटिश शासकों के साथ सहयोग करने का सबसे बड़ा कारण तो यह था कि ये नेतागण समृद्धतम आभिजात्य वर्ग से आते थे। और आर्थिक रूप से यह पार्टी जमींदारों के ऊपर निर्भर थी। पर इनकी ब्राह्मणों के खिलाफ शिकायतें जायज थीं। जायज शिकायतों के कारण ही राष्ट्रवादी आन्दोलन की समर्थक मद्रास प्रेसीडेंसी ऐसोसिएशन की तरफ से अलग से प्रतिनिधित्व की मांग उठाई गई तथा 1920 तक आते—आते लोकप्रिय ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन का ई0एन0 रामास्वामी नायकर के नेतृत्व में विकास

हुआ।

मैसूर राज्य में 'प्रजामित्र मंडली' के नाम से ब्राह्मण विरोधी संघर्ष के व्यापक मोर्चे का गठन हुआ। मैसूर में उस समय सरकारी नौकरयिों एवं शिक्षा संस्थानों में ब्राह्मणों का वर्चस्व था, जबकि उनकी आबादी मात्र 3.8 फीसदी थी, जबकि ग्रामीणों में बौकालिंगा तथा लिंगायतों का बहुमत था।

लिंगायतों ने शिक्षा संघ बनाया। दूसरी ओर, बोकालिंगा संघ के विकास की कोशिशें भी चल रही थीं। 1917 में सी0आर0 रेड्डी ने राजनीतिक संगठन के तौर पर प्रजा मंडली का गठन किया। इस संगठन में शहरी पेशेवर तबकों के लोग थे। ये लोग व्यक्तिगत आधार पर अदालतों को प्रभावित करने की कोशिश करते थे।

इसी तरह त्रावणकोर (स्टेट में नंबूदिरी ब्राह्मणों के खिलाफ सी0बी0 रमन पिल्लई के नेतृत्व में मलयाली मेमोरियल (1891) संगठन उभरा। सन् 1900 के आसपास के0 रामकृष्ण पिल्लैई तथा एम0 पद्मनाभ पिल्लै के नेतृत्व में नायरों का गतिशील नेतृत्व उभरा। इन तमाम संघर्षों का कुल परिप्रेक्ष्य संकीर्णतावादी एवं विखंडनकारी था। इनमें ब्रिटिश गोरों के समर्थन की प्रवृत्ति भी देखी गई। पर एक प्रवृत्ति परिवर्तकामी शक्तियों की पोषक भी थी। मसलन, एझवा जाति के लोगों के संघर्ष

ने नारायण गुरू के नेतृत्व में परिवर्तनकामी शक्तियों को बल पहुंचाया। यही वजह है कि कालांतर में एझवा जाति के लोगों का जनाधार तैयार हुआ। दूसरी तरफ, महाराष्ट्र के 'सत्यशोधक समाज' ने 1917 की अपनी वार्षिक कांफ्रेंस में एक स्वर से जाति उत्पीड़न, श्रेणीबद्धता को पूरी तरह खारिज किया तथा संस्कृतिकरण के बहाने उच्च जाति का दर्जा हासिल करने की अवधारणा की भी मुखालफत की। इस आन्दोलन में मद्रास के जस्टिस मूवमेंट जैसी प्रवृत्तियां भी थीं। सत्यशोधक समाज का आधार खाते–पीते किसान थे। इनका महाजनों एवं जमींदारों के साथ अतंर्विरोध था तथा आम किसानों के हित भी इनसे टकरा रहे थे। यही वजह है कि इन दोनों को लेकर व्यापार मोर्चा बना। मराठा में कालांतर में इसने किसान संघर्षों की नींव भी डाली।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान फजल–ए–हुसैन की यूनियनिस्ट पार्टी, महाराष्ट्र में भास्कर राव के नेतृत्वमें उभरी ब्राह्मण विरोधी पार्टी, पूना में 1920 के मध्य में उभरे केशवराव जेधे तथा दिनकरराव जबलकर का ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन जहां एक ओर ब्राह्मण विरोधी भावनाओं से ओत–प्रोत था, वहीं इन संघर्षों में कांग्रेस विरोधी तथा ब्रिटिश समर्थक प्रवृत्तियों का प्राधन्य भी था।

दूसरी ओर बिहार सरकार की 1925 की रिपोर्ट से पता चलता है कि यादवों ने पटना, मुंगेर, दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर जिले में अपने जाति स्तर को ऊपर उठाने के लिये आन्दोलन चलाये। सन् 1920 के शुरू में सहजानंद सरस्वती ने भूमिहार ब्राह्मण सभा का गठन किया। एक दशक बाद इन्होंने अ0भा0 किसान सभा की स्थापना की। सन् 1920 के आसपास ही महार जाति के लोगों ने डा0 अम्बेडकर के नेतृत्व में संघर्ष चलाया। ये लोग हिन्दू धर्म की प्रतीक 'मनुस्मृति' को जलाते थे तथा भेदभाव खत्म करने की मांग करते थे।

इसी तरह तमिलनाडु मं ई0वी0 रामास्वामी नायर ने जस्टिस पार्टी के आभिजात्यवादी दृष्टिकोण के विकल्प में लोकप्रिय एवं परिवर्तनवादी आन्दोलन तैयार किया। इन्होंने 1924 में 'सुदी आरसू' नाम से तमिल में एक पत्रिका निकाली। एक साल बाद 'स्व–सम्मान आन्दोलन' की शुरूआत की। ये लोग ब्राह्मण–पुरोहित के बगैर शादी करने, जबरन मंदिर प्रवेश एवं नास्तिकता का जमकर प्रचार करते थे।

समाज सुधार संघर्षों एवं जाति संघर्षों की 1917–1927 के बीच में उठी लहर का विश्लेषण करते हुये सुमित सरकार ने 'माडर्न इंडिया' में लिखा है कि इन आन्दोलन की प्रकृति का अध्ययन करने से एक बात साफ तौर पर उभर

कर आती है कि निचली जाति के जुझारू जाति संघर्षों ने वामपंथी प्रवृत्ति के उभार में योगदान दिया।

सहजानन्द सरस्वती कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुये। बाद में कम्युनिष्ट बने। सत्यशोधक मंडल के सक्रिय नेता नाना पाटिल (जिन्होंने सतारा में 1919–21 में जमकर काम किया था तथा 1942 में समानान्तर सरकार बनाई थी) कालांतर में महाराष्ट्र के प्रमुख कम्युनिष्ट नेता बने। वे किसांनों में बेहद लोकप्रिय थे। शुरूआती तमिल कम्युनिस्ट सिंगारवेलु तथा जी0 जीवनन्दन ने पेरियार के साथ 1930 के करीब संघर्षों में सहयोग किया था। इसी तरह अय्यपन तथा केशवन ने केरल में एझवा जाति के लोगों को कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होने के लिये दिशा दी, जबकि ये दोनों खुद कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल नहीं हुये।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान उभरे जाति संघर्षों में ब्राह्मण विरोधी, जमीदार विरोधी एवं महाजन विरोधी चेतंना ने जब–जब कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों से एकता प्रदर्शित की, इसे व्यापक समर्थन मिला। पर जाति संघर्षों की दिशा ज्यों ही कांग्रेस विरोधी हुई, उसने इस तरह के संघर्षों को संकुचित कर दिया। साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद विरोधी दृष्टिकोण पर सुसंगत रूपसे बल न होने के कारण ही अधिकतर जाति संगठन

एवं जाति संघर्ष ज्यादा समय तक जिंदा न रहे तथा परिवर्तन के लक्ष्य को पा नहीं सके।

भारतीय समाज में परिवर्तन का कोई भी काम साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद विरोधी परिप्रेक्ष्य के बिना अधूरा ही रहेगा। यह बात स्वाधीनता आन्दोलन के जाति संघर्षों को देखकर बखूबी समझी जा सकती है। इसी परिप्रेक्ष्य में गांधी जी के हरिजन उद्धार आन्दोलन को भी समझ सकते हैं। गांधी जी ने ब्रिटिश गोरों के खिलाफ चल रहे संघर्षों से हठात् अपना ध्यान स्थानान्तरित करके हरिजन उद्धार की ओर लगाया। इसे उन्होंने रचनात्मक ग्राम्य विकास कार्यक्रम की संज्ञा दी। गांधी जी के अनेक कार्यक्रमों की तरह यह कार्यक्रम भी अस्पष्ट था। पर, प्रेरणाप्रद एवं महत्वपूर्ण था। इस कार्यक्रम के द्वारा राष्ट्रवाद का संदेश दबी–कुचली जातियों तक पहुंचाने में गांधी जी सफल हुये। राष्ट्रवाद को इससे गांवों में फैलाने में मदद मिली। इस आन्दोलन में मंदिर प्रवेश, मानवोचित कार्य एवं समाज सुधार के सवाल उठाये गये। पर हरिजन उद्धार के संघर्ष को उनकी आर्थिक मांगों से पृथक रखा गया। जबकि अनेक हरिजन खेत मजदूर थे। गांधी जी ने जाति–व्यवस्था पर हमला करने से मना किया। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह एवं अन्तर्जातीय भोज समारोहों से बचने की भी सलाह दी तथा वर्णाश्रम–व्यवस्था की वकालत

की। सुमित सरकार का मानना है कि गांधी जी के हरिजन उद्धार के कार्यक्रम को देखकर यही लगता है कि यह उनकी उस योजना का हिस्सा था, जिसके कारण वे निचले स्तर पर चल रहे परिवर्तनकारी जुझारू संघर्षों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल हुये।

गांधी जी के हरिजन–उद्धार कार्यक्रम की सबसे बड़ी बात यह थी कि हरिजन मुक्ति के सवाल को उन्होंने राष्ट्रीय सवाल बना दिया। पर, 'नागरिक अवज्ञा' आंदोलन वापस लेकर 'हरिजन उद्धार' पर जोर देना गलत था। 'नागरिक अवज्ञा' आंदोलन साम्राज्यवाद के खिलाफ था। वेहतर यही होता कि गांधीजी 'नागरिक अवज्ञा' एवं 'हरिजन उद्धार' के संघर्ष को साथ–साथ चलाते तो सही मायने में संतुलन बन पाता। दूसरी बात यह है कि अगर वे 'हरिजन उद्धार' के सवाल को वर्णाश्रम–व्यवस्था के तहत ही सुलझाने की बजाय वर्णाश्रम व्यवस्था को खत्म करके उसके बाहर आधुनिक नजरिये से देखते तो हरिजन–उद्धार का लक्ष्य भी प्राप्त कर सकते थे।

अंत में एक अन्य बात पर ध्यान देना जरूरी है कि आज के दौर में जाति–संघर्षों एवं जाति–संगठनों या अनुसूचित जातियों–जनजातियों के संगठनों के बलबूते पर ही कोई संघर्ष सही मायने में इन तबकों को सामाजिक मुक्ति नहीं

दिला सकता। आज जरूरत इस बात की है कि समाज को नये वर्गों की विचारधारा के रूप में देखा–समझा जाय। मजदूर किसान वर्ग एवं इनके सहयोगी सामाजिक तबकों को एकजुट किया जाये तथा इनके संघर्ष को शोषक वर्गों के खिलाफ मोड़ा जाये। कुछ लोग हरिजनों–आदिवासियों का ही मोर्चा बनाकर शोषण के खिलाफ लड़ना चाहते हैं। मेरा मानना है कि आधुनिक पूंजीवादी समाज में गैर वर्गीय नजरिये से शोषण को देखने तथा जाति के आधार पर संघर्ष का संगठन अपने अंतिम संघर्षों में शोषितों की एकता को तोड़ने बाला ही साबित होगा। अब तक के सामाजिक संघर्षों एवं जाति संघर्षों का ऐतिहासिक अनुभव यही बताता है कि सभी तरह के शोषितों का शोषकों के खिलाफ जब तक साझा मोर्चा नहीं बनेगा, एवं शोषण को वैज्ञानिक नजरिये से नहीं समझा जायेगा, तब तक शोषित जातियों एवं वर्गों की मुक्ति का सपना भी साकार नहीं होगा।

# अध्याय - चतुर्थ

## डा० लोहिया की विचारधारा और नई सामाजिक, राजनैतिक गोलबन्दी

लोहिया समाजवादी विचारों के उग्र तथा धुआँधार प्रचारक थे। उनके भाषण तीक्ष्ण आलोचना से युक्त और आंकड़ों से पूर्ण है। देश के स्वाधीनता संग्राम में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत के समाजवादी आन्दोलन की प्रगति में उनका उल्लेखनीय योगदान था।

लोहिया का विश्वास था कि इतिहास में जातियों तथा वर्गों का संघर्ष देखने को मिलता है जातियों की विशेषता यह होती है कि उनका रूप सुनिश्चित होता है इसके विपरीत वर्गो की आन्तरिक रचना शिथिल हुआ करती है वर्ग तथा जाति के बीच घड़ी के दोलक की सी आन्तरिक क्रिया होती रहती है। यही दोलन क्रिया इतिहास को गति प्रदान करती है। जातियाँ गतिहीनता, निष्क्रियता तथा रूढ़िगत अधिकारों की पुरातन वादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। वर्ग सामाजिक गतिशीलता की प्रचण्ड़ शक्तियों के प्रतिनिधि होते है। लोहिया के अनुसार अब तक का मानव इतिहास जातियो तथा वर्गो के बीच आन्तरिक गति का इतिहास है। जातियाँ शिथिल होकर वर्गो में परिणत

हो जाती है और वर्ग संघर्षरत होकर जातियों का रूप धारण कर लेते है।[1]

लोहिया के अनुसार भारत के इतिहास मे दासता का एक लम्बा दौर जाति प्रथा का परिणाम था क्योकि वह भारतीय जन जींवन को सदियो तक भीतर से कमजोर करती रही है। इस जाति प्रथा के विरूद्ध अनथक संघर्ष करने वाले को ही सच्चा क्रान्तिकारी मानना चाहिए इस दृष्टि से सारे ऋषि महात्मा, साधु संत और समाज सुधारक, सच्चे क्रान्तिकारी थे।[2]

डॉ0 लोहिया ने देश की जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए आरक्षण सिद्धान्त दिया था, क्योंकि वह मानते थे कि जाति प्रथा ही देश में योग्यता व शक्ति का संकट पैदा कर रही है। डॉ. लोहिया ने जाति को नष्ट करने के लिए जाति प्रथा पर धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक हमले की बात कही थी। सामाजिक हमलों में एक तरफ तो विशेषतः गांव में अन्तर्भोज और दूसरी तरफ अन्तर्विवाह पर जोर देने को कहा। जाति प्रथा की समाप्ति की दिशा में लोगों को जागरूक करने के लिए उन्होंने जगह–जगह जाति विनाश सम्मेलनों का आयोजन किया। डॉ. लोहिया ने जाति प्रथा को समाप्त करने

---

1. डॉ0 राम मनोहर लोहिया : व्हील्स ऑफ हिस्ट्री, पृष्ठ सं0 50–51

2. डॉ0 ओ0पी0 गावा : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा, मयूर पेपर वैक्स, नौएडा, नई दिल्ली पृ0 407

के लिए अन्तर्भोज व अन्तर्विवाह के अलावा चार बातों पर और जोर दिया था वह थी – जमीन का बटवारा, नारी सम्मेलनों का आयोजन, करके नारी जागृति उपाधियां समाप्त करने तथा पिछड़ों को 60 सैकड़ा संरक्षण।

जमीन के बटवारे को लेकर डॉ. लोहिया का मानना था कि भूमिहीन किसान ज्यादातर छोटी जाति के हैं, इसलिये इन पर दोहरी मार मन की और पेट की पड़ती है। इसलिये वे कहते थे कि जमीन का बटवारा जल्दी इस तरह किया जाय कि भूमिहीनों को खेती और मकान के लिए जमीन मिले। इसी प्रकार डॉ. लोहिया नर और नारी के कानूनी बराबरी कायम करने के लिए पक्षधर थे।

जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए डॉ. लोहिया आवश्यक मानते थे कि नाम के साथ जुडी उपाधियों का ऐसा संस्कार होना चाहिए कि उनसे किसी आदमी की जाति का संकेत न हो।

डॉ. लोहिया कहते थे कि जाति–प्रथा में एक कानून निहित है कि वह देश की रिक्त व योग्यता में सिकुडन एवं सिमटन पैदा करे। जाति–प्रथा के कारण गहरे संस्कार बनते हैं विशेष प्रकार के गुण खास तरह के गुटों में निरन्तर सिमटते जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप देश में योग्यता और शक्ति का

एक भयंकर रेगिस्तान बनता जा रहा है। ऐसी जाति प्रथा को जो सारे विश्व में केवल भारत देश में ही प्रचलित है समाप्त करना होगा।

डॉ. लोहिया कहते थे कि हजारों वर्षो से पिछड गए लोगों को बराबरी पर लाने के लिए उन्हें विशेष अवसर देना होगा। जातियों को कायम रखते हुए बराबरी कायम नहीं की जा सकती। बराबरी तभी कायम हो सकती है, जब जातियों का नाश हो तथा जातियों का नाश तभी हो सकता है जब पिछड़ी जातियों को विशेष अवसर प्रदान किया जाए। और इसके लिए उन्होंने पिछड़ों के लिए 60 सैकड़ा संरक्षण का सिद्धान्त दिया।[3]

डॉ. लोहिया को पिछड़ों क़ी परिभाषा से दलित आदिवासी पिछड़ी जातियां, महिला एवं अल्पसंख्यक आते थे। सही अर्थों में आजादी के बाद किसी एक नेता ने हर क्षेत्र में पिछड़े वर्ग को आगे लाने का प्रयास किया था, तो वह डॉ. लोहिया ने आरक्षण के सिद्धान्त को विश्लेषित करते हुए बताया था कि आरक्षण विशेष अवसर की नीति है। चूंकि हमारी समाज व्यवस्था में सैकड़ों वर्षों से जन्म के आधार पर छोटे–बड़े का भेद–भाव रहा है, अतः शिक्षा और नौकरी में सभी को समान

---

3. रघु ठाकुर– डॉ0 लोहिया एक चिर सत्याग्रही ''लोहिया स्मृति'' लोहिया संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाशित पृ0 64–65

अवसर नहीं मिल सकते। समाज के कुछ हिस्से ज्ञान से वंचित रहे और कुछ लोगों में ज्ञान सम्पदा व राजसत्ता तीनों सिमट गए ऐसे विषमता भरे समाज में समान अवसर की बात कहना पिछड़े व कमजोर लोगों के साथ अन्याय करना है। अगर एक व्यक्ति 20 कि.मी. आगे है दूसरा 20 कि.मी. पीछे हो तो उनमें दौड़ की प्रतियोगिता कराने का कोई अर्थ नहीं। जब तक कि पीछे वाले को आगे वाले की बराबरी पर न लाया जाय। पीछे वालों को विशेष अवसर देकर आगे वालों की बराबरी पर लाना यही विशेष अवसर का सिद्धान्त है। आजादी के बाद सबसे पहले डॉ. लोहिया ने ही अपनी संयुक्त समाजवादी पार्टी का अध्यक्ष स्व.रामसेवक यादव को बनाया था। डॉ. लोहिया की संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी पहली राष्ट्रीय पार्टी थी, जिसने पिछड़े वर्ग को यह अवसर दिया था। 1967 में जो संविद सरकारें बनी थी, उन सरकारों में भी डॉ. लोहिया ने पिछड़ों को विशेष अवसर देने की बात कही थी। मध्यप्रदेश की संविद सरकार ने समाजवादी पार्टी के दो मंत्री थे और डॉ. लोहिया के कहने पर डॉ. भागीरथ भंवर आदिवासी और आरिफ बेग को मंत्री बनाया गया था। 1989 में जनता पार्टी में डॉ. लोहिया के अनुयायियों के दबाव पर पिछड़ी जातियों की खोज के लिए मंडल कमीशन का गठन किया गया था। मंडल कमीशन की

रिपोर्ट 1980 में बन गयी थी, परन्तु काफी दिनों के संघर्ष के बाद कांग्रेस सरकार ने इस रिपोर्ट को संसद में पेश किया। हिन्दुस्तान का पहला पिछडा वर्ग आयोग स्व. जवाहर लाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व काल में बनाया गया था, परन्तु इस कमीशन की रिपोर्ट को तत्कालीन सरकार ने यह कहकर निरस्त कर दिया था कि रिपोर्ट वैधानिक कसौटियों पर खरी नहीं है तथा आयोग के अध्यक्ष काका कालेलकर ने पहले तो रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए परन्तु बाद में उस पर टिप्पणी दी। मंडल कमीशन ने उक्त बातों को ध्यान में रख कर पिछड़ी जातियों का सर्वेक्षण टाटा सांख्यिकी संस्थान से करवाया। इस जांच में वैज्ञानिक कसौटियों के आधार पर जांच की गयी थी। मंडल कमीशन की सिफारिशों में कहा गया था कि यद्यपि पिछडे वर्ग की आबादी देश में 52 प्रतिशत है, परन्तु सर्वोच्च्य न्यायालय की सिफारिश को ध्यान मे रखकर कि कुल आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक न हो, पिछडे वर्गो के लिए मात्र 27 प्रतिशत आरक्षण होना चाहिए। मंडल कमीशन की सिफारिश में नौकरियों में सरकारी अर्ध सरकारी एवं निजी क्षेत्र में तथा शिक्षा के क्षेत्र में 27 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की गई थी। यद्यपि समाजवादियों के दबाव ने 1991 में यह रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत हो गई, परन्तु कांग्रेस सरकारों ने इस पर कोई अमल नहीं

किया, 1989 में जनता दल ने अपने घोषणा पत्र पें मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा की थी। 1990 में मंडल कमीशन की सिफारिशों को जनता दल की सरकार ने लागू करने का एलान किया था, परन्तु चूकि लागू करने के पीछे केवल चौ. देवीलाल उपप्रधानमंत्री को मंत्री परिषद से बाहर निकालने की सृष्टि थी अतः जनता दल सरकार ने जितनी तैयारी इस रिपोर्ट को लागू करने के पहले करना चाहिए थी वह नहीं की। केन्द्र सरकार की नौकरियों में आरक्षण की सूचना जारी की गई, परन्तु उसमें कुछ ऐसी खामियां छूटी जिससे न तो पिछड़े वर्ग को ठीक ढंग से लाभ मिला और न ही उनकी एकता कायम हो सकी। इसके कुछ उदाहरण निम्न है :–

1. आरक्षण को निजी क्षेत्र में लागू नही किया गया है।
2. आरक्षण को शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू नहीं किया गया है।

एक तरफ तो जनता दल सरकार ने मंडल कमीशन को स्वीकार किया वहीं दूसरी तरफ मंडल कमीशन द्वारा बनाई गई पिछड़ी जातियों की सूची को यथावत स्वीकार नहीं किया। सरकारी अधिसूचना में लिखा गया था कि इसके परिणाम स्वरूप जिन राज्यों में पिछड़े वर्ग की सूची तैयार नही कराई गई है, उन राज्यों का समूचा पिछड़ा वर्ग छूट गया। और जिन राज्यों

ने राज्य की सूचियाँ थी परन्तु राज्य और केन्द्र की सूची में फर्क था उस फर्क के आधार पर बहुतेरी जातियां छूट गई है। ऐसी और भी अनेक जातियां थी जिनका जिक्र मंडल कमीशन में नही था परन्तु जिन्हें या तो राज्य सरकार के द्वारा पिछडी जाति में रखा गया था या जिनकी पहचान मंडल कमीशन नही कर सका था। उन जातियों को भी न्याय नहीं मिला। उस समय 23 अक्टूबर 1990 को दिल्ली में आरक्षण मंच के सुझाव तत्वाधान में एक विशाल रैली के माध्यम -से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री वी.पी.सिंह से प्रस्तावों के माध्यम से निम्नलिखित मांग रखी गयी थी।

**प्रस्ताव क्रमांक–1**

यह सभा केन्द्रीय सरकार के द्वारा आरक्षण की जो योजना बनाई गई है उसका स्वागत करती है।
सभा को खेद है कि सामाजिक न्याय की प्रस्थापना हेतु बढ़ाए गए इस कार्य का कतिपय समाचार पत्र और सत्ताधारी वर्ग न सिर्फ विरोध कर रहे हैं, बल्कि युवा वर्ग की भावनाओं को भड़का कर उन्हें आगजनी, तोड़–फोड़, कत्ल और आत्मदाह के रास्ते पर ले जा रहा है। अब इस आरक्षण विरोधी आंदोलन

पर असामाजिक तत्वों ने पूरी तरह कब्जा कर लिया है। और सार्वजनिक वाहनों को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया है ताकि साधारण जनता को उससे तकलीफ पहुंचे । यह सभा उस समाज विरोधी तत्वों की निन्दा करती है और सरकार से अपील करती है कि इन समाज विरोधी तत्वों से युवा वर्ग को मुक्त कराने के लिए इनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही की जाय।

सरकार ने सार्वजनिक सेवाओं में आरक्षण नीति लागू करने की घोषणा तो की है परन्तु उसे कार्यान्वित करने के लिए जो और कदम उठाये जाने चाहिए उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया।

यह सभा सरकार के सामने कुछ सुझाव रखना चाहती है। :-

1. सरकार द्वारा सम्पूर्ण पिछडे वर्गों के लिए एक केन्द्रीय सूची बनाई जाय। तथा उससे सभी जातियों जैसे जाट, भेव, मराठा, पटेल, सैनी, कम्बोज, कुर्मी को तथा मुस्लिम गूजर और मुसलमान तथा ईसाईयों में जो पिछड़ी श्रेणियां है उन्हें भी केन्द्रीय सूची में सम्मिलित किया जायेगा। यह सूची समूचे देश पर लागू हो।

2. पिछडों की सूची को दो भागों में बांटा जाय। एक भाग भूमिधारकों का हो और दूसरा गैर भूमिधारकों का हो। 27 प्रतिशत आरक्षण को इन दो हिस्सों में न्याय पूर्ण ढंग से बांटा जाय।

3. वर्तमान जनगणना में विभिन्न जातियों की और पिछडी श्रेणियों की गिनती स्वेच्छा के आधार पर की जाय। तथा उनकी शैक्षणिक स्थिति सरकारी सेवाओं में उनका स्थान उनके निवास की अवस्था आदि के बारे में सभी जानकारी शामिल की जाय। क्योंकि संविधान की मांग कि पिछड़े वर्गो को सरकारी सेवाओं में पर्याप्त साझेदारी मिले। इसलिए उपरोक्त जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

जिन श्रेणियों को पर्याप्त साझेदारी मिली है इसका पता उपरोक्त जानकारी प्राप्त करने के बाद ही चलेगा। जिन श्रेणियों ने शैक्षणिक तरक्की तथा आरक्षण के जरिए पर्याप्त साझेदारी प्राप्त की है उन श्रेणियों के लिए वार्षिक मापदण्ड तय किये जा सकते है। व आगे चलकर उन्हें आरक्षित सूची से हटाया भी जा सकता है। फिलहाल जानकारी के अभाव में आर्थिक कसौटी की बात करना सामयिक नहीं होगा।

सभा की राय में 50 प्रतिशत आरक्षण की सीमा निर्धारित करने के लिए कोई संवैधानिक आधार नहीं है। अतः सरकार ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा पिछड़ों के लिए जो 40.5 प्रतिशत आरक्षण किया जा रहा है उसके अलावा 5 प्रतिशत गरीब परिवारों के लिए और 5 प्रतिशत महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किया जाय। केन्द्र में सभी आरक्षण सरकारी

सेवाओं तक सीमित किया गया है। राज्यों में यह शैक्षणिक संस्थाओं में भी एक अर्से से लागू हो चुका है। केन्द्रीय उच्च शिक्षा की संस्थाओं में इस तरह की आरक्षण व्यवस्था लागू की जाय। जो राज्यों में अस्तित्व में हैं।

इस सभा की राय है कि देश के सभी नौजवानों को अपनी इच्छा के अनुसार उच्च शिक्षा दिलाने की जिम्मेदारी केन्द्र व राज्य सरकारें की है। हम पिछडों के लिए आरक्षण चाहते है, परन्तु हमारी यह मंशा नहीं है कि दूसरों के रास्ते में बाधा उत्पन्न की जाय। अतः सरकार को चाहिए भी कि फिजूलखर्ची, भ्रष्टाचार बेरोजगारी आदि के खिलाफ कठोर उपाय करके उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन देकर सरकार की आमदनी के स्रोत बढाए जाय। तथा कालेजों के विस्तार के ऊपर खर्च किया जाय। ताकि सभी नौजवानों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने में आसानी हो।

यह सभा सरकार से मांग करती है कि अनुसूचित जातियों पिछड़े वर्ग तथा गरीब लोगों के लिए जगह-जगह वाचनालय खोले जांय ताकि पढ़ाई के काम में उन्हें आसानी हो इसी तरह इन वर्गो के लिए शिक्षा तृप्ति मुत पाठ्य पुस्तक आदिका इंतजाम ठीक ढंग से किया जा सके। आरक्षण से योग्यता को ठेस पहुंचती है, यह तर्क गलत है। तमिलनाडु आदि

जिन राज्यों में आरक्षण एक अर्से से लागू है वहां पढ़ाई में सभी छात्र इतनी तरक्की कर रहे हैं कि इंजीनियरिंग डाक्टरी आदि संस्थानों में प्रवेश के लिए जो न्यूनतम अंक तय किये जाते हैं उनसे और पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए जो अंक निर्धारित किए जा रहे हैं, उनमें जो फर्क था वह धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है। प्रवेश पाने वाले सभी छात्रों को 82 प्रतिशत से 86 प्रतिशत अंक प्राप्त हुए है। जबकि अनारक्षित स्थानों पर न्यूनतम अंक 87 प्रतिशत थे। इससे पता चलता है कि योग्यता सम्बन्धी आरोप सर्वथा भ्रांति मूलक है। इस सभा को इस बात पर गहरी चिन्ता है कि प्राथमिक शिक्षा ही नहीं माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा धीरे–धीरे खत्म होती जा रही है। अध्यापक और प्राध्यापक न पढ़ाते हैं न लडके पढ़ते हैं। बहुत से शिक्षक केवल वेतन लेने जाते है। इस माहौल को समाप्त करना चाहिए। जब तक प्राथमिक और कहा जाय तो शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी तथा समाज के सभी वर्गों के लिए समान नहीं होगी और प्राथमिक तथा सम्पूर्ण शिक्षा के क्षेत्र में विशेष स्कूलों का समाप्त नहीं होगा तब तक न तो शिक्षा का स्तर सुधरेगा और न ही सामाजिक न्याय की प्रस्थापना होगी।

यह सभा यह कहना चाहती है कि जब तक रोजगार

की समस्या को युद्ध स्तर पर हल नहीं किया जायेगा तब तक युवा वर्ग में जो सर्व व्याप्त असंतोष है उसका निहित स्वार्थ वाले तत्व तथा समाज विरोधी लोग नाजायज फायदा उठा रहे हैं, समाप्त नहीं होगा। अतः यह सभा सरकार से मांग करती है कि वह अपने आर्थिक योजनाओं में बुनियादी परिवर्तन कर युवा वर्ग के लिए उन्नति व पुरूषार्थ का मार्ग प्रशस्त करे।

**प्रस्ताव क्रमांक – 2**

यह सभा सरकार से अपेक्षा करती है कि खुले दिमाग से छात्रों से बात करें तथा वर्तमान संवादहीनता की स्थिति को छोड़कर आरक्षण के पक्ष में राष्ट्रीय मतैक्य बनाने की पहल करें।

यह सभा सरकार से मांग करती है कि अपने वायदे के उनुसार रोजगार का मूल अधिकार संविधान में जोडा जाय तथा युवकों को बेरोजगारी भत्ता दिया जाय।

अन्त में यह सभा युवा वर्ग से अपील करती है निहित स्वार्थो के चाल में न आए और परस्पर सहयोग और तरक्की का रास्ता अपनाएं।

**प्रस्ताव क्रमांक – 3**

यह सभा इस बात से आश्चर्य चकित है कि सर्वोच्च

न्यायालय ने न्यायिक इतिहास में पहली बार न्यायिक आधार पर स्थगन आदेश न देकर अन्य आधारों पर दिया है यह सभा सर्वोच्च न्यायालय से अपेक्षा करती है कि खंड–पीठ में अनुसूचित जातियों व पिछड़ी जातियों की न्यायाधीश भी शामिल किए जाय। ताकि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर देश में विश्वास बना रहे।

यह सभा सरकार से मांग करती है कि आरक्षण के मामले को संविधान की अनुसूची (9) में जोड़ा जाय जिससे अनावश्यक कानूनी दावपेंच से बचा जा सके। परन्तु जनता दल के कतिपय नेताओं ने जो कि सरकार में मंत्री भी थे, सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के लिए भड़काऊ बोली और बड़ी जातियों के विरूद्ध घृणा फैलाने का तरीका इस्तेमाल किया। दरअसल छोटे कद के नेताओं ने डॉ. लोहिया के विशेष अवसर के सिद्धान्त की आत्मा को ही भुला दिया।

डॉ. लोहिया ने विशेष अवसर के सिद्धान्त की व्यवस्था जाति व्यवस्था को मिटाकर समता की व्यवस्था को लाने के लिए की थी। न कि जाति घृणा फैलाने के लिए और नये जातिवाद को बनाने के लिए डॉ. लोहिया ने कभी भी बडी जातियों के प्रति घृणा फैलाने को नही कहा था बल्कि बडी जाति के विचारवान लोगों को आगे करके इस सिद्धान्त का विचार शुरू किया था। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दुस्तान में

सामाजिक क्रान्ति की शुरूआत जिन महान लोगों ने की वे अगड़ी जातियों से ही आए थे। भगवान बुद्ध, भगवान महावीर स्वामी, विवेकानन्द स्वामी, दयानन्द, गुरूनानकदेव महात्मा गांधी, डॉ. राम मनोहर लोहिया, मधु लिमए जैसे कितने ही महान विचारकों की लम्बी श्रृंखला है जिनका जन्म अगड़ी जातियों में हुआ था परन्तु जिन्होंने अपना सब कुछ पिछड़ों व दलितों के लिए बलिंदान व कुर्बान कर दिया परन्तु जब कुछ नादान लोग आरक्षण के मुद्दे को लेकर समूची निज जातियों को अपमानित करने का प्रयास करते है तो वे न केवल जाति घृणा फैलाते है और समाज को भी बांटते है। बल्कि देश की उन महान आत्माओं का भी अपमान करते है जनता दल के कुछ बौने नेताओं के या ऐसे ही कामों के चलते समूचा देश आग की लपटों में जलने लगा था वरन इतिहास कुछ और होता।[4]

आरक्षण को लेकर कुछ और भी गलत फहमियां हमारे देश के नवयुवकों के दिमाग में है। जैसे हमारे देश के आम सवर्ण युवक यह मानते है कि अगर आरक्षण लागू होगा तो उनके लिए रोजगार नहीं मिलेगा जबकि तथ्य कुछ और है। भारत सरकार की प्रथम और द्वितीय श्रेणी की बकाया नौकरियां न के

---

4. सहदेव सिंह गौतम – गैर कांग्रेसवाद ''लोहिया स्मृति'' लोहिया संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाशित पृ0 सं0 80–81

बराबर हैं, जिस देश में सात करोड़ के करीब लोग मैट्रिक पास करके रोजगार की लाइन में खड़े हैं, जिस देश में लगभग दस करोड़ लोग अशिक्षित व अर्ध बेरोजगार हों और सब मिलाकर 17 करोड़ लोग बेरोजगार हों, वहां सात हजार प्रथम व द्वितीय श्रेणी की नौकरियों को भरने से न तो पिछड़ों की बेकारी मिटना है और न अगड़ों की बेकारी मिटना है। सच्चाई यह है कि आरक्षण या पिछड़ों को विशेष अवसर का सिद्धान्त लोगों को रोजगार देने के लिए नहीं है बल्कि हिस्सेदारी के लिए है, हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा हमारी पुरानी सामाजिक व्यवस्था के चलते और समान अवसर नहीं मिलने के कारण कमजोर व पंगु पड़ चुका है। इसमें हजारों साल में निष्क्रियता आ चुकी है और जब तक विशेष प्रयास करके इसकी निष्क्रियता दूर नहीं की जायेगी इसमे हलचल पैदा नही की जायेगी तब तक यह पंगुपन दूर नहीं हो सकता है। आरक्षण हिस्सेदारी की भावना के लिए है, और जड़ता में चेतना पैदा करने के लिए है। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि इतनी बड़ी आबादी वाला देश होने के बावजूद हम लोग इतने लम्बे समय तक गुलाम क्यों रहे? सच्चाई यह है कि जाति प्रथा ने हमारे देश के आम लोगों की भागीदारी को कम कर दिया था। और भागीदारी नहीं होगी तो देश की व्यवस्था को चलाने में लोगों की दिलचस्पी पैदा

नहीं होगी आरक्षण राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र को मजबूत करने के औजार है। अतः एक मजबूत और बराबरी का समाज बनाने के लिए डॉ. लोहिया के सपनों को साकार करने के लिए हमें एक तरफ पिछड़े वर्गो को विशेष अवसर देना होगा वहीं समाज ही बड़ी जातियों को भी आपसी संवाद और चर्चा के द्वारा सहमत कराना होगा। समाज के निज अपने ही भाइयों को उठाने के एक बड़े लक्ष्य के लिए अपना कुछ त्याग करें और समाज के पिछड़े और दलित निज जातियों के विरोध के बजाय उस मानसिकता और प्रवृत्ति से लड़ें।

निज मानसिकता का मतलब होता है— विषमता की व्यवस्था। और हमें यह भी नहीं भूलना है कि जब पिछड़ी जातियों के लोग अतीत का हवाला देकर अगड़ों के खिलाफ घृणा या भेदभाव की भाषा का इस्तेमाल करते हैं तब वे पिछड़े न रहकर द्विज बन जाते है। पिछड़े वर्ग का आंदोलन समता का आंदोलन है और ऐसा हर आंदोलन जो बिषमता आधारित होगा उसे करने वाला चाहे वह अगड़ा या पिछडा व ब्राह्मणवादी मानसिकता का होगा। हम अक्सर यह देखते है कि पिछड़ी जातियों में सम्पन्न लोग भी अपने निजी जीवन में द्विजों के तरीके का अनुसरण करते हैं। हमें बड़े बनने की ललक छोड़ना होगी व बराबरी पैदा करनी होगी। बड़ों के नकलची बनने की

बजाय गरीबों से एकाकार होना पड़ेगा। यही लोहिया की दृष्टि थी।

डॉ. लोहिया का कहना था कि इस देश में 60 प्रतिशत पिछड़े और दलित वर्ग के लोग रहते है। जब तक उनकी उन्नति न हो तब तक देश पिछड़ा ही रहेगा। जब तक हम अंग्रेजी का प्रयोग करते रहेंगे तब तक हम भारतीय संस्कृति की महानता को अपने कार्य क्षेत्र में प्रयोग नही कर पायेंगे। भारतीय भाषाएं देश की जनता की भाषा है। उनके प्रयोग से ही हम जन–जन के दिल की बात को समझ सकेंगे और देश के उत्थान के लिए कुछ कर पायेंगे।[5]

डॉ. राममनोहर लोहिया कमजोरों पिछड़ों को विशेष अवसर देकर ऊपर उठाने के हिमायती थे। वे देश के जातीय ढांचे से क्षुब्ध थे। उनका मानना था कि योग्यता न हो तो भी विशेष मौका देकर अति पिछड़ों को ऊपर उठाने का काम किया जाना चाहिए। "जाति अध्ययन और विनाश संघ" के घोषणा पत्र में डॉ. लोहिया ने कहा *"पिछड़े और दबे हुऐ समुदायों को जैसे औरत, शूद्र और हरिजन आदिवासी को राजनीतिक पार्टियों राष्ट्रीय अर्थतन्त्र और सरकारी नौकरियों में*

---

5. वी0 सत्यनरायण रेड्डी – मेरे प्रेरणा के स्रोत डॉ0 लोहिया "लोहिया स्मृति" लोहिया संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाशित पृ0 34–35

*ऊँची जगहों पर विशेष अवसर देना चाहिए*[6]

डॉ. लोहिया ने 'सन् 1958 में जातियों और वर्गों को मिटाने की ओर' शीर्षक के साथ अपने एक शक्तिशाली लेख द्वारा जाति पर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। अप्रैल 1968 के अपने वनारस सम्मेलन में सोशलिस्ट पार्टी ने डॉ. लोहिया की जातिनीति को मंजूर किया और हरिजनों, शूद्रों, औरतों, दलित मुसलमानों , ईसाइयों और आदिवासियों के लिए सार्वजनिक जीवन में साठ प्रतिशत पदो के आरक्षण की मांग की थी। इसके बाद सोशलिस्ट पार्टी के सभी सम्मेलनों में निरपवाद तौर पर इस नीति का अनुमोदन किया गया। समाजवादी आन्दोलन में इसके बाद के दो दशकों में यह सामाजिक नीति समाजवादियों को केवल स्वीकृत आस्था ही नहीं बनी रही बल्कि दूसरी राजनीतिक धाराओं के विरूद्ध खास पहचान भी बन गयी थी। इसके बाद केन्द्र और राज्यों में समाजवादियों की सत्ता के संक्षिप्त समय में आयोगो की नियुक्ति एक बिल्कुल अलग और लंबी कहानी है। कहने की जरूरत नहीं कि आरक्षण नीति के रूप में जातिनीति के जन्मदाता डॉ. लोहिया थे।

एक महान दार्शनिक की तरह डॉ. लोहिया अपनी नीति

---

6. डॉ0 राममनोहर लोहिया– "जातिप्रथा" पृ0 145

में मौजूद और अन्तर्निहित खतरों को जानते थे। जिस लेख में इस नीति का प्रतिपादन किया था उसी में उन्होंने सावधान किया है : निचले दर्जे की जातियों और गुटों को ऊपर उठाने की इस नीति से बहुत सा जहर भी फैल सकता है। इसके बाद वह पांच तरह के विषों का वर्णन करते है।

आदमियों के मन पर इसका जो तात्कालिक असर पड़ेगा, उससे यह एंक जहर निकल सकता है कि वह फुर्ती से द्विज को तो नाराज कर देगा पर उतनी ही फुर्ती से शूद्र को प्रभावित नहीं करेगा। डॉ. लोहिया की चेतावनी के बावजूद विश्वनाथ प्रताप सिंह ने वही किया। जब 1990 में उनका हटाया जाना निश्चित हो गया था तब उन्होने मंडल आयोग के अनुसार पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा अचानक कर दी। पिछड़े वर्गो को संगठित और शिक्षित करने की बात तो दूर, अनुकूल राजनीतिक वातावरण भी नहीं पैदा किया गया था। न कोई दूसरा समुचित पूर्व प्रयास ही हुआ था। एकमात्र स्पष्ट लक्ष्य था कि समाज के इन हिस्सों का समर्थन फौरन हासिल कर लिया जाये। परिणाम सर्वविदित है। देशभर में हिंसा फैल गयी। छात्रों ने उत्पात शुरू कर दिया बहुतों ने आत्मदाह तक कर डाला। मध्यम वर्गो ने हरिजनों के आरक्षण पर भारी सवाल खड़ा करना शुरू कर दिया। व्यक्तिगत राजनीतिक लाभ

के लिए पूरी की पूरी नीति को दाव पर लगा दिया गया था। इन नीति में आस्था न रखने वाला कोई व्यक्ति ही यह कर सकता था। जाति को मिटाना किसी समाजवादी के लिए उतना ही महत्वपूर्ण एवं पवित्र कार्य है जितना किसी मार्क्सवादी के लिए वर्ग का मिटाना। सौभाग्यवश केन्द्र में सरकार के बदलाव और सर्वोच्च न्यायालय में मामला पहुँच जाने से सामान्य स्थिति स्थापित करने में मदद मिली। इससे यही सबक कोई ले सकता है कि जब सिद्धान्तों को स्वार्थ या गुट के हित की सेवा में जुटा दिया जाता है तो उनमें आदर्श का आकर्षण और सामान्य नैतिकता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार सत्य का ह्रास होता और पाखंड जन्म लेता है।

छोटी जातियों के बीच वृहत्काय, जैसे अहीर और दलित, इस नीति के फल को सैकड़ों छोटी जातियों के बीच बांटे बिना खुद ही चट कर लेते है, जिसका नतीजा होगा कि ब्राह्मण और दलित तो अपनी जगहें बदल लेगे पर जाति वैसी ही बनी रहेगी। अगर राजनीति कोई परिमाण है तो यही दो जातियाँ हरिजनों और पिछड़ों के पूरे भाग को भरे हुये है। उत्तर प्रदेश के मुलायम सिंह और किसी सीमा तक बिहार के लालू प्रसाद यादव में यह योग्यता है कि दूसरी जातियों को भी अपने साथ जुटा लेते है। लेकिन वहाँ से भी बेनीप्रसाद वर्मा और

नीतिश कुमार का समय समय पर असहमति का स्वर सुनाई देता है। ये दोनों दूसरी मुख्य जाति कुर्मी से सम्बन्धित हैं। गौर करने लायक बात यह है कि दूसरी बिखरी हुई पिछड़ी जातियाँ राज्य स्तर पर भी नेतृत्व का निर्माण और प्रदर्शन नहीं कर पायी है। मात्र सम्मानित अपवाद समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर थे। इस खतरे से पूरी तरह परिचित होने के कारण उन्होंने ठीक और न्यायोचित रूप में पिछड़ों के भाग को दो तरह की कम और ज्यादा पिछड़ी जातियों में बांट दिया था। तथापि इस नीति के समर्थकों को इस बुराई के बाबत सदैव सतर्क रहना होगा।

नीचे की जातियों के ही स्वार्थी लोग अपनी व्यक्तिगत बढ़ोत्तरी के लिए इस नीति का दुरूपयोग भी कर सकते है। वे इसके लिए जातीय ईर्ष्या द्वेष और षड्यंत्र के हथियारों का अतिरिक्त प्रयोग भी कर सकते है। जनता दल के टिकट वितरण कमेटी के कटु दोषारोपण का आदान–प्रदान इस बुराई का पहले दर्जे का उदाहरण है। इसके दो नेता शरद यादव और रामविलास पासवान ने जाति के अनुसार नामांकनों की पैरवी खुलकर की । उन्होंने अपने विचारों को सार्वजनिक रूप में भी रखा। अपने भाषणों में भी वे जाति द्वेष की दुर्भावनाओं को उभारने की कोशिश की है। नीति के नाम पर कट्टर जातिवाद

की पैरवी की जा रही है। जाति के अनुसार गिरोहबंदी की यह बुराई सिर्फ राजनीति तक ही सीमित नहीं रही। यह अपराध की दुनिया में भी फैल गयी है। क्या हम हर रोज नहीं सुनते कि किसी गूजर गिरोह, त्यागी गिरोह, यादव गिरोह, ठाकुर गिरोह या तिवारी गिरोह ने कोई वारदात की है। लोहिया जी इस नीति के माध्यम से जाति को मिटा देना चाहते थे लेकिन जनता दल नेता अपने स्वार्थी हितों के लिए जाति को और मजबूत बना रहे है। समूचा चक्र उलटा चल पड़ा है।

चुनाव का चयन का हर एक मामला शूद्र और द्विज के बीच कटुतापूर्ण बोलाचाली मारा–पीटी का अवसर बन सकता है। दबी जातियों के ओछे तत्व इस हथियार का इस्तेमाल लगातार कर सकते है। लोहिया जी एक सशक्त चुंबक थे। उन्होने देशभर के हजारों युवक युवतियों औरतों को समाजवादी आन्दोलन में आकर्षित किया। उनमे ज्यादातर लोग अगड़ी जातियों के थे। आदर्शवाद की आग से प्रेरित होकर ये युवा लोग जातिमुक्त समाज बनाने के समाजवादी आदर्श के लिए लड़े, मुसीबतें झेली और जेल गये। नीति को जाने–बूझे तौर स्वार्थ के लिए दुरूपयोग की संभावना से अवगत डॉ. लोहिया ने अपनी किताब 'जातिप्रथा' में लिखा है राजनारायण सिंह मधुलिमये और बालेश्वर दयाल जैसे लोग भी ब्राह्मण परिवारों से

आये हैं और सोशलिस्ट पार्टी या किसी दूसरी भारतीय पार्टी में भी इनसे बढ़िया आदमी नही पाया जा सकता । पिछड़ी जाति के एक कांग्रेसी नेता डॉ. लक्ष्मण रावत 1961 में सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये । डॉ. लोहिया ने अपनी इसी किताब में डॉ. रावत की सराहना इन शब्दों में की है : मैने सुना कि हाल की सभा में उन्होंने कहा कि वह सोशलिस्ट पार्टी के एक ब्राह्मण और राजपूत को दूसरी पार्टियों के पिछड़ी जातियों की बनिस्बत प्राथमिकता देंगे क्योंकि सिद्धान्त ही निर्णायक हैं। क्योंकि वे ऊँची जातियों में पैदा हुये हैं, कांग्रेस के किसी हरिजन या शूद्र नेता की बनिस्बत पिछड़ी जातियों के लिए ज्यादा काम करेंगे। लेकिन जनता दल में नये सामाजिक क्रांतिकारी होने के खुद दावा करने वाले इस सच्चाई को नहीं मानतें। किसी पुराने समाजवादी की मौजूदगी उनके भीतर भय की भावना भरने लगती है। कमजोर आदमी ज्यादा निर्दयी होते है। निर्दयता के कामों से वह अपनी कमजोरी छिपाने की कोशिश करता है। पार्टी में जब किसी पद क़े लिए कोई मान्यता प्राप्त समाजवादी नाम का जिक्र उठता है तो उसे अलग करने के लिए ये मुट्ठी लोग आरक्षण सिद्धान्त की तलवार का इस्तेमाल करते हैं। इसी का नतीजा है कि आत्मसम्मानी समाजवादी लोग बड़ी संख्या में या तो निष्क्रिय हो गये हैं या अन्य सामाजिक कार्यों में लग

गये हैं। नतीजे के तौर पर जनता दल चापलूसों और छोटे–मोटे मतलब निकालने वालों की पार्टी के रूप में सिकुड़ गये है।

ये आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को धुंधला बना सकते हैं या उन्हें पृष्ठभूमि में धकेल सकते हैं। वर्तमान राजनीतिक पटल पर जनता दल सबसे ज्यादा भटकी हुई पार्टी है। इसे यही नहीं मालूम कि वह किससे लड़ रही है। क्या वह कांग्रेस से, भाजपा से या मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी के साथ लड़ रही है। जब 1967 में डॉ. लोहिया ने गैर कांग्रेसवादी नीति की पैरवी की तो उन्होंने घोषणा की थी बड़े दुश्मन–कांग्रेस को हराने के लिए जनसंघ समेत कम बुरी ताकतों के साथ हाथ मिला लेंगे। जनता दल के नेताओं को यह कठिन फैसला करना ही होगा अन्यथा उन पर स्पष्ट नीति निर्धारण से कतराने का आरोप लगेगा। मुलायम सिंह यादव ने यह फैसला मजबूती से किया है। श्री यादव के लिए भाजपा ज्यादा बडी दुश्मन है और वह इससे पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ लड़ेंगे। आर्थिक मोर्चे पर भी बहुराष्ट्रीय निगमों के खिलाफ खोखली नारेबाजी भर से काम नहीं चलेगा। जनता दल को सुरक्षित क्षेत्रों और उन क्षेत्रों को भी जिन्हे अनुदान और सीधे आर्थिक सहायता मिलनी चांहिये चिन्हित करना होगा। इस की बहुत शेखी भरी धर्मनिरपेक्षता भी खतरे में है। इससे

इमामों और मुतियों जैसे साम्प्रदायिक लोगों द्वारा निश्चित रूप से बचाया नही जा सकता।[7]

अंत में यह नहीं भूलना चाहिये अगर मन्दिर अब कोई मामला नही रह गया है तो मंडल के वेष में सिर्फ जातिवाद भी जीत नही दिला सकता।

---

7. ललित मोहन गौतम– आरक्षण नीति और डॉ० लोहिया ''नवभारत टाइम्स, 12 मई 1991

# अध्याय - पंचम

## वी0पी0 मण्डल और उनके नेतृत्व में गठित आयोग का प्रतिवेदन

श्री वी0पी0 मण्डल का जन्म 1918 में बिहार के सहरसा जिले में एक समृद्ध जमींदार परिवार में हुआ था। वे श्री रामबिहारी लाल मण्डल के सबसे छोटे बेटे थे। उन्होंने पटना कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भागलपुर जिला परिषद में सदस्य के रूप में अपना सार्वजनिक जीवन शुरू किया। बिहार विधान सभा में भी वे कांग्रेस विधायक के रूप में 1952 से 1965 तक रहे।

वर्ष 1965 में, अपने जिले पामा ग्राम में पुलिस ज्यादतियों के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुये वे नाटकीय अन्दाज में कांग्रेस पार्टी को छोड़कर विरोधी पक्ष के हो गये। तब उन्होंने डॉ0 राममनोहर लोहिया की संयुक्त समाजवादी पार्टी ज्वाइन की, तब वे पार्टी के प्रदेश शाखा अध्यक्ष बनाये गये।

वर्ष 1967 में इसी पार्टी के टिकट पर वे माधेपुरा क्षेत्र से लोकसभा सदस्य के रूप में चुने गये तथा अपने साथियों के दबाव के कारण बिहार की यूनाइटेड फ्रन्ट सरकार के स्वास्थ्य मन्त्री बने। डॉ0 लोहिया सैद्धान्तिक रूप से इस बात के विरोधी थे कि कोई लोकसभा सदस्य प्रदेश सरकार का मन्त्री

बने। उनके प्रतिरोध के कारण श्री मण्डल ने अगस्त,1967 में स्वास्थ्य मंत्री मद से इस्तीफा दे दिया पर इसके लिये संयुक्त समाजवादी दल को क्षमा नहीं किया। मंत्री पद से त्याग—पत्र देते ही उन्होंने 'शोषित दल' नाम से एक नई पार्टी का सृजन किया और बिहार में शोषित—कांग्रेस संयुक्त विरोध पक्ष के नेता बने। फरवरी,1968 में कई वैधानिक आपत्तियों के होते हुये उन्होंने शोषित दल के 5 सदस्यीय मंत्रिमण्डल के मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की। 47 दिन के अन्दर ही कांग्रेस द्वारा लाये गये अविश्वास प्रस्ताव से उनके मंत्रिमण्डल का पतन हो गया।

वर्ष 1977 में वे पुनः लोकसभा सदस्य के रूप में निर्वाचित हुये। वर्ष 1978 में जनता शासन में पिछड़ी जातियों हेतु जो आयोग बना, श्री वी0पी0 मण्डल को उसका अध्यक्ष बनाया गया। मण्डल आयोग ने अपनी रपट 31 दिसम्बर 1980, 1980 में सरकार को प्रस्तुत की। 2 फरवरी,80 को मण्डल ने जनता पार्टी से त्याग पत्र दे दिया था और ये कह कर कांग्रेस में ज्वाइन करने की इच्छा प्रकट की थी कि "मैं श्रीमती इन्दिरा गांधी को देश की समस्यायें हल करने में सहयोग देना चाहता हूँ।"

कांग्रेस शासन में मण्डल आयोग की रिपोर्ट को विशेष महत्व नहीं दिया गया और वह बन्द अलमारी की

शोभा बढ़ाती रही। कालान्तर में श्री मंडल भी देश की राजनीतिक क्षितिज में धुंधलाते चले गये। 13 अप्रैल, 1982 में 64 वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई। उस समय वे मात्र 'इतिहास के धूमिल पद चिन्ह' बनकर रह गये थे।

"पिछड़ी जाति को पिछड़ा वर्ग कहा जा सके" इस रिपोर्ट में गृह मंत्रालय द्वारा वर्ष 1961 में राज्य सरकारों को सलाह दी गयी थी, यद्यपि राज्य सरकारें 'पिछड़े वर्ग' को परिभाषित करने के लिये अपने मापदंड सुनिश्चित करने के लिये स्वतंत्र होंगी परन्तु भारत सरकार के अनुसार ये श्रेयस्कर होगा कि जाति के बजाय आर्थिक आधार को मापदण्ड बनाया जाये।[1]

संविधान की मंशा स्पष्ट है। उसका इरादा उन लोगों की मदद करना है जो पिछड़े वर्ग के हैं। अगर पिछड़ा वर्ग और पिछड़ी जाति समानार्थक होती तो एम0आर0 बाला जी बनाम मैसूर सरकार के कानूनी प्रकरण में उच्चतम न्यायालय को निम्न टिप्पणी करने की आवश्यकता न पड़ती।

"सामाजिक पिछड़ापन को निश्चित करने के लिये जाति एक महत्वपूर्ण अवयव हो सकती है परन्तु मात्र उसी को पिछड़ेपन को परिभाषित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है।"

---

1. सुपर ब्लेज मासिक पत्रिका, पृ0 19

पुनः आर0 चित्रलेखा बनाम मैसूर सरकार के कानूनी प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि 'जाति, वर्ग नहीं है वर्ग को परिभाषित करने में जिसकी प्रासंगिकता हो सकती है परन्तु 'पिछड़ी जाति' नहीं पिछड़े वर्ग को परिभाषित करना है और उसके लिये जाति को संकेतक माना जाये ये आवश्यक नहीं मात्र ऐच्छिक है।''

उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त वर्णित निर्णयों से भी यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं की मंशा यदि 'पिछड़ी जाति' को ही उचित प्रतिनिधित्व देने की होती तो जिस तरह उन्होंने 'परिगणित' व जनजाति शब्द का प्रयोग किया उसी तरह 'पिछड़ी जाति' शब्द का इस्तेमाल करने की भी उन पर कोई रोक नहीं थी। यदि उन्होंने पिछड़ी जाति के स्थान पर स्पष्टतः 'पिछड़े वर्ग' का प्रयोग किया तो उनके अवचेतन में निश्चित ही पिछड़े वर्ग और पिछड़ी जाति को लेकर अलग–अलग अवधारणा रही होगी।

केन्द्र व राज्य सरकारों ने विभिन्न स्तरों पर पिछले 40 वर्षों में हमेशा ही ये मत व्यक्त किया है कि किसी जाति को पूर्णरूप से पिछड़ी मानने का तात्पर्य होगा कि उस जाति के सुविधाग्रस्त लोगों को आरक्षण का लाभ दिया जाये जिसका तात्पर्य उस जाति के असुविधाग्रस्त लोगों को, आरक्षण लाभ से वंचित करना होगा।

प्रथम पिछड़ा जाति आयोग के अध्यक्ष कालेलकर ने अपनी रपट में कहा था— "मैं निश्चित रूप से सरकारी नौकरियों में किसी जाति विशेष के लिये पद आरक्षित करने के विरुद्ध हूँ क्योंकि सरकारी नौकरी नौकरों के लाभ के लिये नहीं अपितु पूरे समाज के लाभ के लिये है।" अस्तु यह तो स्पष्ट है ही कि मंडल आयोग की रिपोर्ट प्रथम आयोग की अवधारणा के पूर्णतः विरुद्ध है।[2]

नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी के अध्यक्ष पी०के० नारायण पनिकर के अनुसार— "जाति आधार पर आरक्षण का तात्पर्य होगा धर्म निरपेक्ष राज्य की चारित्रिक विशेषताओं को वापस लौटना। इससे जाति और धर्म युद्ध का उन्माद और भी तेज करेगा। साथ ही पदोन्नति में आरक्षण न केवल असंवैधानिक है अपितु उससे राज्य सेवाओं की प्रशासकीय व प्राविधिक क्षमता भी प्रभावित होगी।

## मण्डल आयोग की प्रमुख सिफारिशें

1. पिछड़े वर्गों के जो उम्मीदवार अपनी योग्यता के आधार पर चुने जायेंगे, वे 27 प्रतिशत आरक्षण के अलावा होंगे। उनकी गणना 27 प्रतिशत के अन्तर्गत नहीं होगी।

---

2. काका कालेलकर रिपोर्ट से उद्धृत

2. उपर्युक्त आरक्षण सभी स्तर पर सरकारी नौकरियों में तरक्की के लिये लागू होगा।

3. आरक्षंण यदि किसी वर्ष पूरा नहीं होगा तो अगले तीन वर्ष तक 'कैरीफारबर्ड' किया जायेगा और उसके बाद वह आरक्षण रद्द कर दिया जायेगा।

4. पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों की भर्ती में उम्र की उसी प्रकार छूट और सहूलियतें दी जायेंगी जिस प्रकार की सहूलियतें हरिजनों– आदिवासियों को दी जाती हैं।

5. जिस प्रकार हरिजनों–आदिवासियों के लिये अलग–अलग श्रेणी की जगहों पर रोस्टर प्रणाली लागू होती है उसी तरह से पिछड़े वर्गों के लिये भी होगी।

6. आरक्षण उपर्युक्त योजना पूरी तरह से तमाम सार्वजनिक क्षेत्रों के कारखानों में भी लागू होगी चाहे केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के कारखाने हों अथवा राज्य क्षेत्र में हों। आरक्षण की यह योजना बैंकों में भी लागू होगी।

7. तमाम निजी क्षेत्रों के कारखाने जिन्हें सरकार से किसी न किसी रूप में आर्थिक सहायता मिलती है, उन पर भी आरक्षण की यह योजना लागू होगी।

मण्डल आयोग की रिपोर्ट हिन्दुस्तान के धर्म निरपेक्ष स्वरूप को मात्र पिछड़ी जातियों के आरक्षण द्वारा बनाये

रखना नहीं है उसका कहना है "आरक्षण के लाभ मुसलमानों व ईसाइयों को भी उपलब्ध कराये जायेंगे।"[3]

यानि हमारा उद्देश्य तो था, जाति रूपी जहर के फोड़े को बाहर निकाल देश के धर्म निरपेक्ष स्वरूप की स्थापना और हम जिस मंजिल पर पहुंचे, वह है जातियों व धर्मो के वर्गीकरण को राज्य स्तर पर प्रोत्साहित कर जाति व धर्म संघर्ष को हवा देना।

जब परिगणित जातियों के आरक्षण की बात चली थी, ऐसे प्रस्ताव पहले तैयार किये गये थे कि इसमें मुस्लिम वर्ग को भी लिया जावे परन्तु स्वयं मुस्लिम प्रतिनिधियों ने इस आधार पर अपने को इसमें शामिल करने का विरोध किया क्योंकि जाति व धर्म के आधार पर और आरक्षण के आधार पर कटुता फैलेगी और भारत के धर्म निरपेक्ष स्वरूप को आंच आयेगी।

दो सिख सदस्यों ने उस समय ये मत व्यक्त किया कि ये सिख पर ही लागू होना चाहिये। सरदार पटेल उस समय गृहमंत्री थे। उन्होंने समझाया कि सिख धर्म को इतना न गिराया जाय कि वह चन्द सुविधाओं को पाने का पात्र बनकर रह जाये। उनको शामिल करने की सुन इतनी जबर्दस्त

---

3. वही, पृष्ठ 21

प्रतिक्रिया हुई कि सरदार पटेल को शीघ्रता में ये कहते हुये बिल को पारित कराना पड़ा। जल्दी से जल्दी जाति भेद की इन दीवारों को समाप्त और गिराकर सभी को समान स्तर पर लाना है जिससे ऊँची और नीची जातियों और धार्मिक अधिसंख्यक और अल्पसंख्यकों के भेद–भाव को मिटाया जा सके।

तब क्या यह मान लिया जाये कि वर्तमान सरकार की सोच दृष्टि में उक्त को अस्वीकार कर जाति आरक्षण को प्राथमिकता देने में ही, धर्म निरपेक्ष व सामाजिक रूप से समान भारत का उदय माना है। मंडल आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार करने से कम से कम यही लगता है। काका कालेलकर ने प्रथम पिछड़ी जाति आयोग के अध्यक्ष के रूप में भारत सरकार के राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुये प्रस्तावों में जो लिखा था, वह वस्तुतः एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में सम्भाल कर रखने की धरोहर है। उन्होंने कहा था "इस बात से मुतमइन होने के बाद कि हिन्दुओं की उच्चवर्णीय जातियों द्वारा निम्नवर्णीय (दलित) जातियों के प्रति तिरस्कार की नीति अपनाई गई थी, मैं यहाँ तक संस्तुति करने के लिये तैयार था कि सरकार द्वारा पिछड़े वर्ग को हरसम्भव सहायता देनी चाहिये। साथ ही उच्च वर्गीय गरीब सहायता के योग्य व्यक्तियों

को भी 'उस विशेष सहायता' का लाभ नहीं दिया जाये। ऐसी संस्तुति करते समय मैं जाति के आधार पर निकाले गये समस्या के हल के बारे में यह भी सोच रहा था कि इसका मुसलमान और ईसाई वर्ग पर अस्वस्थ प्रभाव पड़ने की सम्भावना है तब मुझे लगा कि हमने समस्या का जो समाधान खोजा है उससे इस बात का हल हो जायेगा पर और बड़ी बुराई हो जायेगी।''

उन्होंने यह लिखा ''मुझे ये अनुभूति तब हुई जब आयोग का कार्य लगभग समाप्त प्राय था और रिपोर्ट को अन्तिम रूप दिया जाना अवशेष था। परन्तु मैने पाया कि आयोग के बहुसंख्यक सदस्य मेरी भावना से सहमत नहीं थे। अतः मैने अनिच्छापूर्वक बहुसंख्यक सदस्यों की उस राय के प्रति सहयोग किया जिसमें 'जाति' को आधार बनाया गया था।

रिपोर्ट को अन्तिम रूप देने के पश्चात मैने पुनः सोचना शुरू किया और तब मुझे लगा कि पिछड़ेपन का निर्धारण करने के लिये जाति के अलावा अन्य आधार भी हो सकते हैं। पर मेरा ऐसा सोचना आयोग के अन्य सदस्यों की उस भावना की पुष्टि ही करता था जिनके अनुसार मेरा ऐसा सोचना समस्त किये कराये पर पानी फेरना था। ये थी निष्ठा, ये थी सही धर्म निरपेक्षता।

आज कितने हैं जो काका कालेलकर की तरह

अपने दिल की अनुभूति को सामने रखने का साहस कर सकें।

आज सरकार मंडल आयोग की सिफारिशों के माध्यम से जिस धर्म निरपेक्ष सामाजिक न्याय भरे समाज की स्थापना करना चाह रही है, क्या ऐसा नहीं लगता कि वह इन सिफारिशों के माध्यम से धार्मिक और जातीय संघर्ष के एक भयानक कैंसर को जन्म देने जा रही है।

सच तो ये है, मण्डल आयोग की सिफारिशों में जिन पिछड़ी जातियों का जिक्र है, वे आज दूर–दूर तक पिछड़ी नहीं हैं। न केवल वे आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हैं बल्कि वे राज्यों तथा क्षेत्र विशेष की शासन कर रही जातियों में प्रमुख हैं। अन्य पिछड़ी जातियों में नई जातियों की तेजी से बढ़ोतरी इसका स्पष्ट उदाहरण है कि रोजाना नई–नई जातियां अपने को पिछड़ी जाति में शामिल करने के लिये अग्रसर हैं और शामिल हो रही हैं क्योंकि इन जातियों ने सत्ता में अपनी पकड़ काफी तेजी से बढ़ाई है। हिन्दुस्तान के दो सबसे बड़े प्रदेशो उत्तर प्रदेश, और बिहार के मुख्यमंत्रियों सर्व श्री मुलायम सिंह यादव व श्री लालू -प्रसाद यादव का पिछड़ा जाति का होना, इसी सत्ता– चौधराहट का परिचायक है।

मण्डल आयोग ने बिहार में 168 जातियों को पिछड़ी जाति में शामिल किया है। जिसमें कुर्मी, कोयरी व यादव

भी हैं। परन्तु अपनी इसी रिपोर्ट के प्रथम अध्याय के पृष्ठ 34 में वे ये भी कहते हैं, कुर्मी, कोयरी और यादव अपनी जमींन पर कड़ी मेहनत करते हैं। वे अपने मजदूरों से भी कड़ी मेहनत करते हैं। और मजदूरों द्वारा कोई भी प्रतिरोध करने पर उसका प्रतिफल मजदूरों (हरिजनों) पर अत्याचार से निकलता है।''

आयोग ने लिखा है कि बिहार में वेलची पथाड़ा, गोपालपुर, विश्रामपुर, पारसबीघा आदि स्थानों पर इन जातियों द्वारा मजदूरों पर अत्याचार किये गये हैं। अतः पिछड़ी जाति के किसानों और परिगणित जाति व जनजाति के मजदूरों में आपस में प्यार व भाईचारा समाप्त हो गया है।

मण्डल आयोग की रिपोर्ट के भाग 6 के पृष्ठ 211–212 पर उत्तर प्रदेश में 116 पिछड़ी जातियों का जिक्र है जिसमें यादव, कुर्मी, लोध, गूजर, कोयरी आदि हैं। इन जातियों के लोगों के पास स्वयं के खेत हैं, अच्छे खेती के साधन हैं और कुछ उद्योगपति भी है। मण्डल ने उच्च जाति के कृषकों को अम्ब्रेलाफार्मर्स की संज्ञा दी है। उनके अनुसार पिछड़ी जाति के कृषक मात्र अम्ब्रेला फार्मर्स (जो दूसरों से खेती कराते हैं) नहीं हैं। वे स्वयं खेती करते और अपने कृषि मजदूरों से कड़ी मेहनत कराते हैं। साथ ही वे कृषि मजदूरों में जाग्रत राजनैतिक चेतना को पसन्द नहीं करते हैं, क्योंकि ये उन

मजदूरों को अधिक अधिकार के लिये प्रेरित करती हैं।

यानि स्वयं मण्डल आयोग ने स्वीकार किया है कि पिछड़ी जाति का सशक्त वर्ग मजदूर हरिजनों पर अत्याचार और उन पर मनमानी करने पर विश्वास करता है। आगरा जिले में एक हरिजन की वारात में पिछड़ी जाति के सशक्त वर्ग द्वारा की गई ज्यादती इसका स्पष्ट उदाहरण है।

केन्द्र सरकार भी निरन्तर इस मत की रही है जो पिछड़ी जातियां आर्थिक व सत्ता की दृष्टि से सशक्त हैं यदि उनका शुमार भी पिछड़ी जातियों में भी जाता रहा तो इससे वास्तविक रूप से सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से जो जातियां पिछड़ी हैं उनके लाभ का कुछ प्रतिशत निकल जायेगा जो संविधान की मंशा नहीं है। वस्तुतः इसी खतरे की ओर मंडल आयोग के एक सदस्य श्री एल0आर0 नायक (जो परिगणित जाति के नामित सदस्य थे) ने ध्यान खींचते हुये आयोग के निष्कर्षों से अपनी असहमति जारी करते हुये लिखा है— "मेरी ये निश्चित धारणा है कि जातियां/वर्ग जिनका विभिन्न प्रदेशों की लिस्ट में हवाला दिया गया है, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से समान रूप से पिछड़े हुये नहीं हैं। मुझे भय है कि शासन द्वारा प्रदत्त सुविधायें कमजोर पिछड़े वर्ग/जाति तक नहीं पहुंचेगी और हमारी संवैधानिक ध्येय मात्र

एक मरीचिका बनकर रह जायेगा। अतः यह जरूरी है कि मंडल आयोग की पिछड़ी जाति की लिस्ट को दो भागों में विभक्त किया जाये। एक को 'मध्यम श्रेणी की पिछड़ी जाति' और दूसरी को कमजोर (दलित) पिछड़ी जाति माना जाये।''

श्री एल0आर0 नायक के कथनानुसार– ''भारत के भिन्न प्रदेशों की विस्तृत यात्रा के दौरान मैने ये महसूस किया है कि मध्यम श्रेणी की पिछड़ी जातियां जो इधर आर्थिक व सत्ता दृष्टि से सशक्त हुई हैं, उनमें दलित पिछड़ी जातियों से दुर्व्यवहार करने की घटनाओं में वृद्धि हुई है। ऐसा लगता है, उच्च जातियों द्वारा उनसे जो दुर्व्यवहार किया गया था उसका बदला वे इन जातियों से ले रही हैं। हमारे सामाजिक दृष्टि से असमान समाज में अतः यह बहुत आवश्यक है कि मंडल आयोग अपनी सिफारिशें लागू करते समय वे सभी सावधानियां बरते और ऐसे सभी कदम उठाये जिसमें पिछड़ी जाति के वास्तवितक जरूरतमन्दों को उनका लाभ मिल सके। अभी भी हमारे बीच काफी जाति प्रथा है। अब नई नई शक्लों में जन्म लेती जा रही है, साथ ही पुरानी जाति प्रथा अपनी जगह बदस्तूर कायम है। कुछ लोगों का ये भी सोचना है कि हमारे प्रजातांत्रिक राजनीतिक समाज में केन्द्र व प्रदेशों में जाति महत्व का वर्चस्व काफी बढ़ा है। मुझे ये कहते हुये भी दुख

है कि पिछड़ी जाति के जो लोग सत्ता के शक्ति केन्द्र में हैं, वे बजाय दलित पिछड़ी जातियों के उद्धार के अपने आस-पास के वर्ग को फायदा पहुंचाने में ही लगे हैं। उनका उद्देश्य मात्र इतना है कि उच्च जातियों द्वारा सत्ता पकड़ का हवाला देकर 'दलित पिछड़ी जातियों को उद्वेलित किया जाय और उसका आर्थिक, राजनीतिक तथा सत्ताजनक लाभ अपने हक में उठाया जाये। मेरे विचार से, इस मानसिक धारणा को हर स्तर से प्रताड़ित और हतोत्साहित करना बहुत आवश्यक है।''

हमारे विचार से स्वयं मंडल आयोग के ही परिगणित जाति के एक सदस्य ने सामाजिक भय को दिखा सही निष्ठा और निर्भयता का परिचय दिया। इस कमीशन की रिपोर्ट पर असहमति नहीं है। असहमति इस बात से है कि जो रिपोर्ट 10 साल से पैन्डिंग थी, उसे बिना विचार विमर्श के लागू करने के बारे में सोचा गया जो प्रभावित लोग हैं, क्यों उनको सब कुछ बताना व समझाना जरूरी नहीं था। क्या विद्यार्थी हमारे अंग नहीं है? हमने क्यों नहीं उन्हें समझाया जिसके कारण आरक्षण विरोधी लहर पैदा हुई।

अब हमने कुल आरक्षण 49.5 प्रतिशत कर दिया है। अगर आर्थिक आधार पर अतिरिक्त आरक्षण और हो तो प्रतिशत 55 और 60 तक पहुंचेगा। इसका मतलब योग्य

व्यक्ति के लिये केवल 40 प्रतिशत नौकरी रह जायेगी। इससे नौकरी की गुणवत्ता में निश्चित रूप से अन्तर आयेगा।

मंडल कमीशन की रपट 10 साल पुरानी और उसमें दिये आंकड़े 15 साल पुराने हैं। तब से आंकड़ों और संदर्भों में बहुत परिवर्तन हो चुका है। सरकार स्वयं कहती है 20 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के ऊपर उठे हैं। तब उनका अन्तर सामाजिक स्थिति पर निश्चित रूप से पड़ेगा। अतः हमें पिछड़े वर्ग के लिये आरक्षण की बात करते समय आर्थिक सीमा रेखा को भी ध्यान में रखना होगा। पदोन्नति में तो आरक्षण का कोई प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये क्योंकि सर्विस ज्वाइन करने के बाद सब बराबर है। ये सभी जरूरी है कि रिजर्वेशन सिर्फ एक पीढ़ी के लिये हो, पीढ़ी दर पीढ़ी न चले।

आरक्षण के जो विरोध में है उन्हें मण्डल आयोग रपट की पूरी जानकारी नहीं है। मंडल कमीशन केवल केन्द्र सरकार की नौकरियों में आरक्षण की बावत है। इससे पूरी जनसंख्या के अधिक से अधिक 1 प्रतिशत लोग प्रभावित होंगे। इस 1 प्रतिशत में 27 प्रतिशत आरक्षण पिछड़ी जातियों के लिये है। अतः हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को शासन और सत्ता में भागीदारी देना है जो अब तक उससे विमुख रहे हैं। कुछ लोग आर्थिक आधार पर आरक्षण की मांग कर रहे हैं पर उससे

आरक्षण विरोधियों को क्या फायदा होगा। इससे पिछड़े वर्ग को ही फायदा होगा फिर मंडल कमीशन की रपट जाति आधार पर नहीं हैं। उसमें बिहार के राजपूत शामिल है। पर गुजरात के पटेल शामिल नहीं है, उत्तर प्रदेश और बिहार के यादव शामिल हैं पर हरियाणा के यादव शामिल नहीं हैं। हर प्रदेश में किसी जाति विशेष की जो स्थिति है उसी को दृष्टिगत रख मंडल आयोग द्वारा निर्णय लिया गया है।

आप ईमानदारी से बतायें क्या समाज में ऊँची जाति वालों का वर्चस्व नहीं है? क्या मनु स्मृति में ये नहीं लिखा है कि अछूत जानवर से भी बदतर है? अगर समाज जाति के खानों में बंटा हुआ है और देश का कोई भी कानून जातियों को खत्म नहीं कर सका है कि फिर आरक्षण के अलावा और क्या विकल्प है। अगर आरक्षण विकल्प नहीं है तो क्या 'कैपीटेशन' (धनराशि लेकर दाखिला) इलाज है।

मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू हों ये हर राजनीतिक पार्टी चाहती है। लोगों का यह भ्रम है कि हमने पिछड़े लोगों का वोट पाने के लिये ऐसा किया है। वे शुरू में ही हमारे साथ हैं। ये भी कहना गलत है कि चौधरी देवीलाल का असर कम करने के लिये हम जल्दबाजी कर रहे हैं। राष्ट्रीय राजनीति में जाति गणित का बहुत महत्व नहीं है। मैं

जाट हूँ अतः मुझे मंडल कमीशन का फायदा नहीं मिलता। मैं ऊँची जाति में नहीं माना जाता। अब आप सोचें, असली नुकसान किसे हुआ है। सम्पन्न लोगों को तो नौकरी करानी नहीं होती इसकी जरूरत पिछड़े परिगणित जाति व अल्पसंख्यकों को ही है। इस रिपोर्ट से जाट और मराठा जाति को नुकसान ही है पर नीति में जाति क्यों लाई जाये। मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करना हमारी वचन बद्धता है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सबसे महत्वपूर्ण खबर या घटना का चुनाव करना हो तो निर्विवाद रूप से केन्द्र सरकार द्वारा आरक्षण सम्बन्धी मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने सम्बन्धी फैसलों को लिया जायेगा। यह घटना अगस्त का पहला सप्ताह समाप्त होते होते राष्ट्रीय समाचार पीठिका पर आई और उसके बाद पूरे महीने छायी रही।

आरक्षण सम्बन्धी मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करना देश की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का नैतिक दायित्व बनता था जिस चुनाव घोषणा पत्र के सहारे राष्ट्रीय मोर्चा सरकार सत्ता में आई उसकी प्रमुख सुर्खियों में इसका उल्लेख था। फिर अगस्त तक आते–आते जनता दल के आन्तरिक समीरकण भी कुछ ऐसे बन गये थे कि विश्वनाथ प्रताप सिंह को अपनी साख बचाये रखने के लिये अंततः इसी ब्रह्मास्त्र का सहारा लेना था। दिलचस्प बात यह है कि

श्री सिंह को यह ब्रह्मास्त्र पिछली कांग्रेस सरकार से विरासत में मिला था। अगर राजीव गांधी में दूरदर्शिता और हिम्मत होती तो इसी ब्रह्मास्त्र के सहारे वे न सिर्फ बोफोर्स घोटाले सम्बन्धी मुद्दे को निष्प्रभ कर सकते थे, बल्कि विपक्षी रणनीति को ध्वस्त करके अगले पाँच सालों के लिये फिर से सत्ता में आ सकते थे। मण्डल आयोग की नियुक्ति सन् 1979 में, मोरार जी देसाई के नेतृत्व वाली जनता सरकार ने की थी और उसका अध्यक्ष बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बी0पी0 मंडल को बनाया गया था। दिसम्बर 1980 में जब उक्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंपी तब तक मध्यावधि चुनावों के जरिये श्रीमती इन्दिरा गाँधी फिर से सत्ताहीन हो चुकी थीं। उन्होंने उसे ठण्डे बस्ते में डाल दिया और तब से अगले 9 सालों तक वह रिपोर्ट गुमनामी में ही रही। इन्दिरा गांधी द्वारा मण्डल आयोग की रिपोर्ट की उपेक्षा किये जाने का एक मोटा तर्क यह बनता है कि चूँकि उक्त आयोग की नियुक्ति एक ऐसी सरकार ने की थी जो उन्हें पूरी तरह मात देकर सत्ता में आई थी, अतः उसके फैसलों को क्यों महत्व दिया जाये। लेकिन खासतौर से इस मामले में, यह नजरिया निर्णायक नहीं था, बल्कि मंडल आयोग की रिपोर्ट की इन्दिरा गांधी और फिर राजीव गांधी द्वारा सतत उपेक्षा के पीछे बहुत गम्भीर किस्म की समाजशास्त्रीय वजहें थीं।

मण्डल आयोग की रिपोर्ट में अन्य पिछड़ी जातियों के लिये, सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों में 27 प्रतिशत अतिरिक्त आरक्षण की सिफारिश की गई है। अतिरिक्त इन अर्थों में कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिये 22.5 प्रतिशत आरक्षण तो पहले से था ही। आयोग ने अपनी इस सिफारिश के लिये भारतीय संविधान की धारा 15(4) को आधार बनाया था। उक्त धारा के अनुसार 'राज्य अगर किन्हीं सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिये कोई विशेष प्रावधान तैयार करना चाहे तो इस धारा अथवा धारा 29 (अल्प संख्यकों के रक्षार्थ) के क्लॉज 2 के जरिये कोई अड़चन नहीं आयेगी और यही मुख्य वजह थी कि इन्दिरा गांधी और बाद में राजीव गांधी इसे दबाते रहे।

15 अगस्त 1947 को सत्ता हस्तांतरण के जरिये जो कांग्रेसी सरकार अस्तित्व में आई थी उसका मूल आधार हजारों सालों से हुकूमत करती आ रही ऊँची जातियां थीं, सामन्ती समाज व्यवस्था थी। बाद में राष्ट्र की पीठिका पर जिस नेहरू युग का अवतरण हुआ उसकी रीढ़ भी ऊँची जातियों से आये लोग थे। इन्दिरा गांधी उसी नेहरू युग की वाहिका थी। उनके ज्यादातर मंत्रिमण्डलीय सहयोगी और सिपहसालार ऊँची जातियों से आये लोग थे। अतः मण्डल आयोग की

सिफारिशों को श्रीमती गांधी भला कैसे अमल में ला सकती थीं। उससे सरकारी नौकरियों पर कसता ऊँची जातियों का शिकंजा ढीला होता और उन (जातियों) के प्रतिनिधि राजनेताओं और नौकरशाहों के रिश्ते गड़बड़ाते। लेकिन राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार का स्वरूप कुछ मायनों में कांग्रेसी सरकारों से अलग तरह का था। यह न तो कोई क्रान्तिकारी सरकार है, जिसका लक्ष्य अब तक चली आ रही भद्रलोकीय व्यवस्था को आमूल—चूल बदल देना हो न ही उच्च वर्गीय निहित स्वार्थों से पूरी तरह मुक्त है (ऐसा हो भी नहीं सकता था) लेकिन इतना जरूर है कि यह सरकार पिछली भ्रष्ट कांग्रेसी सरकार की प्रतिक्रिया स्वरूप अस्तित्व में आई थी और इसके ज्यादातर सांसद व विध ाायक मध्यम श्रेणी और निचली जातियों से आये थी। इसके अलावा यह भी है कि प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह अपनी सामंती पृष्ठभूमि के बावजूद काफी संवेदनशील और आदर्शवाही व्यक्ति हैं। इसलिये मण्डल आयोग की आरक्षण सम्बन्धी सिफारिशों को लागू कर पाना मौजूदा सरकार के लिये सम्भव हो सका। बेशक इस मसले में कुछ और देर हो सकती थी लेकिन देवीलाल ने शहर और गांवों की बहस छेड़कर इस फैसले को आसन्न वरीयता में ला दिया।[4]

---

4. सुरेश सलित— आरक्षण नीति और मंडल आयोग की सिफारिशें, सुपर ब्लेज, पृ0 24

मंडल आयोग की रिपोर्ट की दबी जबान आलोचना करने वालों को सिर्फ एक ही मुद्दा मिला है कि सामाजिक; आर्थिक विकास के लिये जातियों को आधार न बनाया जाये बल्कि आर्थिक आधारों पर आरक्षण दिया जाना चाहिये। सैद्धान्ति दृष्टि से यही उचित भी था। मार्क्सवादी सोच के अनुसार भी आर्थिक आधार पर ही वर्गों की परिकल्पना की गई है लेकिन हम अगर भारत के महाकाव्यों पर और दो हजार सालों के इतिहास पर नजर डालें तो पायेंगे कि यहाँ सब कुछ मनुस्मृति द्वारा निर्देशित वर्ण व्यवस्था द्वारा संचालित होता रहा है और राजधर्म पायेंगे कि यहां सब कुछ मनुस्मृति द्वारा निर्देशित वर्ण व्यवस्था द्वारा संचालित होता रहा है और राजधर्म क्षत्रिय के हिस्से होते हुये भी राज्य व्यवस्था वशिष्ठ, विश्वामित्र, चाणक्य आदि द्विज चलाते रहे हैं। कोषागार श्रेष्ठि (आज के सेठ) वर्ग के जिम्मे रहा और केवल (पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधि)हनुमान (जनजातियों का प्रतिनिधि) आदि स्वामी भक्त सेवक के बतौर ही 'श्रेष्ठता' का दर्जा हासिल कर सके। मौजूदा सदी के शुरूआती दौर में ब्रिटिश सरकार के तहत लागू किये गये माटेग्यूचेम्सफोर्ड सुधारों में भी समूचे भारत में व्याप्त सामाजिक पिछड़ेपन की मुख्य वजह वर्ण भेद ही मानी गई थी और उसी आधार पर उन कुछ समुदायों के लिये कतिपय कल्याणकारी

कदम सुझाये गये थे, जिन्हें उस दौरान दलित जातियों के रूप में पहचाना गया था। सन 1935 में बना एक्ट उन्हीं सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों के प्रति सुझाये गये कल्याणकारी उपायों का क्रियान्वयन था। लेकिन मंडल आयोग की रिपोर्ट में जिन्हें अन्य पिछड़े कहा गया है वे माटेग्यू–चेम्सफोर्ड द्वारा निर्धारित पिछड़ी जातियों से भिन्न होने चाहिये क्योंकि उन पिछड़ी जातियों को तो पहले से ही परिगणित जातियों और जनजातियों के रूप में 22.5 प्रतिशत का आरक्षण मिला हुआ है। तब फिर अन्य पिछड़े वर्गों से मंडल आयोग का आशय क्या है? सन् 1955 में काका कालेलकर आयोग ने भारत में जिन 2399 जातियों की गणना की थी, उसमें 839 को अत्यधिक पिछड़ी जातियां कहा गया था जबकि 1979 में मंडल आयोग में 3743 जातियों को अन्य पिछड़े वर्गों के रूप में पहचाना। जाहिर है कि इनमें कुम्हार, बढ़ई, बारी आदि वे बहुत सी जातियां शामिल हैं जो आज से 30–40 साल पहले तक कुटीर उद्योग स्तर के अपने जातिगत पेशों के जरिये किसी न किसी रूप में अपनी जीविका अर्जित कर लेती थी, लेकिन आज ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रहे शहरी प्रभाव के माहौल ने उन्हें बेकार कर दिया है। वैसी हालत में 'अन्य पिछड़े वर्गों' को अलग से रेखांकित किया जाना जरूरी था। मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किये जाने

से ऐसे सामाजिक निष्कर्ष सामने आये हैं जो महज आर्थिक विकास के जरिये नहीं आ सकते थे।[5]

ब्रिटिश शासन के दौरान और उसके बाद स्वातंत्र्योत्तर काल में आर्थिक विकास के बाजिब कदम उठायेजाने के बावजूद हमारे सामाजिक सम्बन्धों में जाति प्रथा ही प्रभावी बनी रही। आज तक अन्य पिछड़े वर्ग व्यापक विपन्नता और हीन भावना से ग्रस्त देखे जा सकते हैं। ऊँची जगहों पर बैठे ऊँची जाति के लोगों के भेदभाव वाले रवैये और भ्रष्टाचार के चलते सामाजिक गतिशीलता प्रभावित हुई और बाजिब राहतों के बावजूद अन्य पिछड़े वर्ग तलहट में पड़े छटपटाते रहे। ऐसी स्थिति में उन्हें आरक्षण के तहत लाना एक आसान सामाजिक जरूरत बन गयी थी। यहां यह भी गौर करने की बात है कि आरक्षण नीति का मूलभूत लक्ष्य या नौकरी देना भर नहीं है। सरकारी क्षेत्र में कुल एक प्रतिशत तो नौकरियां निकलती हैं। जाहिर है कि ऐसे किसी भी प्रावधान की मदद आरक्षित कोटे में आने वाले सभी लोगों को रोजगार मुहैया नहीं कराया जा सकता है। लेकिन इससे इतना जरूर हुआ कि अन्य पिछड़े वर्गों के बीच से एक विशिष्ट वर्ग निकल कर सामने आया जो ऊँची जातियों के विशिष्ट वर्ग के बराबर खड़े होने की हिम्मत

---

5. वही, पृ0 25

कर रहा है। अन्य पिछड़े वर्गों का यह विशिष्ट वर्ग अपने समुदायों के अन्य लोगों के समक्ष एक मिसाल कायम कर सके और उनमें यह भावना भर सके कि देश के सामाजिक आर्थिक जीवन में अपने लिये एक बड़ी भूमिका तुम्हें खुद व खुद तैयार करनी होगी। जातिवाद के शिकंजे ने हमारे समाज को इतना कस कर जकड़ा हुआ है कि किसी गांव में अगर ऊँची जाति का एक व्यक्ति आई0ए0एस0 में आ जाता है तो उस गांव के अन्य पिछड़े वर्गों में किसी तरह स्फूर्ति आने की बजाय यही भावना बलवती होती है कि यह तो होना ही था। यही वजह है कि अन्य पिछड़े वर्गों में एक तरह की हीन भावना कुंडली मारे बैठी हुई है और वे अपनी बेहतरी की दिशा में एक डग भी आगे बढ़ाने का उत्साह अर्जित नहीं कर पाते।[6]

मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने से न सिर्फ यह कि अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों में स्फूर्ति का संचार होगा बल्कि समूचेदेश के प्रशासनिक ढाँचे में और अधिक विजातीयता भी आयेगी। वैसी स्थिति में कुटिल राजनेताओं और कानून लागू करने वाली संस्थाओं के बीच की षडयंत्रकारी साजिशों को पहचानने और उन पर क़ाबू पाने में मदद मिलेगी। आज हालत यह है कि सत्ता की सभी प्रमुख जगहों पर ऊँची

---

6. मस्तराम कपूर, मंडल रिपोर्टः वर्णव्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर, पृ0 15–16

जातियों का कब्जा होने के कारण ऐसी साजिशें कामयाब हो रही हैं। और जन सामान्य की सहायतार्थ शुरू की जाने वाली विकास योजनायें इन्हीं साजिशों के चलते छलावा साबित हो रही हैं। लेकिन अगर सरकारी नौकरियों में विजातीयता को और आर्थिक विकसित किया जा सका तो ये जाति आधारित साजिशें अपने आप साफ हो जायेंगी और जीवन के सभी क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था की साख अपेक्षाकृत बढ़ेगी। अगर ऐसा हो सका तो भ्रष्टाचार और कुनबापरस्ती की दिन व दिन बढ़ती दर में भी गिरावट आयेगी।[7]

यह महज एक सैद्धान्तिक अटकल नहीं है अगर हम कर्नाटक तमिलनाडु जैसे उन राज्यों की ओर नजर डालें जहां कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिये रोजगार आरक्षण नीति बहुत पहले लागू कर दी गई थी तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। उन राज्यों के अन्य पिछड़े वर्ग आज कहीं ज्यादा बेहतर हालत में हैं। उनके सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में गुणात्मक बदलाव आये हैं। अगर वैसा ही हम समूचे देश में सफल हो सके तो हमारे सामाजिक ढाँचे में समानता का स्वरूप और अधिक विकसति होगा—जातिगत श्रेष्ठता की अवधाराणा निर्मूल होगी।

---

7. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल और उनका आयोग, पृ0 27

यहाँ असन्तोष की उस लहर पर भी दृष्टि डालनी होगी जो आरक्षण सम्बन्धी उक्त फैसले के बाद बिहार से लेकर दिल्ली तक हफ्तों टक्करें मारती रही। यह असन्तोष की लहर दरअसल (आरक्षण के माध्यम से) उस आर्थिक पिछड़ेपन और बेकारी की भावनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका सामना अलग–अलग स्तर पर आज समूची दुनिया को करना पड़ रहा है। हमारा आज का शहरी युवा वर्ग जिस अनिश्चित भविष्य और वैचारिक शून्य के माहौल में जी रहा है।, उसमें उसे लगता है कि इस अतिरिक्त आरक्षण के जरिये सरकार ने उसके विकास के रास्ते और अधिक अवरुद्ध कर दिये हैं। ऊपर से आग में घी का काम किया है उन राजनैतिक दलों का प्रच्छन्न समर्थन जिनकी जड़ें ऊँची जातियों में निहित है। होना यह चाहिये था कि मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का फैसला लेने से पहले सरकार उसके पक्ष में, अपने संचार माध्यमों के जरियेएक वातावरण तैयार करती और खासकर युवा वर्ग को अपने विश्वास में लेती लेकिन सत्ता की बागडोर सम्भालने वालों की कुछ ऐसी भी राजनीतिक वरीयतायें भी होती हैं जिनसे पिछड़ेपन का मतलब होता सब कुछ गवां बैठना। वैसी हालत में उस विरोध का सामना तो उसे धैर्यपूर्वक करना ही था। समुद्र में जब ज्वार आता है तो यह कल्पना करना मुश्किल

होता है कि यही समुद्र एक दिन सौम्य और निस्पंदन भी दिखाई देगा, लेकिन वक्त बीतते ही वह सारी गरज–तरज थम जाती है।

## मण्डल जाँच आयोग

मंडल जाँच आयोग की स्थापना भारत के राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी द्वारा संविधान की धारा 340 के अन्तर्गत की गई थी। इसके सदस्यों में सर्व श्री आर0आर0 भोले लोकसभा सदस्य, श्री दीवान मोहन लाल, श्री एल0आर0 नायक, व श्री के0 सुब्रह्मण्यम थे। इस आयोग के सचिव श्री एस0 गिल व अध्यक्ष श्री वी0पी0 मंडल थे। मंडल आयोग को निम्न बिन्दुओं पर अपनी आख्या–रपट देनी थी।

- सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों को परिभाषित करने हेतु क्राइटेरिया निर्धारित करना।
- इस प्रकार चिन्हित सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों की प्रगति हेतु आवश्यक कार्यवाही की संस्तुति।
- केन्द्र अथवा प्रदेश सरकार की उन सेवाओं में, उक्त जातियों को नौकरी में प्रतिनिधित्व दिये जाने की ग्राह्यता हेतु विचार, जिनमें इन जातियों का वांछित प्रतिनिधित्व नहीं है।

- मंडल आयोग द्वारा उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर राष्ट्रपति को संस्तुति सहित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

उक्त हेतु मंडल आयोग ने देश भर के 405 जिलों का सर्वेक्षण किया और सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन निर्धारित करने हेतु निर्देशकों को लागू किया। इन्हें मुख्यतः सामाजिक, शैक्षिक व आर्थिक तीन वर्गों में बांटा गया।

सामाजिक – (प्रत्युक बिन्दु हेतु 3 अंक निर्धारित)

- जाति/वर्ग जो अन्य लोगों द्वारा सामाजिक रूप से पिछड़े माने जाते हैं।
- जाति/वर्ग जो अपनी जीविका हेतु मुख्य रूप से मात्र शरीर श्रम पर आश्रित हैं।
- जाति/वर्ग जहाँ कम से कम 25 प्रतिशत औरतें व 10 प्रतिशत पुरुष गांवों में व 10 प्रतिशत औरतें तथा 5 प्रतिशत पुरुष शहरों में, 17 वर्ष से कम उम्र में शादीशुदा हो जाते हैं।
- जाति/वर्ग जहाँ देश के औसत अनुपात से 25 प्रतिशत अधिक नारियाँ, धन अर्जन हेतु श्रम करती हैं।
- इस प्रकार सामाजिक पिछड़ेपन हेतु 12 अंक निर्धारित किये गये है।

शिक्षा (प्रत्येक बिन्दु हेतु 2 अंक निर्धारित)

- जाति/वर्ग जहाँ 5 से 15 वर्ष की उम्र के बच्चों का औसत जो कभी भी स्कूल न गये हों, देश के औसत से कम से कम 25 प्रतिशत अधिक हो।
- जाति/वर्ग जहाँ 5 से 15 वर्ष की उम्र के उन बच्चों का औसत जो बीच में पढ़ाई छोड़ दिये हो, देश के औसत से कम से कम 25 प्रतिशत अधिक हो।
- जाति/वर्ग जिनमें दसवीं दर्जा उत्तीर्ण व्यक्तियों की संख्या देश के औसत से 25 प्रतिशत से भी कम हो।

इस प्रकार शिक्षित पिछड़ेपन हेतु 6 अंक निर्धारित किये गये।

आर्थिक (प्रत्येक बिन्दु हेतु एक अंक निर्धारित)।

- जाति/वर्ग जहाँ पारिवारिक सम्पदा की कुल लागत, देश के औसत से कम से कम 25 प्रतिशत कम है।
- जाति/वर्ग जहाँ कच्चे घरों में रहने वालों की संख्या देश के औसत से कम से 25 प्रतिशत अधिक है।
- जाति/वर्ग जहाँ 50 प्रतिशत से अधिक घरों के लिये पीने का पानी रिहायशी स्थान से आधा किलोमीटर से अधिक दूरी पर उपलब्ध है।
- जाति/वर्ग जहाँ 'कन्जप्शन ऋण' लेने वालों का औसत, देश के औसत के 25 प्रतिशत से अधिक है। इस प्रकार शिक्षित पिछड़ेपन हेतु 4 अंक और कुल मिलाकर 22 अंक निर्धारित किये गये।

ये नियामक हर जाति पर आजमाए गये जिन्होंने 11 से अधिक अंक अर्जित किये, उन्हें सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा करार दिया गया।[8]

8. (टाइम्स ऑफ इण्डिया रिसर्च ब्यूरो की रिपोर्ट पर आधारित)

# अध्याय - षष्ठ

## मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की राजनीतिक पृष्ठभूमि और परवर्ती राजनीतिक परिदृश्य

### (अ) उत्तर मंडल और आरक्षण की राजनीति

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जाति की भूमिका न केवल महत्वपूर्ण बल्कि निर्णायक भी है। यह दुखद स्थिति है कि आज भी समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसका स्थान काफी सीमा तक उसकी जाति पर निर्भर करता है। कुछ जातियाँ प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार प्राप्त है। जबकि कुछ अन्य जातियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें बहुत–सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जाति पर आधारित सामाजिक विभाजन मूलतः वर्ण व्यवस्था का ही विकृत रूप है। वर्ण व्यवस्था की जड़ें अतीत के अंधकार में कहीं छुपी हैं। अतः अधिकांश समाजशास्त्री, राजनीतिशास्त्री एवं संविधान विशेषज्ञ इस विषय पर एकमत नहीं हैं कि जाति भेद की इस अनूठी प्रथा का प्रारम्भ और विकास कैसे हुआ। प्रारम्भिक वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज में चार प्रमुख वर्ग थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिसके भिन्न–भिन्न व्यवसाय थे। इन वर्गों में से प्रत्येक का एक विशेष सामाजिक कृत्य संस्कृति और जीवनशैली का अपना–अपना अलग स्तर था। ऋषि मुनियों ने वर्ण व्यवस्था को सनातन और शाश्वत की संज्ञा दी

और धीरे–धीरे लोगों में विश्वास फैल गया कि जाति प्रथा ईश्वर प्रदत्त व्यवस्था है।

कालान्तर में इन्हीं वर्णों के कारण भारतीय समाज हजारों जातियों और उपजातियों में बंट गया। यहाँ तक कि 1957 में जब भारत सरकार ने अनुसूचित जातियों की प्रथम सरकारी सूची प्रकाशित की तो उसमें 1100 जातियों का उल्लेख था और पिछड़ी जातियों पर नियुक्त अर्वाचीन मण्डल आयोग ने 3743 जातियों को पिछड़ी जातियों में ही आंकलित किया। जाति की कठोरता और जटिलता में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई जिसके कारण सामाजिक भेदभाव और अधिक विषमता का आधार बन गई। निम्न जातियों को अछूत जातियों की संज्ञा दे दी गई और अनेक व्यवसायों में उनका प्रवेश प्रायः असम्भव सा हो गया। अतः अपनी अजीविका के लिये दूसरों पर निर्भर रहना था। जिसका परिणाम अंततोगत्वा यह हुआ कि वे सर्वथा निर्धन हो गये। निर्धनता के कारण शिक्षा और ज्ञान से भी वंचित हो गये। इन सबके कारण जो पिछड़ापन आया उससे उनकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय और दयनीय बन गई। जाति प्रथा ने भारतीय समाज को प्रगति से विमुख कर दिया और यह सामाजिक विषमता सामाजिक ह्रास, विघटन और विनाश का कारण बन गई। इस व्यवस्था ने भारतीय समाज को निम्न और उच्च साधन

विहीन और साधन सम्पन्न के वर्गों में विभाजित कर दिया। वे निम्न अथवा साधन विहीन वर्ग के जो सामाजिक धरातल पर शोषित थे, आर्थिक धरातल पर गरीबी और ऋण ग्रस्तता का जीवन जीने के लिए विवश थे। और शैक्षिक धरातल पर ज्ञान से वंचित तथा समाज द्वारा प्रत्येक वर्ग हेतु निर्धारित शिक्षा प्राप्त करने और अपने पारिवारिक व्यवसाय को अपनाने को बाध्य थे। किसी एक स्थान पर केन्द्रित न होकर वे वर्ग अनेक जातीय व उपजातीय समूहों में विभाजित थे जिनके भिन्न नाम थे, भिन्न परम्परायें थीं, भिन्न नियम थे और भिन्न–भिन्न स्थानीय नेतृत्व थे।[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन के अंतिम दो दशकों में समाज सुधार और दलितोद्धार की राष्ट्रीय आन्दोलन के अभिन्न अंग बन गये थे। यद्यपि कई प्रगतिशील हिन्दू संगठनों और नेताओं ने इन संस्थाओं को हल करने के लिये प्रयास आरम्भ किये थे तथापित अंग्रेज शासकों ने भी जातीय विभेद का भी साम्प्रदायिक भेदों की तरह ही विघटनकारी तत्वों के रूप में लाभ उठाया और 1930–32 के विचार विमर्श के पश्चात ही उनके लिये भी आरक्षण का सिद्धान्त पूना पैक्ट के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया जब कि महात्मा गांधी ने पूरी ताकत से इसका विरोध

---

1. मण्डल रिपोर्टः वर्णव्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर, पृ0 25

किया था। बाद में भारत सरकार अधिनियम 1935 में यह व्यवस्था रखी गई थी कि प्रांतों की विधान सभाओं में ऐसी जातियों और जनजातियों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे। कुछ प्रान्तीय सरकारों और बम्बई और मद्रास ने सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं ने इन जातियों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये और कुछ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई।[2]

आरक्षण के सांविधानिक प्रावधानों को कार्यरूप में परिणित और विस्तृत करने के लिये सरकार ने समय–समय पर आदेश जारी किये हैं। प्रारम्भ में केवल भर्ती के समय स्थान सुरक्षित करने की व्यवस्था थी और वह भी केवल केन्द्र सरकार की सेवाओं में। बाद में आरक्षण का विस्तार कर दिया गया और पदोन्नति में नियुक्तियां करते समय भी कुछ नौकरियों में इन जातियों के लिये स्थान सुरक्षित किये गये। इसके अतिरिक्त राज्यों में भी सरकारी नौकरियों में स्थान आरक्षित किये गये हैं और कुछ राज्यों (जैसे कर्नाटक) में तो आरक्षित स्थानों की संख्या 50–70 प्रतिशत तक पहुँच गई। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्यमों में भी अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिये स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई।

---

2. मण्डल कमीशन प्रतिवदेन, बहुजन पब्लिकेशन ट्रस्ट, नई दिल्ली।

प्रारम्भ में आरक्षण की अवधि 10 वर्ष नियत की गई थी परन्तु उसके बाद प्रति 10 वर्ष के बाद उसे अगले 10 वर्षों के लिये पुनर्जीवित किया जाता रहा, जिसके परिणाम स्वरूप भारत को सामाजिक संघर्ष और सांस्कृतिक संकट का सामना करना पड़ा और पिछले वर्षों में तो इसका स्वरूप इतना विकट हो गया था कि हर आरक्षण नवीकरण को हिंसा के व्यापक दौर से गुजरना पड़ा। जिसका प्रभाव आर्थिक विकास और एकीकरण दोनों पर ही नकारात्मक पड़ा है।[3]

इस हिंसा का मूल कारण वह असंतोष था जो निम्न और उच्च जातियों में आरक्षण के कारण या उसके बावजूद व्याप्त था। अनुसूचित जातियों और जनजातियों में इसलिये आक्रोश था कि आरक्षण की व्यवस्था को केवल नाममात्र के लिये लागू किया गया था और वह भी निम्न वर्ग के पदों पर। आरक्षण सम्बन्धी आदेशों का पालन बड़े विलम्ब से और झिझक–झिझक कर किया गया है चाहे वह आरक्षण भर्ती के समय हो या पदोन्नति के समय। यही नहीं भर्ती के समय बहुत से उम्मीदवारों को किसी न किसी बहाने अस्वीकार कर दिया। यद्यपि उनके लिये आरक्षित स्थान खाली पड़े रहते हैं। यही कारण है कि आरक्षण अभी भी प्रथम श्रेणी की नौकरियों में

---

3. वही, पृष्ठ 26

अनुसूचित जातियों और जनजातियों का प्रतिशत बहुत कम ही पहुंच सका है जबकि उनकी संख्या और उसके अनुपात में आरक्षित स्थानों की संख्या लगभग 23 प्रतिशत है। भर्ती होने के बाद भी उन्हें पग–पग पर अपनी योग्यता का प्रमाण देना पड़ता है और इस धारणा का भी सामना करना पड़ता है कि वे जन्म से ही अयोग्य और अकुशल हैं। अधिकांशतः उन्हें अपने कार्य स्थल पर भी अपमानजनक व्यवहार का सामना करना पड़ता है।

यह व्यवहार संविधान की भावना और प्रावधानों के सर्वथा विपरीत है और इस बात का संकेत भी है कि सर्ववयस्क, मताधिकार, अस्पृश्यता, उन्मूलन और दलितोद्धार के संविधानिक आश्वासन के बावजूद जाति प्रथा और उस पर आधारित सामाजिक विषमता और अन्याय की समाप्ति नहीं हो सकी है।

दूसरी तरफ आरक्षण के परिणामस्वरूप उच्च जातियों के मन में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के प्रति द्वेष की भावना उत्पन्न होने लगी है। अनेक राज्यों में तो ऐसे संगठन भी बन गये हैं जिनका काम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षण का विरोध करना है। ये संगठन न केवल आरक्षण का विरोध करते हैं अपितु इन

जातियों के कर्मचारियों का अपमान तथा यदाकदा मारपीट भी करते हैं। पिछले वर्षों में प्रांतीय धरातल पर सेवाओं में आरक्षण के विरुद्ध रोषपूर्ण आन्दोलन चल रहे थे जो मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के वी0पी0 सरकार के निर्णय (1990) के पश्चात अखिल भारतीय स्तर पर भी पहुंच गये। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मंडल आयोग का सम्बन्ध अनुसूचित जातियों व जनजातियों से न होकर तथाकथित अन्य पिछड़े वर्गों से था। तथापि यह उल्लेखनीय है कि मूलतः आन्दोलनकारियों का लक्ष्य आरक्षण की व्यवस्था की समाप्ति अथवा उसके आधार में परिवर्तन था।[4]

यह प्रस्ताव भी रखा गया कि आरक्षण जाति या जन्म के आधार पर होना चाहिये। आरक्षण विरोधियों ने आरक्षण का विरोध मूलतः गुणवत्ता, योग्यता और कुशलता के सिद्धान्तों के आधार पर किया। अतः भारतीय समाज में आरक्षण एक विवादास्पद मुद्दा बन गया है। प्रश्न यह उठता है कि आरक्षण क्यों होना चाहिये, किसके लिये होना चाहिये, कितना होना चाहिये और कब तक होना चाहिये?

आरक्षण समाज के पिछड़े एवं दुर्बल वर्गों के उत्थान के लिये प्रयुक्त किया गया साधन हैं। भारत में

---

4. मस्तराम कपूरः राजनैतिक आरक्षण का खतरनाक रास्ता 9 जनवरी, 1998, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली।

राजनीतिक मुक्ति के साथ–साथ सामाजिक व आर्थिक शोषण से मुक्ति का ध्येय भी संविधान में ही उल्लिखित है। उसके लिये आवश्यक था कि कुछ व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों से अधिक संरक्षण व सुविधायें दी जाती ताकि वह सदियों के पिछड़ेपन से उबर सके। जैसा कि स्पष्ट है कि व्यक्ति दो प्रकार के समुदायों के माध्यम से उन्नति कर सकता है। समाज और राज्य। भारतीय समाज में एक वर्ग को अधिकारहीन और साधनहीन स्थिति में रखा गया था। अतः राज्य के लिये आवश्यक था कि उसे विशेष सुविधायें और संरक्षण प्रदान किया जाये ताकि वह अवसरों की समानता का लाभ उठाने योग्य बन सके। यह एक सामाजिक क्रांति थी जिसका उद्देश्य भारत को जन्म, धर्म, जाति, रीति–रिवाज इत्यादि की मध्ययुगीन विरासत से बाहर निकालकर नये सामाजिक परिवेश में पहुंचाना था। जिसका आधार नवीन लोकतांत्रिक विधि व्यवस्था, व्यक्तिगत योगयता और धर्म निरपेक्ष शिक्षा थे। अतः संविधान निर्माताओं ने ही संविधान के अनुच्छेद 15, 16, 29, 38, 46, 330, 332, 334, और 335 के आधार पर आरक्षण को गतिशीलता प्रदान की। कहते है एक कदम का भूला मुसाफिर कोसों भटक जाता है। विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार के साथ भी यही घटना हुई। मंडल आयोग की सिफारिशों को लेकर वह जिस संकट में घिर

गई वह उसका अपना ही बनाया हुआ था। मंत्रिमंडल के शपथ ग्रहण करते ही यह बात स्पष्ट हो गई थी कि इस सरकार को कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं पर निर्णय लेने पड़ेंगे। इनमें मंडल आयोग के अलावा, राम जन्मभूमि– बावरी मस्जिद पंजाब और कश्मीर का अलगाववाद, उच्च पदस्थ व्यक्तियों का भ्रष्टाचार आम जनता की सेवाओं में सुधार और कीमतों पर नियंत्रण आदि समस्यायें प्रमुख थीं। समस्याओं की विकटता को देखते हुये इस सरकार के शुभचिन्तकों ने सुझाव दिया कि भाजपा और वामपंथी दलों के साथ मिलकर संयुक्त सरकार बनाई जाये ताकि यह अल्पमत सरकार न रहे। सहयोगी दलों की समन्वय समिति बनाने का सुझाव भी दिया गया था।[5]

यह दिलचस्प और दुखद बात है कि आरक्षण ने जाति प्रथा के अन्यायों के विरुद्ध उभरने वाली राजनीतिक ताकतों ने जाति–प्रथा को कमजोर करने के बजाय आरक्षण की राजनीति से मजबूत बन गया है। उनका उद्देश्य जाति प्रथा को समाप्त करना नहीं है बल्कि उसके आधार पर अपनी राजनीति करना है। निश्चय ही इसके कुछ सकारात्मक पहलू हैं। उदाहरण के लिये सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिये आरक्षण और दलित नेतृत्व की अपने बल पर सत्ता में

---

5. मस्तराम कपूर–मंडल रिपोर्ट वर्णव्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर "पृष्ठ सं0 23 प्रकाशक सारांश प्रकाशन प्रा0लि0 13 दरियागंज, नई दिल्ली– 110002

हिस्सेदारी लेकिन इससे स्थिति में बहुत ज्यादा बुनियादी फर्क नहीं आया है क्योंकि पिछड़ावादी या दलितवादी प्रकार से न तो राजनीति का स्वरूप बदला है और न ही वह क्रांतिकारी लक्ष्यों की ओर उन्मुख हुई है। इस तरह यह यथास्थिति का एक लोकतांत्रिक प्रकार भर है। उसका लोकतांत्रिक रूपांतरण नहीं।

लोकतंत्र का स्वप्न समतावादी समाज का स्वप्न है। इसमें जाति के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता है। न ही दलित समस्या बची रह सकती है। लेकिन भारत की लोकतांत्रिक परियोजना में यह संघर्ष कम ही नजर आता है तो इसका कारण यही है कि उसमें लोकतांत्रिकता के अन्य तत्व भी क्षीण हुये हैं।

आरक्षण की राजनीति के कारण से भारत की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की गरिमा गिरी, चाहे वह राष्ट्रीय पार्टी हो या विभिन्न राज्यों की क्षेत्रिय पार्टियाँ हों। आरक्षण के कारण से वह विभिन्न जाति के लोगों को अलग–अलग प्रलोभन देकर उनको अपनी ओर आकर्षित करती हैं। आरक्षण के मुद्दे के द्वारा चुनावी माहौल और गतिविधियों के समय विभिन्न दलित, पिछड़ी जातियों को अलग–अलग प्रकार के आकर्षित तरीकों को व्यक्त करके उनकी मानसिकता को मोड़ा जाता है। जिससे कि

लोग उनको वोट दें और उनको चुनें। जिससे कि विभिन्न पदों को प्राप्त करके विशेष वर्ग या जाति के लोगों को लाभ दें। आरक्षण की राजनीति के द्वारा विभिन्न राज्यों में सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक पहलुओं पर बदलाव आ रहा है।

जाति विहीनता का स्वप्न वर्गविहीनता से नहीं जुड़ता तो जाति प्रथा के मूलभूत आधार को चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि जाति के साथ वर्ग का तत्व भी घुला हुआ है। आरक्षण का लाभ जाति तथा वर्ग दोनों ही लेना चाहते हैं। यह अकारण नहीं है कि नीची जातियां अपेक्षाकृत निर्धन जातियां भी हैं। लेकिन सिर्फ जाति संघर्ष या वर्ग संघर्ष से यह समस्या होने वाली नहीं है। जाति संघर्ष में प्रेम और निकटता का तत्व भी होना चाहिये तथा वर्ग संघर्ष के साथ–साथ ऐसी अर्थनीति विकसित करनी होगी जिससे देश की दौलत बढ़े और सम्पन्नता में सभी का साझा हो। फिलहाल आरक्षण राजनीति के कारण कलह, विषमता, द्वेष जातिवाद के बीज दिन प्रतिदनि अंकुरित होते जा रहे हैं। समाज में आरक्षण नीतियों के कारण पिछड़ा दलित और सवर्ण वर्ग के लोगों में खिचाव और वैमनस्यता के बीज दिन प्रतिदनि बढ़ते जा रहे हैं। आरक्षण की राजनीति के कारण हिन्दुत्व के लक्षण में विसंगतियों के संकेत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। आस्तिकता, मूर्ति पूजा, जाति प्रथा, यज्ञ,

व्रत, उपवास, आत्मा, परमात्मा, परलोक, स्वर्ग, नर्क इनकी क्या उपयोगिता है जब मानव मानवीय बिन्दुओं और नैतिक बिन्दुओं को भूल जायेगा। विद्वानों का मत है कि ''आरक्षण के कारण मानवता के बीच में धुआँ के काले बादल नई पीढ़ी के बीच बढ़ रहे हैं। आरक्षण और उस पर राजनीति करना समाज और राष्ट्र के लिये बुराई है। आरक्षण उदारता नहीं है बल्कि समाज और राष्ट्र के साथ धोखा है। उदारीकरण के स्थान पर धीरे–धीरे उदासीनीकरण होगा।''

आरक्षण राजनीति के कारण बहुत से बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों ने ''एग्नॉस्टिक'' लिखने लगे। एग्नास्टिक वह व्यक्ति है जो आत्मा, पुनर्जन्म, ईश्वर आदि में विश्वास नहीं करता किन्तु प्रमाणित हो जाने पर उन्हें मानने के लिये तैयार रहता है।[6]

बहुत से राजनेताओं ने आरक्षण को जीवन का धर्म और कर्म मान बैठे परन्तु आरक्षण मात्र एक विभिन्न जातियों को उत्प्रेरणा देने का तरीका है। आरक्षण के कारण सुखवाद या सुविधावाद जैसी परम्परायें बढ़ रही हैं। परन्तु पुरानी वैचारिक और नैतिक आस्थायें दिन प्रतिदिन कमजोर होती जा रही हैं। आरक्षण के कारण पिछड़े और दलित वर्ग में चेतना आयी है।

---

6. राजकिशोर– ''जाति कौन तोड़ेगा'', पृ0 सं0 1 प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली।

आरक्षण के मसीहों ने अपनी पूजा करना प्रारम्भ कर दिया है। बहुत से वर्ग और जाति के लोग अपना उनको आदर्श मानते हैं। जिन्होंने आरक्षण के लिये समाज में कई आन्दोलन और संगोठियों को आयोजित करके एक प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान किया।

आरक्षण राजनीति से भारतीय समाज में सभ्यता और आधुनिकता ने मोड़ लिया परन्तु आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य को नैतिक चेतना को संतुष्ट करने के लिये कुछ भी नहीं किया है। आधुनिक समय के पहले की सभ्यता में तनाव कम थे। मनुष्य संतोषी था सुखवाद व सुविधावाद का स्तर निम्नकोटि का था। आरक्षण के कारण बहुत से लोगों को आर्थिक लाभ मिला जिससे उनकी आर्थिक प्रगति हुई। वर्तमान समय में आरक्षण के कारण लोग क्रोध, अहंकार आदि तेजी के साथ बढ़ रहे हैं। आरक्षण के कारण गुणात्मक स्तर काफी तेजी से गिर रहा है परन्तु मात्रात्मक स्तर बढ़ रहा है।

सनातन धर्मी हिन्दुओं की समाज व्यवस्था में जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था है। शायद जाति व्यवस्था वर्ण व्यवस्था से अधिक पुरानी हो गयी किन्तु स्मृतियों ने ही वर्ण व्यवस्था को प्राधान्य दिया। गीता ने कुछ धर्म और जाति धर्म को शाश्वत कहा है, इस पर से अनुमान होता है कि जाति

व्यवस्था अत्यन्त पुरानी होगी। वर्ण व्यवस्था भगवान ने स्वयं सनातन धर्म में दाखिल की। आरक्षण राजनीति में हिन्दू धर्म की व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था ने भी जाति की तरह जन्म का तत्व मान लिया और उत्तर मण्डल आरक्षण राजनीति में ऊँच नींच का भेदभाव समाप्त कर एक नये समाज की स्थापना को स्थापित करना चाहा। हिन्दू धर्म में (आरक्षण) शब्द आदि काल से चला आ रहा है जबसे कि इस सृष्टि का निर्माण हुआ। पहले सवर्ण लोगों ने भारत के पिछड़े और लोगों पर शासन किया परन्तु वर्तमान समय कि आरक्षण उत्तर मण्डल की राजनीति ने पूरे हिन्दुस्तान के समस्त राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न जिलों जनपदों और सूबों में कुहराम मचा दिया।

उत्तर मण्डल आरक्षण की राजनीति को बनाये रखने के लिये बहुत सी राजनीतिक पार्टियों ने अपने अपने तरीके से उसका चुनाव के दौरान प्रयोग करके जनता को आकर्षित किया जिससे हमारी पार्टी की सरकार राज्य और केन्द्र में बने। परन्तु कुछ प्रान्तों में आरक्षण की राजनीति का पार्टियों को लाभ मिला। लाभ का कारण आरक्षण उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, पंजाब तथा हरियाणा जेसे प्रान्तों में क्षेत्रीय पार्टियों को इसका विशेष लाभ मिला। कुछ

जातियों को चुनाव के कुछ समय पूर्व उनको आरक्षित कर दिया जिससे उस जाति के लोगों में उस पार्टी के प्रति सहानुभूति पैदा हो गई तथा उसको लोगों ने वोट देकर उसको शिरोमणि बना दिया। आरक्षण के द्वारा बहुत सी राजनीतिक पार्टियों की छवि बनती और बिगड़ती रही।

महिलाओं को आरक्षण विधेयक पास हो गया। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने 27 प्रतिशत तथा 32 प्रतिशत महिलाओं को आरक्षण देने का प्रस्ताव किया। आरक्षण के कारण महिलाओं विभिन्न राज्य सरकारों के कार्यालयों में उनको नौकरी मिली। जैसे पुलिस विभाग, राजस्व विभाग, तथा शिक्षा विभाग इत्यादि।

मण्डलोत्तर राजनीति के कारण से भारतीय सामाजिक ढाँचे में काफ़ी तेजी से परिवर्तन आया। जिनको आर्थिक और शैक्षणिक आरक्षण मिला, वह उनके जीवन स्तर में बदलाव लाया। आरक्षण के द्वारा मिलने वाले पैसों से बहुत से जाति के लोगों के लड़के एवं लड़कियों ने सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा मान्यता प्राप्त विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अपना प्रवेश ले रखा है परन्तु न तो वह पूरे वर्ष विद्यालयों में जाते हैं। केवल छात्रवृत्ति के समय जाते हैं बाकी वह घर में रहकर अन्य व्यवसाय करते हैं। बहुत से आरक्षण की श्रेणी में आने वाले छात्र एवं छात्रायें लघु उद्योग, आतिशबाजी के

कारखानों, प्लास्टिक के सामान बनाने वाले कारखानों तथा मोटर पाट्र्स और गुटखा कम्पनी में काम करते हैं। विद्यालयों में मात्र छात्रवृत्ति लेने के लिये प्रवेश ले रखा है। उन छात्र एवं छात्राओं को अपने विषयों के बारे में अपूर्ण ज्ञान है। उनके पास गुणवत्ता नहीं है। छात्रवृत्ति से मिलने वाला पैसा केवल व्यक्तिगत और परिवार के सदस्य उसका लाभ उठाते हैं।

आरक्षण समाज और राष्ट्र के लिये अभिशाप है। शैक्षणिक आरक्षण के कारण प्रदेशों के इन्जीनियरिंग कॉलेजों, मेडिकल कॉलेजों में 2 प्रतिशत या 5 प्रतिशत अंक आ जाने पर उनको प्रवेश दे दिया जाता है। जबकि उनकी बुद्धि क्षमता काफी निम्न स्तर की है परन्तु आरक्षण के कारण उनको उठाया जा रहा है। शैक्षणिक आरक्षण के कारण समाज और राष्ट्र के विकास की गति मन्द होगी। डिग्रियाँ सबके पास होंगी परन्तु योग्यता तथा दक्षता का अभाव होगा। लोगों का यह भी कहना था कि आरक्षित वर्ग तथा जाति के लोगों की आर्थिक मदद कीजिये परन्तु विभिन्न महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में आरक्षण नहीं होना चाहिये। यदि योग्यता है तो उनको अवश्य प्रवेश देना चाहिये।

देखने में आ रहा है कि आरक्षित वर्ग तथा जाति के विद्यार्थियों में कुंठा की भावना जाग्रत हो रही है। इससे

समाज में सवर्ण तथा पिछड़ों तथा दलित वर्गों के बीच में नजदीकियों के स्थान पर दूरिया बढ़ रही हैं।

## उत्तर मण्डल राजनीति की प्रवृत्तियाँ

डॉ० अम्बेडकर मूल रूप से एक समाज दार्शनिक न कि समाज शास्त्री थे। इसलिये समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य और सामाजिक उपागमों की दृष्टि से सामाजिक संरचना सम्बन्धी उनके विचार बहुत व्यवस्थित नहीं हैं। फिर भी सामाजिक संरचना तथा राजनीति की प्रवृत्तियों में उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी है। राजनीति की प्रवृत्तियों को समय के अनुसार विभिन्न साचों में परिवर्तित किया है। पांच दशकों में विभिनन राजनीतिक विचारकों, चिन्तकों तथा दार्शनिकों ने राजनीतिक प्रवृत्तियों को सकारात्मक तथा नकारात्मक दृष्टिकोण से उनके मूलभूत आकार में परिवर्तन किया। उसका मुख्य कारण अपनी पार्टी तथा पद को सुरक्षित रखना तथा आरक्षण नामक शब्द का प्रयोग करके उनके वास्तविक रूप को भी बदल दिया। जिसका कारण सत्ता मोह तथा सत्ता सुख है।

डॉ० राममनोहर लोहिया इतिहास के अच्छे

विद्यार्थी होने के नाते लोहिया, हिन्दुस्तान के लगातार विजित होते रहने के कारणों की खोज करते रहे। एक समाजवादी विचारक होने के नाते भारतीय समाज के भेद और उनके प्रभाव लोहिया के शोध का एक प्रमुख विषय बना रहा। मार्क्स के विकासवाद की अपूर्णता के दर्शन, लोहिया को इसी विचार मंथन के फलस्वरूप, भारतीय संदर्भ में हो सके। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भारत की सामाजिक व्यवस्था में जिसकी जड़ें सदियों पुरानी हैं उसमं मार्क्स के सामाजिक वर्ग विभाजन का कोई वजूद नहीं है जैसा कि यूरोप के समाज में है। लोहिया के चिन्तन की गहराई का सबूत उनके जाति, वर्ण और वर्ग के बारे में प्रकट किये विचारों के अध्ययन से साफ झलकता है। उन्होंने लिखा जाति का गुण कर्म से सम्बन्ध नहीं है। वर्ग जड़ होकर जाति का गुण ले लेता है। दौलत, बुद्धि, स्थान के हिसाब से समाज में गिरोह बनते हैं, जिन्हें वर्ग कहते हैं। जाति और वर्ग का उतार चढ़ाव होता रहता है। चलायमान जाति को वर्ग और जड़ वर्ग को जाति कहते हैं।

लोहिया आजाद हिन्दुस्तान के सबसे बड़े आन्दोलनकर्ता के रूप में उभर कर सामने आते हैं। आजादी के पूर्व जिस प्रकार गाँधी ने लोगों को अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ राजनैतिक प्रवृत्तियों के द्वारा प्रेरित करके उनको

रचनात्मक और संघर्षमयी बनाने का प्रयास किया लगभग उसी तर्ज पर लोहिया ने आजादी के बाद जनता को जगाने का कार्य अपनी मृत्युपर्यन्त लगातार किया है। उनकी राजनीतिक प्रवृत्तियों में प्रमुख रूप से क्रान्ति के लिये आगे बढ़ो, गरीबी मिटाओ, भू सेना अन्य सेना साक्षरता सेना बनाओ, उपजाऊ जमीन को मुफ्त में पानी दो, अंग्रेजी हटाओ, हिमालय बचाओ, हिन्द–पाक महासंघ बनाओ जैसे आन्दोलन खड़े किये। गोखले, तिलक और गांधी की श्रेणी में लोहिया ने जनता के बीच राजनीतिक शिक्षण और राज़नीतिक प्रवृत्तियों का जो जबरदस्त कार्य किया है वह अतुलनीय है। लोहिया के लगातार राजनीतिक शिक्षण और राजनीतिक प्रवृत्तियों के द्वारा एक नया राजनैतिक नेतृत्व देश में उभर कर सामने आया। फलस्वरूप राजनैतिक जड़ता का दौर खत्म हुआ है। जड़ता की समाप्ति प्रगति की पहली निशानी होती है। लोकसभा अध्यक्ष रविराय, भूतपूर्व प्रधान मंत्री चन्द्रशेखर, शरद यादव, रामविलास पासवान, हुक्मदेव नारायण यादव, जार्ज फर्नांडीज, लालू प्रसाद यादव आदि सत्ता और विपक्ष में पहले कई राजनेता लोहिया प्रणीत राजनीतिक प्रवृत्तियों में पले बढ़े और बड़े हुये हैं जो आज देश और विभिन्न प्रान्तों में नेतृत्व सम्भाले हुये हैं। हैदराबाद में जो लोग लोहिया के नेतृत्व में और उनकी राजनीतिक प्रवृत्तियों में समाजवादी पार्टी को जन्म

देने में इकट्ठे हुये वे लोग ईमानदारी से राजनीति चलाने वाले सुलझे दिमाग के लोग थे। जो मन और कर्म दोनों से सचमुच देश मेंऐसे समाजवादं का निर्माण करना चाहते थे जो किसी एक छोटे वर्ग के लिये फैशन का समाजवाद न हो बल्कि सच्चे अर्थो में देश में एक नया समाज, एक नई सांस्कृतिक मानस को तैयार करें। लोहिया की प्रेरणा से और राजनीतिक प्रवृत्ति से बनी इसी सोशलिस्ट पार्टी के निर्माण के साथ ही लोहिया पर बढ़ी राजनीतिक जिम्मेदारी आ पड़ी पर लोहिया ने अपनी राजनीतिक प्रवृत्तियों के द्वारा देश से चुन–चुनकर ऐसे दीवानों को जुटाया था जो किसी भी रूप में नये देश के लिये नये निर्माता हो सकते थे। हैदराबाद में लोहिया के नेतृत्व में और राजनीतिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कुछ नये लोग उभरकर सामने आये उनमें गोपाल नारायण सक्सेना, राजनारायण सिंह, विपिन पाल दास, विजय राम राजू, मामा वालेश्वर दयाल, मणीराम बांगड़ी, मधुलिमये, एधौनी पिल्लई, लाड़ली मोहन निगम, आदि के नाम प्रमुख थे।

गांधीवादी अमीरों के हृदय परिवर्तन करने पर ध्यान देते है और गरीबों के हृदय परिवर्तन की पूरी उपेक्षा करता है। मार्क्सवाद जो हिन्दुस्तान में वर्ग संघर्ष का पर्यायवाची बन गया है, जोरशोर से सिद्धान्त का प्रचार करता है, लेकिन वर्ग

संघर्ष हमेशा भविष्य के लिये होता है और वर्तमान में शायद ही कभी आता है।[7]

लेकिन लोहिया अपने व्यक्तिगत के सर्वाधिक तेजोमय, पौरुष और प्रहारक स्वरूप में प्रकट होते हैं। एक राजपुरुष के रूप में। उन जैसा जीवट का राजनेता, आन्दोलनकारी, संघर्षशील, क्रांतिदृष्टि, क्रांतिकारी, राजनैतिक प्रवृत्तियों को सुचारू रूप से चलाने वाले शासन और हुक्मरानों की नींद हराम करने वाला निर्द्वन्द्व, निर्भीक और निडर, निःस्वार्थ इसीलिये सदैव अपराजेय ऐसा व्यक्तित्व जिसकी कोई सानी नहीं है। लोहिया जिन्होंने किसी विशेष वर्ग का गुट ही न भारत में न अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कभी कोई वकालत नहीं की। उनकी राजनीतिक प्रवृत्ति और मनोवृत्ति एक ही एकमात्र स्थायी हित या दुखी मानवता का उद्धार। यही कारण था कि उन्हें किसी गुट ने अपना नहीं माना। वो असल में न्याय और सच्चाई के प्रबल पक्षधर थे और हर घटना को उसकी मेरिट के आधार पर आंकते थे। इसलिये वो अर्नाप्रिडिक्टेबिल थे।[8]

डॉ0 राममनोहर लोहिया ने सन् 1956 के

---

7. ओंकार शब्द– ''एक प्रमाणित जीवनी लोहिया'', पृष्ठ सं0 200 लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
8. कमला देवी चट्टोपाध्याय ने लोहिया पर अपने लेख में उन्हें ''अनप्रिडिक्टेबिल' कहा है। लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0 सं0 111

अगस्त मास में लोहिया ने हैदराबाद से ही मैनकाइंड नाम से एक अन्तर्राष्ट्रीय मासिक प्रकाशन शुरू किया। लोहिया इसके मुख्य सम्पादक थे। इस सन्दर्भ में लोहिया ने लिखा था "कम से कम संकुचित और ज्यादा से ज्यादा विश्वव्यापी आदर्श की लगातार खोज जारी रहना चाहिये। दुनिया का सत्य संशोधन और आदर्श भविष्य का अन्वेषण "मैनकाइंड" का ध्येय है।

लोहिया की सोशलिस्ट पार्टी ने भारतीय राजनीति में एक नया परिवर्तन लाने का प्रयास किया। एक वर्ष की पार्टी के कार्यकाल में ही लोहिया ने देख लिया था कि उनकी बहुत दिलचस्पी के कारण पार्टी में बुराई आ रही थी। सब कुछ लोहिया ही। ऐसी बातें थीं इसका परिणाम पार्टी के व्यक्तित्व पर बुरा पड़ रहा था। पार्टी के अफसर भी लोहिया के भरोसे अपना काम जिम्मेदारी से न करते। लोहिया ने अपनी राजनीतिक समझ और वैचारिक राजनीति के द्वारा भारतीय समाज में काफी तेजी से परिवर्तन लाने का प्रयास किया। उन्होंने हमेशा भारतीय समाज को आदर्श बनाने का प्रयास किया। लोहिया ने अध्यक्षीय भाषण में कहा–

"हिन्दुस्तान का दिवाला निकल रहा है और निकलेगा। पिछले दस वर्षों में सरकार ने पुरखों की पूँजी खर्च कर दी। सत्तरह, अठारह अरब रुपये खर्च कर डाला। पिछले

10 वर्षों से असमानता का नेहरू चक्र बड़ी तेजी से चल रहा है। इस चक्र को तोड़ने के लिये अमीरी कैलास इतना गिरा देना चाहिये और गरीबी का पाताल इतना उठा देना चाहिये कि समानता एक और दस के बीच में आ जाये।''

सन् 56 के अन्तिम महीनों और 57 के आरम्भ में लोहिया की एक कृति को सफलता मिलते–मिलते रह गयी। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ के विचार व सिद्धान्त और सोशलिस्ट पार्टी की पिछड़ी और परिगणित जाति के सम्बन्ध में नीति में बहुत कुछ एक रूपता और साम्यता थी। लोहियाके दो सहयोगी विमल मेहरोत्रा और धर्मवीर गोस्वामी ने डॉ0 अम्बेडकर से मिलकर चर्चा चलायी फिर डा0 लोहिया ने डा0 अम्बेडकर के दल को सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने के सम्बन्ध में उनसे पत्र व्यवहार किया। डॉ0 लोहिया की इच्छा थी कि डॉ0 अम्बेडकर परिगणित जातियों की ही नहीं बल्कि समस्त भारत के नेता बनें। लेकिन सदा की भांति इस बार भी दुर्भाग्य रास्ते में आ खड़ा हुआ और मौत ने डा0 अम्बेडकर को अचानक उठा लिया और लोहिया का सपना पूरा होने से रह गया।

लोहिया की राजनीतिक प्रवृत्तियों में सच्चाई सिद्धान्त और निर्भीकता के संकेत दिखलाई पड़ते थे। उन्होंने

भारतीय जनमानस को पूर्ण रूप से बदलने का प्रयास किया। उनकी राजनीतिक विचारधारा नेहरू और इन्दिरा गांधी से हट कर थी। लोहिया ने निर्भीकता पूर्वक कांग्रेसी सरकार की उन रगों पर उंगली रखना प्रारम्भ की जो देश का घाव थीं। सबसे पहले उन्होंने सरकार के व प्रधानमंत्री के असीमित खर्चों पर प्रहार किया। दूसरा प्रहार लोहिया ने भारत में अंग्रेजी भाषा के सार्वजनिक प्रयोग तथा उसके राजकीय प्रहार पर किया। इन्हीं मांगों को सार्वजनिक आन्दोलन का रूप देने के लिये लोहिया ने भारतवर्ष के सभी हिस्सों में सोशलिस्ट पार्टी द्वारा सत्याग्रह, सिविल न फरमानी का सिलसिला शुरू किया।

भारत में समाजवादी आन्दोलन और राजनीतिक प्रवृत्तियां जहां लोहिया के कारण आगे बढ़ी और पनपी और जनता को जगाने में सफल हुई वहीं कहीं–कहीं उसे लोहिया के कारण पीछे भी खिसकना पड़ा। इसका यह प्रत्यक्ष प्रसंग यह है कि लोहिया के कारण देश में लड़ाकू देशभक्तों की एक सशक्त फौज भी तैयार हुई पर मानसिक रूप से वे सभी लोहिया की बुद्धि पर ही सदा आश्रित रहे। लोहिया का सोचना, विचारना ही उनका अपना सोच विचार बन गया। लोहिया के दिमाग से हटकर अलग से स्वतंत्र रूप से सोचने की पद्धति या आदत या चाह कार्यकर्ताओं में कभी न पनपी। लोहिया के

बनाये राह पर बहुत सी जाति के लोगों ने राजनीतिक प्रेरणा और प्रवृत्तियों को लेकर के चलना सीखा। अपनी नई राह बनायी और कुछ जीवन में नयापन करने का प्रयास किया। उन्होंने 1960 में नई समाजवादी आन्दोलन चलाये उनमें प्रमुख रूप से अंग्रेजी हटाओ, जाति तोड़ो, हिमालय बचाओ आदि के सम्मेलनों का एक नया प्रयोग लोहिया ने किया। लोहिया ने अपने क्षेत्र के मतदाताओं से बरगद की बात में स्पष्ट कहा "मेरे पास कुछ नहीं इसके सिवाय कि हिन्दुस्तान के साधारण लोग और गरीब सोचते हैं कि मैं शायद उनका अपना आदमी हूँ।"

लोहिया ने सम्प्रदायवाद को खत्म कर समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे और लोहिया तो ईश्वर पर श्रद्धा न रखने वाले व्यक्ति हैं, पर गांधी पर उनकी ईश्वर जैसी ही श्रद्धा व आस्था थी। परन्तु हिंसात्मक गतिविधियों के कारण उनके मन का ईश्वर मर चुका था। गांधी तथा लोहिया ने अछूत वर्ग को काफी सहारा दिया। इन दोनों की प्रवृत्तियों में सच्चाई थी। गांधी तथा लोहिया ने समाज के पिछड़े तथा दलित वर्ग के उत्थान के लिये हमेशा सोचा करते थे। लोहिया की राजनीतिक प्रवृत्तियों से उनके समकालीन अनेक समाज सेवी, विचारक, चिन्तक, राजनेता तथा विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों के अध्यक्ष भी प्रसन्नचित्त रहते थे। गांधी, अम्बेडकर तथा लोहिया की

विचारधारा अलग–अलग थी। इन तीनों की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ अलग–अलग थीं। अम्बेडकर की राजनीतिक प्रवृत्तियों में दलित वर्ग के प्रश्न को भारतीय सवर्ण समाज व सरकार दोनों के लिये अपरिहार्य सिद्ध कर दिया था। यहाँ तक कि भारत की आजादी का प्रश्न भी उससे सम्बद्ध हो गया था। आजादी सारे हिन्दुस्तान के लिये चाहिये थी लेकिन दलित वर्ग तो सदियों से गुलाम था। वह गुलामी से भी बदतर जीवन व्यतीत कर रहा था। उसके लिये भारतीय सवर्ण समाज में कोई सम्मान नहीं था। यदि देश स्वतंत्र हो गया तो आजादी सवर्ण समाज के हाथ लगेगी और इस प्रकार से वह केवल सत्ता का हस्तांतरण होगा। दलित फिर भी शोषित व उपेक्षित रहेगा। वह देश के स्वतंत्र होने पर भी पराधीन रहेगा।[9]

बाबू जगजीवन राम बिहार के दलित वर्ग के नेता माने जाते थे। तब डॉ० अम्बेडकर "शिड्यूल कास्ट्स फेडरेशन की वर्किंग कमेटी" में उपस्थित थे। जगजीवन राम ने बिहार की राजनीति में सक्रिय योगदान देकर वहां के लोगों की मानसिक स्थिति को बदलने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी राजनीतिक प्रवृत्तियों से उनकी सोच बदलने तथा जीवन स्तर को बदलने का प्रयास किया। इन्दिरा गांधी के मंत्रिमण्डल में

---

9. गोबिन्द सिंह– बाबा साहिब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, पृष्ठ सं0 84, साहनी पब्लिकेशन्स, दिल्ली

जगजीवन राम का विशेष योगदान था।

लोहिया के बाद में राजनरायण तथा मोरारजी देसाई ने लोहिया की आरक्षण राजनीतिक प्रवृत्तियों को अग्रसारित किया। लोहिया के सामाजिक दर्शन उनके अनुयायी ने आगे बढ़ाने का प्रयास किया। उनका उद्देश्य लाखों दलित तथा पिछड़ों का क्या होगा, किसानों का क्या होगा, लगान का क्या होगा, हिन्दी का क्या होगा, सारे विचारधारायें तथा राजनीतिक प्रवृत्तियां समाजवाद पर आधारित थीं। राजनीतिक प्रवृत्ति के कारण विभिन्न प्रकार के दलित एवं पिछड़े वर्ग के लिये जाति वित्त एवं विकास निगम लि0 की स्थापना की गयी जिसमें निगम के माध्यम से संचालित योजनायें निम्नवत् चलायी गयीं। 1. स्वतः रोजगार योजना 2. स्वच्छकार विमुक्ति एवं पुनर्वास योजना 3. नगरीय क्षेत्र दुकान निर्माण योजना 4. कौशल वृद्धि प्रशिक्षण योजना।

राजनीतिक प्रवृत्तियों में मुख्य तौर पर लोहिया से लेके बाबू जगजीवन राम तथा वी0पी0 सिंह ने दलितों तथा पिछड़ों का सामाजिक समीकरण तब तक सम्भव नहीं है जब तक उन्हें सामाजिक समानता प्राप्त नहीं होती ओर राष्ट्रीय सम्पत्ति और आपस में उन्हें उचित हिस्सा प्राप्त नहीं होता। उन्हें जागरुक और स्वावलम्बी बनाने के लिये सकारात्मक और

क्रियाशील राजनीतिक प्रवृत्तियों को अपनाना पड़ेगा। उनकी गरीबी और दरिद्रता को दूर करने के लिये उनको शत्प्रतिशत साक्षर बनाना पड़ेगा। दलित एवं पिछड़े वर्गों की सामाजिक संरचना में परिवर्तन कर उनमें सौहार्द्र व समानता की प्रवृत्तियां उनके मानसिक स्तर को और मनोबल को ऊँचा उठाना चाहिये। जिससे कि यदि उनको आरक्षण का लाभ मिलता भी है तो उसका पूर्ण रूप से क्रियान्वयन हो सके।

भारत में आरक्षण के द्वारा दलित और पिछड़ों को अधिक सक्रिय और सम्मानित बनाना चाहते हैं परन्तु इनकी भी अपनी कुछ सीमायें, समस्यायें और प्रारचनायें हैं। आरक्षण से भारत में वर्गवाद और जातिवाद में अधिक से अधिक नई प्रवृत्तियां परिवर्तनशीलता तथा नये विचारों और विधानों का सामाजिक समीकरण बदलता हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता रहा है। आरक्षण के लाभ के कारण कई जातियों में दशा और दिशा बदल रही है। उसका मुख्य कारण आर्थिक मजबूती।

राजनीतिक प्रवृत्तियां, आर्थिक विषमता, आर्थिक निर्भरता, आर्थिक अभाव की जटिलताओं को समाप्त कर एक नये समाज की स्थापना करना है जो कि लोहिया की राजनीतिक समझ, राजनीतिक प्रवृत्तियों और राजनीतिक चिन्तन पर उस समाज के स्तम्भ खड़े हों जिसका कि मेरुदण्ड अटल हो तथा

नये समाज की दशा और दिशा लोहिया की राजनीतिक प्रवृत्ति पर आधारित हो।

## उत्तर मण्डल व गठबन्धन राजनीति

भारत में मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के पक्ष और विपक्ष में उठे विवाद ने सभी छोटे बड़े राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों तथा राज्यों के बड़े–बड़े महानगरों और राज्यों की राजधानियों एवं पक्ष और विपक्ष की पार्टियों में चर्चा का विषय बना हुआ था। रेल के डिब्बों में, राज्य परिवहनों की वसों में, बाजारों में, सरायों, धर्मशालाओं एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों में यही चर्चा का विषय है। गठबन्धन राजनीति में विभिन्न मंत्रियों तथा पार्टी अध्यक्षों से वार्ता करने पर ज्ञात हुआ कि मंडल आयोग की दशा और दिशा के सम्बन्ध में अलग–अलग वक्तव्य देकर अपने भावनाओं को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत किया।

उत्तर मंडल गठबन्धन राजनीति का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ। हमारे देश में दो प्रकार की राजनीतिक पार्टियां हैं। एक तो राष्ट्रीय पार्टी तथा दूसरी क्षेत्रीय पार्टी। कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी राष्ट्रीय पार्टी के अन्तर्गत आती

हैं। इनकी विचारधारा मंडल आयोग पर नकारात्मक थी। जबकि समाजवादी पार्टी तथा लोकदल इनकी विचारधारा सकारात्मक थी। मंडल आयोग को लागू करने के लिये विभिन्न प्रकार के मत, वक्तव्य तथा परिकल्पनाओं को अलग–अलग तरीके से प्रस्तुत किया।

आजकल भारतवर्ष में आरक्षण निम्नलिखित स्तरों पर लागू है। 1. लोकसभा एवं विधान सभाओं में जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षित स्थान। 2. केन्द्र एवं राज्य सरकार की नौकरियों में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिये आरक्षण। 3. राज्य सरकार की नौकरियों में पिछड़ा वर्ग के लिये आरक्षण 4. पदोन्नति में आरक्षण 5. वर्ग के लिये आरक्षण।

गठबन्धन राजनीति में विचारों, सिद्धान्तों एवं मतों की काफी भिन्नतायें पायी जाती हैं। हमारे देश में वी0पी0 सरकार, पी0वी0 नरसिम्हा राव, अटल विहारी तथा वर्तमान समय में गठबन्धन सरकार चल रही हैं। गठबन्धन राजनीति में लोकतंत्रात्मक एवं प्रजातंत्रात्मक प्रणाली को सबसे अधिक क्षति होती है क्योंकि वास्तव में गठबन्धन राजनीति में अलग–अलग पार्टी के उद्देश्य होते हैं जिनको एक साथ समाहित एवं सामंजस्य करना बड़ा मुश्किल है। बहुत सी राजनीतिक पार्टियां

चुनाव के समय आरक्षण का लाभ देकर अपनी पार्टी को सत्ता में लाना चाहती हैं। उत्तर प्रदेश में मायावती तथा भारतीय जनता पार्टी का गठबन्धन तथा मुलायम सिंह यादव, महाराष्ट्र में शिव सेना तथा भारतीय जनता पार्टी का गठबन्धन में तथा राजस्थान में कांग्रेस तथा निर्दलीय का गठबन्धन आपस में अस्थायी सरकार चलाते हैं। परन्तु गठबन्धन कभी भी टूटा उसी समय राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार पर आकस्मिक विपत्ति आ जाती है।

गठबन्धन राजनीति से राज्यों में पिछड़ों एवं दलित वर्ग के लोगों को, विद्यार्थियों को विशेष प्रकार के लाभ दिये जाते हैं। उनको दी जाने वाली सुविधायें चुनाव के समय अधिकतम लाभ पहुंचाती हैं। गठबन्धन राजनीति से शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं में विशेष अधिक से अधिक लाभ मिलता है। भारत में प्रान्तीय सरकारें लगभग सौ वर्षों से कायम हैं। आजकल ये राज्य सरकारें कहलाती हैं। राज्य सरकारों में दलित एवं पीड़ित वर्गों के कल्याण के लिये अनेक विशेष कार्यक्रम चलाये जाते हैं। 1921 ई0 में गैर ब्राह्मणों को अधिकतम प्रतिनिधित्व देने के लिये निमय बनाये गये। मैसूर ने भी गैर ब्राह्मणों को प्रतिनिधित्व देने के लिये 1921 ई0 में नियम बनाये गये। सन् 1928 ई0 में बम्बई सरकार ने भी पिछड़े वर्गों का

पता लगाने तथा उनकी प्रगति के लिये एक समिति का गठन किया था। इस समिति ने भी पिछड़े वर्गों के लिये शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं में विशेष सुविधायें देने के लिये प्रावधान करने की सिफारिश की थी।

भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत दलित वर्ग के स्थान पर अनुसूचित जाति लिखा गया तथा आदिम जनजाति के स्थान पर पिछड़ी जनजाति नाम दिया गया। गठबन्धन राजनीति के द्वारा अनेक राज्य सरकारों ने पिछड़ेपन के लिये मनदंड निर्धारित करने और पिछड़ापन दूर करने के उपाय सुझाने के लिये अपने अपने राज्य में आयोग अथवा समितियां गठित कीं। अब तक आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु जैसे बड़े–बड़े राज्यों में आयोग और समितियां गठित की गई हैं। बिहार सरकार ने बिहार हरिजन जाँच समिति का गठन किया था जिसके अध्यक्ष श्री ठक्करवापा थे। बिहार हरिजन जाँच समिति का सबसे महत्वपूर्ण सुझाव था– हरिजन (खासकर डोम) मुसहर एवं मेहतर के लिये आवासीय विद्यालय की स्थापना करना। बिहार सरकार द्वारा गठित पिछड़ा वर्ग आयोग जिसके अध्यक्ष मुंगेरीलाल थे, इनमें बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

लगभग प्रत्येक छठा भारतीय अनुसूचित जाति

का है और यदि अनुसूचित जातियों को मिला लिया जाये तो प्रत्येक चौथा या पांचवां भारतीय जनजातियों का सदस्य है। यदि हम इन जातियों की शिक्षा, रोजगार और कल्याण की समस्या के आयाम को समझना चाहें तो हमे इस बात को याद रखना चाहिये कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों की संख्या इंग्लैण्ड या जर्मनी की संख्या से अधिक है और जापान या इण्डोनेशिया की जनसंख्या के बराबर है।[10]

सरकार की आरक्षण नीति पर कटाक्ष करते हुये लोकसभा में लोहिया ने कहा था यह सरकार साँप को छेड़ना जानती है, उसके दाँत तोड़ना नहीं जानती। जाति के सांप को भी इस सरकार ने जगा दिया है जो ऊँची जाति के लोग हैं उन्हें उनसे चिढ़ हो गयी है।

गठबन्धन राजनीति को आकर्षित करने के लिये जगन्नाथपुरी, उड़ीसा में 10 फरवरी,1991 को जनता दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पार्टी के पदों एवं विधायिकाओं में पार्टी उम्मीदवारों को टिकट देने में, लोहिया के नीति के सम्पूर्ण स्वरूप के अनुसरण की इच्छा से 60 प्रतिशत के आरक्षण का प्रस्ताव प्रस्तुत कर भारतीय राजनीति को नया मोड़ देने की शुरूआत कर दी है। तत्कालीन

---

10. जगजीवन राम भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, पृष्ठ सं0 62, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

जनता दल अध्यक्ष श्री बोम्मई के अनुसार रामकृष्ण हेगड़े के नेतृत्व में एक कमेटी नियुक्त की गई है जो श्री सिंह के प्रस्ताव पर विचार कर पार्टी संविधान में आवश्यक संशोधन सुझायेगी तथा गठबन्धन राजनीति को सक्रिय बनाये रखने के लिये उसमें समय–समय पर आवश्यक परिवर्तन भी किये जायेंगे।

लोहिया ने एकबार कहा था "लोग मेरी बात सुनेंगे शायद मरने के बाद लेकिन किसी दिन सुनेंगे।[11]

हम देख रहे हैं उनकी कही बात आज तक साबित हो रही है। विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाली सरकार ने लोहियावादी, विन्देश्वरी प्रसाद मण्डल की अध्यक्षता में गठित मण्डल आयोग की पिछड़ी जातियों के लोगों की सरकारी नौकरियों में आरक्षण की सिफारिश स्वीकार कर 27 प्रतिशत आरक्षण लागू करने की घोषणा अगस्त 1990 में की थी जिसके बाद देश में खासतौर पर दिल्ली और उत्तर भारत के शहरों में सवर्ण छात्रों ने आरक्षण के विरोध में आन्दोलन चलाया। लोहिया इस सम्भावित प्रतिक्रिया के उफान के खतरे के प्रति भी सचेत थे। तभी उन्होंने आगाह करते हुये कहा था "दबी हुई जातियां और समूहों को उठाने की नीति से बहुत सा जहर भी फैलेगा। वास्तव में सावधानी बरतने पर इस जहर के दूषित

---

11. सामान्य जन, नार्गापुर, 78, मुखपृष्ठ से।

पहलुओं को सिर्फ दबाया जा सकता है, उसे पूरी तौर पर दूर नहीं किया जा सकता। उससे यह एक जहर निकल सकता है कि वह फुर्ती से द्विज को तो नाराज कर देगा पर उतनी ही फुर्ती से शूद्र को प्रभावित नहीं करेगा।"[12]

गठबन्धन राजनीति से शूद्र और द्विज के बीच कटुतापूर्ण बोलचाल के कारण वातावरण को संदेह से दूषित किये जाने का सन्देह प्रकट करते हैं। गठबन्धन राजनीति से आर्थिक और राजनीतिक समस्यायें, जातीय और वर्ग सम्बन्धी समस्यायें या तो पृष्ठ भूमि में चली जा सकती हैं या धुंधला सकती हैं। इसके समाधान के लिये लोहिया के जातीय और गठबन्धनीय सम्बन्धी लेखों को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद लगता है कि सामाजिक बदलाव के किसी भी क्रान्तिकारी कदम के पूर्व व्यापक शिक्षण कार्यक्रम को सघन रूप से चलाने की आवश्यकता थी और इसके लिये लोहिया के विचार काफी मदद कर सकते हैं। उच्च वर्ग के युवकों को उन्होंने सम्बोधित करते हुये लिखा— अगर मानव स्वभाव अपरिमित त्याग के लिये तत्पर रहता है तो ऊँची जातियाँ सलाहंकार बनेंगी और कार्यकारिणी होंगी सभी नीची जातियां।[13]

---

12. धर्मयुग, बम्बई, 1 से 15 अक्टूबर, 1990, लोहिया और जाति विनाश नीति, पृ0 12

13. लोहिया के विचार, पृ0 137

गठबन्धन राजनीति से राष्ट्र के नेतृत्व को बदला जा सका है परन्तु गठबन्धन राजनीति की चमत्कारी से सृजन क्षमता और देशसमाज को पुनर्जीवन की शक्ति से परिचित कराया जा सकता है।

आधुनिक भारत में गठबन्धन राजनीति समाज और राष्ट्र के लिये दिन प्रतिदिन घातक होती जा रही है। वर्तमान समय में राजनीति का पूर्णरूप से व्यवसायीकरण हो चुका है। अधिकांशतः राजनेता गठबन्धन राजनीति के द्वारा सरकार को चलाना चाहते हैं और विभिन्न किये गये वादों को जनता के समक्ष चुनाव के पहले जो किये जाते हैं वे निरर्थक और खोखले साबित होते हैं क्योंकि उन वादों की कोई अहमियत नहीं होती है। दलित और पिछड़े वर्ग को लुभाने और आकर्षित करने के लिये विभिन्न क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियां जैसे कि समाजवादी पार्टी, लोकदल, बहुजन समाजवादी पार्टी, जस्टिस पार्टी, दूरदर्शी पार्टी, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, शिव सेना, तेलगूदेशम पार्टी इत्यादि परन्तु गठबन्धन राजनीति में स्थिरता का अभाव होता है। वे किसी विशेष और वर्ग जाति को आरक्षण का लाभ देना चाहते हैं। इन पार्टियों के अध्यक्षों का यथार्थवादी दृष्टिकोण नहीं होता है। इनके उद्देश्यों में बाहरी तौर से कर्तव्यनिष्ठा और कर्तव्य

---

बोधता झलकती है परन्तु आन्तरिक रूप से उनमें सच्चाई कम नजर आती है।

गठबन्धन राजनीति से विरासत और नसीहत का आभास होता है। व्यापकता कम झलकती है। गठबन्धन राजनीति के नेताओं में प्रतिभावान तथा उनमें राष्ट्रवादी और भारतीय संस्कृति के प्रति कम प्रेम होता है। उनकी कल्पनायें कलात्मक अधिक होती हैं। मौलिक चिन्तन पर ज्ञात हुआ गठबन्धन राजनीति में प्रमाणिकता और यथार्थता के संकेत स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ते। उनकी प्रवृत्तियां निराधार होती हैं। वर्तमान समय के गठबन्धी राजनेताओं को अधिकतर उनका झुकाव धन और सुख सुविधाओं की ओर होता है। अधिकतर राजनेता की सोच में व्यापकता के स्थान पर संकीर्णता के संकेत स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। उनको प्रजातांत्रिक मूल्य और मानवीय मूल्यों का कोई ज्ञान नहीं है। इन नेताओं का चिन्तन समाज और राष्ट्र के विकास की ओर नहीं है बल्कि स्वयं अपने विकास की ओर अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये।

गठबन्धन राजनीति में प्रबलता और संयमी वाणी के संकेत स्पष्ट नजर नहीं आते हैं। इनके पास बौद्धिकता का अभाव होता है। सिद्धान्तहीनता राजनीति का प्रचार प्रसार करते हैं। राजनीति धरातलीय नहीं है। कार्य विधि संगठनात्मक

क्षणिक है। उसमें दिग्भ्रमित नजर अधिक आती है। इनमें शोषित वर्ग की वेदना और सहानुभूति बाहरी तौर पर है। आन्तरिक तौर पर नहीं है। लोहिया, अम्बेडकर तथा गांधी निःसंदेह एक आदर्शवादी राजनीतिज्ञ थे और यह युग व्यवसायवादी राजनीति का है। इन नेताओं में क्रांतिकारी परिवर्तनों को लाना चाहते थे। उनमें उग्रता तथा व्यग्रता के संकेत स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। इन लोगों के शब्द प्रखर तथा तीखे होते थे। उनमें एक अजीब किस्मत की मारक क्षमता होती थी। उनके निशाने और शब्दों के प्रहार में बाहरी तौर पर कर्कशपन परन्तु आन्तरिक तौर पर सद्भावना समाज और राष्ट्र की भलाई के लिये सोचते थे।

गठबन्धन राजनीति से पिछड़े ओर दलित वर्ग की समस्यायें वर्तमान समय में भयंकर रूप से उलझ गयी है। इनमें थोड़ी बहुत जागृति आयी है। उसके परिणाम स्वरूप वे झिझकते कदमों से उन अत्याचारों और अन्याय का विरोध करने की चेष्टा कर रहे हैं जो अत्यधिक लज्जाजनक ढंग से उन पर होते आये हैं। वह अत्याचार और दमन जिसका शिकार वे अनुसूचित जातियां हुई हैं सेवा है ये सभ्य समाज में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। दुख इस बात का है कि इन अत्याचारों की संख्या और इनकी विकटता बढ़ती जा रही है। अजीब बात यह है कि भारतीय समाज इन अत्याचारों को न

केवल सहन कर रहा है बल्कि कुछ मामलों में अनदेखा भी कर रहा है। दोषी व्यक्तियों को तुरन्त दण्ड नहीं दिया जाता और जब तक वे दण्ड पाते हैं लोग ये भूल चुके होते हैं कि उनका अपराध क्या था इसका कारण यह है कि कानून की प्रक्रिया अत्यन्त लम्बी, विलम्बकारी और खर्चीली है।

गठबन्धन राजनीति से आरक्षित वर्ग और जातियों को लाभ और हानि दोनों ही हैं। कई स्थानों पर इनको लाभ भी है जैसे कि गठबन्ध राजनीति के राजनेताओं के द्वारा उनमें जागरुकता के बीज और अपने अधिकारों के बारे में उनको चैतन्य करके ऊर्जामयी और ओजस्वी बनाने का प्रयास किया जाता है। जिससे इन लोगों के रास्ते में बहुत सी कठिनाइयां और रुकावटें हैं उनका अन्त किया जा सके परन्तु उन्हें अनवरत रूप से अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संघर्ष करना ही पड़ेगा। हमें उन बेड़ियों को काटकर फेंक देना है जो हमारे पैरों में पड़ी हैं तभी मानवता, दासता से मुक्ति मिल सकेगी।

## उत्तर मण्डल और यथार्थ राजनीति

लोकसभा के चुनावों ने इस देश की जनता को आखिरी मौका दिया है ताकि वह फैसला कर सके कि उसे लोकतंत्र को बनाये रखना है या नहीं। लोकतंत्र के अलावा हमारे जीवन के दो अन्य आदर्श– राष्ट्रीयता और समाजवाद भी दांव

पर लगे हुये हैं। लेकिन लोकतंत्र का संकट सबसे गहरा और सबसे ज्यादा साफ है। राष्ट्रीयता और समाजवाद के संकट के बारे में बहस की गुंजाइश है, लोकतंत्र के संकट के बारे में बहस की गुंजाइश नहीं है।

लोकतंत्र, राजतंत्र का उल्टा शब्द है। राजतंत्र का अर्थ है एक खानदान का पीढ़ी दर पीढ़ी राजा। लोकतंत्र का अर्थ है कि देश किसी एक खानदान की जागीर नहीं है और सबसे निचले वर्ग या जाति में जन्मा व्यक्ति भी सबसे ऊँचे पद पर जा सकता है।[14]

लोकतंत्र तानाशाही का भी उलटा शब्द हैं। तानाशाही का मतलब है एक आदमी या कुछ लोग मिलकर, डंडे के जोर से पुलिस और सेना की मदद से राज चलायें। लोकतंत्र का अर्थ है डंडे की जगह सोच विचार से काम लिया जाये। जोर जबरदस्ती की जगह सहयोग से काम लिया जाये।

लोकतंत्र कुलीनतंत्र का भी उल्टा शब्द है। कुलीनतंत्र का अर्थ है- कुछ जातियों का सारी सत्ता पर अधिकार बना रहे। लोकतंत्र का लक्ष्य होता है कि सभी जातियों और वर्गों को सत्ता में बराबर की हिस्सेदारी मिले।

हमारे देश के महान नेताओं ने लोकतंत्र का

---

14. मस्तराम कपूर– "समसामयिक प्रतिक्रियायें" पृष्ठ सं0 9, प्रकाशक: लेखक मंच 79वीं पाकेट 3, मयूर विहार, दिल्ली।

सपना देखा था लेकिन वह लोकतंत्र तथा यथार्थ राजनीति का क्रियान्वयन हिन्दुस्तान की राजनीति में नहीं हुआ। उसके बदले हमको मिला एक राजतंत्र जिसमें बाप के बाद बेटे–बेटियों और पोते–पोतियों को गद्दी पर बिठा दिया जाता है। जिस व्यवस्था में मंत्री का बेटा मंत्री, अफसर का बेटा अफसर, जज का बेटा जज अपने आप बनता जायेगा। इसलिये लोकतंत्र के लिये पहला कदम है खानदानी उत्तराधिकार की व्यवस्था को खत्म करना। यथार्थ राजनीति और लोकतांत्रिक प्रणाली का आपस में एक तारतम्य है। लोकतंत्र एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा समाज की अधिक से अधिक बुराइयों को दूर किया जा सकता है। बिना लोकतंत्र के यथार्थ और आदर्श राजनीति को क्रियान्वयन करना बड़ा कठिन है। राजनीति में हमेशा स्पष्टता, सहृदयता, सामंजस्य, भाईचारा और कुलीनता जैसे आचरणों का होना आवश्यक है। यथार्थ राजनीति से जन समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है और राष्ट्र के विकास के लिये आवश्यक है। चुनाव के समय मतदाताओं के सामने बहुत से सवाल हो सकते हैं लेकिन लोकतंत्र के मूल्यों की रक्षा करना सबसे बड़ा सवाल है। वर्तमान समय में हमारे देश में लोकतंत्र को सबसे बड़ा खतरा है यदि लोकतंत्र नहीं बचेगा तो सारे समाज और राष्ट्र की स्थिति क्या होगी यह एक विचारणीय प्रश्न है।

लोकतंत्र की बहाली के लिये सबसे प्रमुख मुद्दा समाज को शिक्षित करना है तथा जाति और वर्ग का भेद समाप्त करना। लोकतंत्र की रक्षा करने के लिये हमारे देश में बहुत से कुशल राजनीतिज्ञ हुये जिन्होंने भारत के लोगों को लोकतंत्र और मानवीय मूल्यों की रक्षा करने का प्रयास किया। बिना लोकतंत्र के सामाजिक और राष्ट्र की बुराइयों को दूर नहीं किया जा सकता है। लोकतंत्र एक यथार्थ और ठोस राजनीति करने का तरीका है। लोकतंत्र की रक्षा के लिये गोपाल कृष्ण गोखले, बालगंगाधर तिलक, सरदार बल्लभ भाई पटेल, श्री पंडित जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी, मधुलिये तथा राममनोहर लोहिया जैसे महान व्यक्तित्व ने भारतीय राजनीति को यथार्थता की ओर ले जाने का प्रयास किया। लोहिया की चौखम्भा परियोजना समाज के लिये एक चुनौती है।

हमारे देश में बहुत से समाज सुधारक भी हुये जैसे कि स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय तथा रवीन्द्रनाथ टेगौर, मुहम्मद अली जिन्ना तथा मौलाना अब्दुल कलाम् आजाद जैसे महान चिन्तकों और सुधारकों ने आरक्षण और सामाजिक न्याय को सुधारने का काफी प्रयास किया। चुनाव प्रणाली से पहले राजनेताओं का सुधार आवश्यक है। बिना राजनेताओं को सुधारे देश में यथार्थ राजनीति की

शुरूआत करना असम्भव है। बदलते विश्व में नेताओं को भी अपनी सोच और दृष्टिकोण भी बदलना चाहिये।

सरदार पटेल एक सुव्यवस्थित राज्य के प्रणेता थे। स्वतंत्रता संग्राम और देश की एकता में और यथार्थ राजनीति को क्रियान्वित करने के लिये उनका ठोस योगदान किसी सहारे या वाह्य अलंकरण का मोहताज नहीं है।। हम भारतीय (महान) विशेषण के प्रयोगों में बहुत लापरवाह है जो भी सत्ता में होता है, महान हो जाता है लेकिन पदच्युत होने के बाद ऐसे बहुत से मंत्रियों और पदाधिकारियों को पूछता भी नहीं। सरदार पटेल इसके कुछ अपवादों में से कुछ एक थे। उन्होंने अहिंसक प्रतिरोध की शक्ति, लोकतंत्र की मर्यादा और यथार्थ राजनीति का प्रदर्शन करके दिखाया। अपनी खोई हुई शक्ति की ओर लौटते हुये राष्ट्र ने प्यार से उन्हें सरदार माना। पटेल ने कहा भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित्र कर देना चाहिये। वह धर्मनिरपेक्ष आदर्शों के प्रति संकल्प बद्ध रहे और उन्होंने पिछड़ों, दलितों और अल्पसंख्यकों के लिये भी दृढ़ रहे और कहा इनका भी हक है।

आरक्षण और नयी सामाजिक व्यवस्था केन्द्रीय सेवाओं में आरक्षण लागू करने के निर्णय के खिलाफ संघर्ष के लिये तत्पर है। राजीव गांधी से लेकर ज्योति वसु तक, प्रमुख

राजनीतिक दलों के नेता, नौकरशाही तंत्र, विश्वविद्यालय और समाचार पत्र सब इस व्यवस्था के अंग हैं। केन्द्रीय सत्ता में मुट्ठी भर विशेषाधिकार सम्पन्न लोगों का प्रमुख बनाये रखने के लिये भयानक इकतरंफा प्रचार होने लगा है। जोर–जबरदस्ती, हिंसा, आगजनी, सार्वजनिक सम्पत्ति का विनाश, ये सब इन मुट्ठी भर प्रभुत्वशाली लोगों के प्रिय हथियार हैं।

पिछड़ा शब्द को परिभाषित और यथार्थ राजनीति करने के लिये डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, कन्हैयालाल, मणिकलाल मुंशी, सरदार बल्लभ भाई पटेल तथा मद्रास के मोहम्मद इस्माइल साहब ने कहा कि उनके प्रांत में इस शब्द को निश्चित और तकनीकी अर्थ मिल चुका है। उन्होंने कहा कि इस शब्द को ऐसा अर्थ न दिया जाये, जिससे मुसलमानों और ईसाइयों के पिछड़े वर्गों के इसकी परिधि से बाहर किया जा सके।

यथार्थ राजनीति भारतीय लोकतंत्र पर कमजोर और घिनौनी साबित होती जा रही है। सार्वजनिक तौर पर यथार्थ राजनीति का स्वरूप विगड़ता जा रहा है। वर्तमान लोकतंत्रीय सामाजिक व्यवस्था एक रुढ़िवादिता की स्थिति में असमंजस की स्थिति में फँसी हुई है। उसका रूप लोकतंत्रीय विचारधारा पर सही साबित नहीं होती है। स्मरणीय है कि महात्मा गांधी वयस्क

मताधिकार के जबर्दस्त समर्थक थे। उनका विचार था कि वयस्क मताधिकार के बल पर हरिजन मुसलमान और पिछड़ी जातियां सरकार के काम को प्रभावित करेंगी। वे मानते थे कि सम्पत्ति और साक्षरता को वोट की योग्यता बनाने में उपर्युक्त जातियों और समुदायों की बड़ी संख्या वोट के अधिकार से वंचित हो जायेगी। वोट के महत्व के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने 3 दिसम्बर,1931 को कहा था– "मैं वयस्क मताधिकार दिये बिना संतुष्ट नहीं होऊँगा। मैं एक झटके में अस्पृश्यों को वोट के अपार शक्ति से सम्पन्न करूँगा।" अब वे आरक्षणों और मताधिकार देने की व्यवस्था को बिना शर्त मानने लगे थे। गांधी जी पिछड़े वर्गों के शब्द से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल 1933 में किया था। जब उन्होंने पिछड़े वर्गों जो सामाजिक आंशकाओं से ग्रस्त थे तथा अस्पृश्यों और अनुसूचित जातियों को दो अलग–अलग श्रेणियों के रूप में देखने की बात कही थी।

विश्वनाथ प्रताप सिंह केवल देवीलाल को परास्त करना नहीं चाहते थे, वे अजीत सिंह पर भी चोट करना नहीं चाहते थे। ऐसा लगता था कि उनकी प्रबल इच्छा थी कि सभी किसान समूह की एकता, जो कि जनता दल के व्यापक जन समर्थन का आधार था, समाप्त हो। उन्होंने जाट सैनी वनाम

यादव, गूजर का द्वन्द्व खड़ा किया और मंडल आयोग का हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर पिछड़े वर्ग की सूची से जाट सैनियों का नाम निकाल बाहर करने की योजना बनाई, हालांकि वे सब जातियां अद्विज श्रेणियों में आती थीं और उनका रहन—सहन और हुक्का पानी एक था। राज्य और केन्द्र की समान सूची की बात कर वी0पी0 सिंह आरक्षण के दायरे से मध्य प्रदेश के कुर्मी और उड़ीसा के खंडापत किसानों को भी बाहर रखना चाहते थे।

वी0पी0 सिंह ने नये नीति वक्तव्य की घोषणा से पहले वामपंथी दलों तथा भाजपा से कोई औपचारिक वार्तालाप नहीं की। वैसे कहा जाये तो वी0पी0 सिंह की मंडल आयोग की नीतियां यथार्थ और गौरवमयी थीं क्योंकि आरक्षण का दायरा सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये विशेष प्रबन्ध करने की अनुमति देता है। यथार्थ राजनीति वास्तव में एक चिन्तन का विषय है। भौतिकवादी समाज में भौतिक सुखों को प्राप्त करने के लिये यथार्थ राजनीति और लोकतंत्र के वास्तविक मूल्यों में गिरावट आयी है। यथार्थ राजनीति का अनुसरण करना वर्तमान में विभिन्न पार्टियों के नेता और मन्त्रियों ने इसके वास्तविक रूप को बिगाड़ दिया है। यथार्थ राजनीति लोकतंत्र की कसौटी,

संसदीय प्रणाली की गरिमा, चुनाव प्रणाली, सामाजिक व्यवस्था और न्याय व्यवस्था के स्तम्भों पर खड़ी होनी चाहिये। यदि न्याय व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था में मतभेद है तो यथार्थ राजनीति को सही रूप से क्रियान्वित करना एक स्वप्न है।

यथार्थ राजनीति भारतीय समाज को ईमानदार, साहसी और सच्चरित्र बनाना चाहती थी परन्तु समाज और राष्ट्र की समसामयिक प्रतिक्रियायें हमारे देश के विकास के लिये आवश्यक है। यथार्थ राजनीति में सबसे प्रमुख बात तो ये हैं कि क्षेत्रीय और राष्ट्रीय पार्टी के नेताओं को अपनी छवि बनाने के लिये उन्हें अच्छे और स्पष्ट नीतियों को अपनाना चाहिये परन्तु रॉजनीति का अपराधीकरण होने के कारण हमारे देश में लोकतंत्रात्मक प्रणाली पूर्ण रूप से दूषित हो चुकी है। राजनीति में धनबलियों और वाहुबलियों का बोलबाला है। वह यथार्थ राजनीति का मतलब नहीं समझते। बिहार और उत्तर प्रदेश की विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों के द्वारा लोकतंत्र के समस्त मूल्यों को ध्वस्त कर दिया है। चुनाव के समय वादे यथार्थ राजनीति के करते हैं परन्तु वे उनका बिल्कुल अनुसरण नहीं करते। राजनीति हमारे देश और समाज को दिशा भ्रमित किया जा रहा है। वे राजनीति के वास्तविक मूल्यों को बिल्कुल भूल चुके हैं।

यथार्थ राजनीति से समाज और राष्ट्र विकास

होता है परन्तु नेता यथार्थ राजनीति का अर्थ नहीं समझते वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके सत्ता को हासिल कर लेते हैं। भारतीय समाज में धीरे–धीरे यथार्थ राजनीति शब्द पलायन करता जा रहा है उनकी भावनायें नेताओं से दूर होती जा रही है। तथा विश्वास भी खत्म होता जा रहा है।

## उत्तर मण्डल एवं मूल्यहीन व विचार रहित राजनीति

भारतीय समाज मूल रूप में समता मूलक समाज है। प्रारम्भिक वैदिककाल में वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज में चार मुख्य वर्ग थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। परन्तु बाद में एक नया बहिष्कृत शूद्रों का हो गया। इन्हीं वर्णों के कारण समाज हजारों जातियों में बंट गया। कई धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों ने जाति की कठोरता और जटिलताओं, मूल्यहीन और विचारहीन राजनीति को बदलने और सुधारने की चेष्टा की। परन्तु हिन्दुओं में सामाजिक व्यवस्था, मूल्यहीन व विचार रहित राजनीतिक परम्पराओं को बदलने में कोई अधिक सफलता नहीं मिली। आज भी वैसा ही सामाजिक भेदभाव और आर्थिक विषमता है जो शताब्दियों पहले थी और करोड़ों लोग इस विषमता के शिकार हैं। आज सबसे अधिक

कष्ट तो शूद्रों को हो रहा है जो जाति से बहिष्कृत हैं। अछूत जातियों और भारत के मूल निवासियों को अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की राजनीतिक संज्ञायें दे दी गई हैं। इन जातियों को पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़ा है और उनकी निर्धनता अत्यन्त दयनीय है। संसार के इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहां मानवों को इतना अधिक गिरा दिया गया हो और उससे क्रूरतापूर्ण और अमानवीय व्यवहार किया जाता हो। हिन्दू समाज में एक ही धर्म के मानने वालों के अपने साथियों के प्रति भेदभाव और अन्याय से कमा लिया जाता है। भारतीय समाज में इससे अधिक मूल्यहीन विचार रहित तथा लज्जाजनक और कोई बात नहीं है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जाति की भूमिका न केवल महत्वपूर्ण है बल्कि निर्णायक भी है। समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसका स्थान उसकी जाति पर निर्भर करता है। कुछ जातियों को प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार प्राप्त हैं। जबकि कुछ अन्य जातियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बहुत से ऐसे व्यवसाय हैं जिनमें अनुसूचित जातियों और जनजातियों का प्रवेश कर पाना कठिन है। इस कारण उन्हें

अपनी आजीविका के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ा जिसका परिणाम अन्ततोगत्वा यह हुआ है कि वे सर्वथा कंगाल हो गये हैं। मूल्यहीन तथा बेवुनियादी सिद्धान्तों ने तथा आर्थिक दुर्बलता के कारण वे अशिक्षा और अज्ञान के गर्त में गिरे रहने पर विवश हुये। इस कारण उनमें पिछड़ापन, अंधकार, संस्कारहीनता, निम्नकोटि का जीवन स्तर, मूल सुविधाओं का अभाव, भौतिक सुविधाओं की कमी तथा कर्कशतापूर्ण जीवन जीने के लिये उनको विवश होना पड़ा। इस कारण से उनकी स्थिति दासी जैसी रही। मूल्यहीन राजनीति तो भारतवर्ष में जब राजतंत्र और सामन्तवाद का बोलबाला था तब काफी तेजी से पनप रही थी। राजाओं के द्वारा बनाये गये नियम का लाभ कुछ विशेष वर्ग को मिलता था जबकि अन्य वर्गों तथा जातियों का शोषण और उनके साथ अमानवीय अत्याचार किये जाते थे जिस कारण उनको शारीरिक और मानसिक रूप से पंगु कर दिया।

राजतंत्र, प्रजातंत्र में बदला परन्तु आजादी के पूर्व के भारत में नियम तथा रीति–रिवाज आजादी के बाद के भारत से अलग थे। राजतंत्र और प्रजातंत्र की राजनीतिक विचारधारायें शासन पद्धति और सामाजिक व्यवस्था बिल्कुल अलग थी। अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा पिछड़ा वर्गों के कुछ शिक्षित व्यक्तियों ने अंग्रेजों के साथ काम करते समय

तनिक ज्ञान प्राप्त करके कुछ क्षेत्रों में अपने बच्चों की शिक्षा के प्रसार के प्रभुत्वों के परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों और जनजातियों, और पिछड़ी वर्गों की मुक्ति का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इन जातियों की दुर्दशा की ओर राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान गया। यद्यपि जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों की स्थिति अच्छी नहीं थी। हमेशा इनको मूल्यहीन सिद्धान्तों पर रखा तथा इनको समाज से दूर रखा और हेय दृष्टि से देखा परन्तु आजादी के बाद कुछ राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान इनकी ओर गया जिससे इनके जीवन स्तर में सुधार हो सके। इन नेताओं में गांधी जी, भीमराव अम्बेडकर, लोहिया, शाहू जी, ज्योतिबा राव फुले, पेरियार, बाबू जगजीवन राम, जयप्रकाश नारायण, वी0पी0 सिंह इत्यादि नेताओं ने प्रयास करके उनको राष्ट्रीय धारा से जोड़ने का प्रयास किया।

यद्यपि कई प्रगतिशील हिन्दू संगठनों ने अनुसूचित जातियों की समस्याओं को हल करने का बीड़ा उठाया नेताओं में महात्मा गांधी, भीमराव अम्बेडकर तथा लोहिया ने मूल्यहीन तथा दूषित विचारधारा को समाप्त करके आदर्शवाद की राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया। नेताओं में महात्मा गांधी ने राजनीतिक स्तर पर इन समस्याओं को हल करने की चेष्टा की। 1930 और 1932 में गोलमेज सम्मेलन

में जो विचार विमर्श, हुआ उसके द्वारा मूल्यहीन मानसिकता को सक्रिय बनाकर लोगों की विचारधारा को बदलने का प्रयास किया। मिस्टर रैम्से मेकडोनाल्ड द्वारा दिया गया साम्प्रदायिक पंचाट और उसका प्रतिकार करने के लिये महात्मा गांधी ने अपने जीवन की बाजी लगाकर भी हिन्दू समाज के विघटन को रोकने की चेष्टा की। उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा किये जाने वाले दुराचार, शोषण, अत्याचार, को रोका जाये तथा उनकी अन्तरात्मा को जगाना चाहा जिससे कि वे यह महसूस कर सकें कि उन्हीं के धर्म, पंथ, मानवीय रूपरेखा पर चलने वाले असंख्य व्यक्ति किस प्रकार पशुओं जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हिन्दू समाज तो बच गया, रक्षा मानवता की होनी चाहिये न कि विशेष वर्ग और जाति की। क्योंकि सबसे बड़ा धर्म मानवता की सेवा करना है। आज भी वे लोग दासों जैसी स्थिति में हैं। उनके जीवन स्तर और उनको प्रगतिमय बनाने के लिये मूल्यहीन विचारधारा को समाप्त कर सक्रिय और सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिये।

आजादी के 60 साल पूरे होने के बाद भी ऐसा लग रहा है कि हममें आजादी का बोध विकसित नहीं हुआ है। इसके विपरीत दासता के संस्कार मजबूत हुये हैं। इस वक्तव्य की दृष्टि के लिये प्रमाण देने की जरूरत नहीं, जिनकी

आंखें खुली हैं उन्हें कदम–कदम पर प्रमाण मिल सकते हैं। हमारा स्वतंत्रता आन्दोलन, जिन मूल्यों के बल पर खड़ा था वे तमाम मूल्य लगभग बेईमानी, झूठ, फरेब तथा धोखामय हो गये हैं। हमारे नेताओं ने जो जो सपने देखे थे वे खंडहर हो गये हैं। चाहे यह सपना राष्ट्रभाषा का हो, स्वदेशी वस्तुओं के प्यार का या दलितों और पिछड़ों की विशेष सुविधायें देकर ऊपर उठाने, समतामूलक समाज का या कुलीनतंत्र का निर्माण करने वाली विदेशी शिक्षा प्रणाली से पीछा छुड़ाकर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली लाने का या विदेशी की आर्थिक निर्भरता से मुक्त होकर स्वावलम्बन की स्थिति प्राप्त करने का परन्तु मूल्यहीन राजनीति तथा स्वार्थमयी विचारधारा और राजनीति के खोखले और निराध ार सिद्धान्तों ने भारतीय समाज और व्यवस्था को अधिक बौना और महत्वहीन बना दिया।

देश के इस दुर्भाग्यपूर्ण कायाकल्प के लिये कौन जिम्मेदार है। क्या इसके लिये हमारे नेता जिम्मेदार नहीं जिनके हाथ में हमारेदेश की बागडोर रही। वे नेता जिन्हें हमने अवतार का दर्जा दिया और जिनके हाथ हमने अपना भाग्य सौंप दिया। इस दोषारोपण से कैसे मुक्त हो सकते हैं। लेकिन उनकी शान में कुछ कहने का साहस आज कौन कर सकता है। जहां देश एक पार्टी का पर्याय और पार्टी एक व्यक्ति का पर्याय बन

जाये वहां इन नेताओं के बारे में कुछ कहना देशद्रोह के बराबर समझा जायेगा।[15]

मधुलिमये का विचार है कि– लगता है अंग्रेजों ने जाते–जाते इस देश में अपने एजेंट स्थापित कर दिये और उन्हें राजनैतिक उपनिवेशक खत्म होने के बाद आर्थिक और सांस्कृतिक उपनिवेश चलाते रहने का काम सौंप दिया। ये एजेंट उन्हीं लोगों में से थे जो 1947 से पहले उपनिवेश के तंत्र को चला रहे थे। नेहरू और पटेल जैसे नेताओं को अंग्रेज शासकों ने फुसलाया (शायद डराया भी) कि इन्हीं लोगों से काम नहीं चलाओगे तो देश में अव्यवस्था हो जायेगी। उन्हें हिन्दुस्तान की कुर्सी सम्भालने की जल्दी थी, वे तुरन्त मान गये। परिणाम स्वरूप वही नौकरशाही, वही पुलिस, वही कोर्ट कचहरियों का तंत्र और वही शिक्षा प्रणाली बनी रही जैसी विदेशी शासन चलता था। वैसे ही स्वदेशी शासन चलने लगा भीतर ही भीतर ये तत्व साजिश करते रहे और भारत में मूल्यहीन राजनीति बुनती चली गयी। मूल्य धीरे–धीरे हास्यास्पद बनते गये और भारत में वास्तव में प्रजातांत्रिक वास्तविक मूल्यों में गिरावट आती गई। सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने और नेताओं को कठपुतलियां बनाने के बाद इन अवशिष्ट तत्वों ने अंग्रेजों के नमक का हक अदा

---

15. मस्तराम कपूर– ''समसामयिक प्रतिक्रियायें'' पृष्ठ सं0 45, प्रकाशक: लेखक मंच 79वीं पाकेट 3, मयूर विहार, दिल्ली।

करना शुरू किया। हमारी हर योजना विदेशों की आर्थिक अथवा तकनीकी सहायता पर निर्भर होने लगी। कोई भी नई योजना बनती तो अफसरों और मंत्रियों के झुंड विदेशी दौरों पर निकले। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के वेष में उपनिवेशवाद नये रूप में आ गया। अर्थतंत्र पर अधिकार करने के बाद संस्कृतितंत्र पर भी उसका कब्जा हो गया।

राजनीतिक विचारधाराओं में उथल–पुथल आती रहती है जो किसी न किसी तरीके से राजनीतिक बिन्दुओं पर अपना विभिन्न प्रकार से असर डालती रहती है।

उत्तर मण्डल की मूल्यहीन व विचार रहित राजनीति से भारतीय जनमानस पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मूल्यहीन विचार मानवीय प्रवृत्ति को दूषित करते हैं। जिससे मानवीय विचारधारा में विसंगतियों एवं कुत्सित प्रवृत्तियों का जाति–जाति के बीच में वर्ग–वर्ग के बीच में और सवर्ण तथा पिछड़ों के बीच में वैमनस्यता तथा अहम्वाद का जन्म हो रहा है। जिससे सवर्ण तथा अन्य जातियों के बीच में सामाजिक तथा राजनैतिक तनाव पैदा हो रहा है। उत्तर मण्डल की मूल्यहीन व विचार रहित राजनीति को पैदा करने वाले प्रमुख रूप से निम्नकोटि वाले राजनेता जिनकी सोच छोटी है उनके द्वारा समाज में उत्पन्न की जा रही है।

मूल्यहीन राजनीति को पैदा करने से संवैधानिक तथा प्रजातान्त्रिक मूल्यों में दिन–प्रतिदिन गिरावट आ रही है। प्रजातांत्रिक मूल्य बदल रहे है। इसके लिये प्रमुख क्षेत्रीय पार्टियों के नेता तथा जो अपराधी हैं परन्तु किसी न किसी पार्टी से जुड़कर अपने आपको समाज में सक्रियता का प्रदर्शन कर वह समाज के लोगों को दिशा भ्रमित तथा दिग्भ्रमित कर रहे हैं और लोगों में आपस में वैमनस्यता के बीज वो रहे हैं। जिससे पूरा समाज राजनीति के घने कोहरे से घिरा हुआ है। अस्पष्टता दिखाई पड़ रही है, स्पष्टता कम नजर आती है। मूल्यहीन राजनीति से भविष्य में भारतीय परिवारों व समाज को पूर्ण रूप से खतरा है। इससे विकास के स्थान पर विनाश होगा। उत्थान के स्थान पर पतन होगा, प्रेम के स्थान पर घृणा तथा द्वेष पैदा होगा।

उत्तर मण्डल राजनीति हमारी युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट तथा लक्ष्य विहीन बना रही है क्योंकि उत्तर मण्डल राजनीति के दूरगामी परिणाम राष्ट्र के लिये अच्छे नहीं हैं। राजनीति का पूर्ण रूप से अपराधीकरण हो चुका है। वैदिक वर्ग से अपने आपको दूषित राजनीति से दूर करता जा रहा है। जिस कारणों से राजनीति की रूपरेखा का ढाँचा दोषपूर्ण होता जा रहा है उसके लिये जिम्मेदार भारतीय राजनीति के निम्नकोटि

के राजनेता हैं जिनमें मौलिकता तथा नैतिकता किसी प्रकार के गुण तथा नीतियां नहीं हैं।

# अध्याय - सप्तम्

## उत्तर मण्डल में पिछड़ा दलित सम्बन्ध

आक्रमणकारी आर्यों की बर्बरता और अत्याचार के सामने सर्वप्रथम जिन भारतवासियों ने घुटने टेक कर उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, उनके साथ आर्यों ने कुछ अच्छा व्यवहार किया और उन्हें अपने साथ शरीक कर लिया। आर्यो ने उन्हें शूद्र कहा किन्तु सछूत शूद्रों की तरह व्यवहार किया और गाँवों में बसने की अनुमति दी। लेकिन जिन भारतवासियों ने आसानी से हार कबूल नहीं की और मारते काटते अंत में आर्यों का प्रभुत्व स्वीकार किया वे अछूत शूद्र घोषित किये गये और उन्हें गाँवों से बाहर बसने की अनुमति दी गयी और जिन लोगों ने हार एवं दासता कबूल नहीं की वे जंगलों और पहाड़ों पर भाग गये। आज भी वे कोल, भील, सन्थाल, उराव, नागा आदि जातियों के नाम से जीवन–यापन कर रहे हैं। उन्हें मूल भारतवासियों के करोड़ों धर्म परिवर्तन लोग अल्पसंख्यक कहे जाते हैं। आधुनिक भारत की नब्बे प्रतिशत संख्या पिछड़ी जातियों की है और उनकी समस्यायें भारत की समस्यायें ब्राह्मणवादी सरकार अछूत शूद्रों को परिभाषित जातियों की सूची में रखती है। कोल, भील, सन्थाल, उराव आदि आदिवासियों को जनजाति में शुमार करती है किन्तु सछूत शूद्रों की अनेक जातियों को पिछड़ी जातियों की सूची से अलग कर और उनमें सवर्ण जातियों को

सम्मिलित कर सत्य का गला ऐंठती है। सछूत शूद्रों की संख्या कम से कम देश की आबादी का साठ प्रतिशत है। उनकी संख्या में कटौती करने के पीछे केवल सरकार की राजनीतिक चाल है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। हल तथा हसिया श्रम का प्रतीक है। हल के स्पर्श से जिस जाति या वर्ग का छूत लगता है और वे खेतों में बैलों की जोड़ी और हल से काम नहीं कर सकते उनका शुमार पिछड़ी जातियों की सूची में कदापि नहीं किया जा सकता। भारत का संविधान भी इसकी इजाजत नहीं देता।

मानव जाति के उत्थान और कल्याण के लिए नया संदेश और नया जीवन दर्शन और ज्ञान की किरणें बिखेरने वाले कुछ ऐसे युग दृष्टा और युग पुरुष होते हैं जिनके बताये मार्ग पर चल कर नये युग का निर्माण होता है। मानव सभ्यताओं और संस्कृतियों उर्वर भूमि पर बड़े–बड़े सम्राटों और राजनेताओं के वृक्ष उगते और फूलते फलते हैं। कौन जानता था कि आज से पाँच दशक पूर्व जब भारत अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शिकंजे में था त्याग मूर्ति चंदरपुरी जी ने पिछड़ा वर्ग आन्दोलन का बीजारोपण किया था और एक दिन फले फूलेगा और पिछड़े दलितों में से राजनेता पैदा होकर शासनरूढ़ होगा। पिछड़ी जातियों का देश के पैमाने पर आरक्षण उपलब्ध कराने

का श्रेय त्याग मूर्ति चन्दरपुरी जी को है और जिसकी पूर्ण उपलब्धि के लिये अभी भी संघर्ष जारी है।

भारत में पिछड़ी जातियों पर कई प्रकार के आन्दोलन हुये। संविधान सभा में अन्य पिछड़ी जातियों की पहचान और उनकी परिभाषा के विषय पर सदस्यों के बीच काफी बहस हुई, किन्तु स्पष्ट रूप से किसी निर्णय पर नहीं पहुंचायी गई। जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवादी परम्परा ने हजारों वर्षों से बहुसंख्यक देशवासी शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पिछड़े हुये हैं और उन्हें शूद्र अथवा अतिशूद्र बनाकर सभी अधिकारों से वंचित किया गया है। अस्पृश्यता के कारण अछूतों एवं अतिशूद्रों की पहचान स्पष्ट है और वे परिगणित जातियों एवं जनजातियों की सूची समाविष्ट की गयी है। अन्य पिछड़ी जातियां भी शूद्र हैं किन्तु सछूत शूद्र हैं। हिन्दू शास्त्र यही कहता है कि आश्चर्य है कि संविधान सभा में किसी भी सदस्य ने ये प्रश्न नहीं उठाया, शूद्र जो सछूत हैं स्पष्टतया अन्य पिछड़ी जातियों की पहचान हैं और इसी आधार पर इनकी सूची का गठन अनिवार्य है।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व बिहार की पवित्र भूमि मगध से विवेक, तर्क और बुद्धि पर आधारित बौद्ध धर्म की समतामूलक एवं मानववादी ज्योति प्रज्वलित हुई थी, जिसने

सारे विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आप्लावित किया था, ठीक उसी पवित्र भूमि में पिछड़ा वर्ग संघ की स्थापना हुई थी जिसने आन्दोलन के प्रकाश से तीन वर्षों के भीतर ही सम्पूर्ण बिहार और देश के अधिकांश भाग प्रकाशमय होने लगे थे। पिछड़ा वर्ग आन्दोलन एक युग धर्म के रूप में प्रकट हुआ जिसने दलितों, शोषितों एवं पिछड़ी जातियों को उनकी मुक्ति के संघर्ष के लिये आरक्षित किया था।

"अखण्ड भारत तथा हिन्दू राष्ट्र लोकतांत्रिक प्रारूप के मौलिक तत्व हैं। के0वी0 हेडगेवार, संदपालकर, वी0डी0 सावरकर, एम0एस0 गोलवलकर एक वर्ग के विचारक भारतीय समाज की रचना उसकी आत्मा भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्वों के आधार पर करते हैं। सामाजिक संरचना की इकाई के रूप में इस प्रारूप ने जाति अथवा वर्ग को ही स्वीकार किया है किन्तु उनमें किसी प्रकार के ऊँच नीच के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया है। हेडगेवार के शब्दों में 'सब हिन्दू एक हैं।' अस्पृश्यता वेद या वेदान्त संगत नहीं है, इसका अन्त किया जाना आवश्यक है। जाति समूहों को इस वर्ग के अधिकांश विचारक व्यावसायिक वर्गों में प्रतिस्पर्धा व संघर्षशील इकाईयों के रूप में नहीं जैसा कि आमतौर पर पूँजीवादी वर्गों के बीच देखा जाता है बल्कि सहयोगी वह संपूरक के रूप में देखते हैं।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारत में जातियों का विकास श्रम विभाजन, सहयोग व समाजसेवा की दृष्टि से हुआ। जातियाँ अनेक होते हुये भी सब एक ही व्यवस्था की अंग हैं।[1]

''दलितों पर अत्याचार की समस्यायों से निदान तीन प्रकार से हो सकता है। प्रथम दलितों को आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर बनाया जाये उनका सामाजिक व शैक्षणिक विकास किया जाये जिससे वे भविष्य में गैर दलितों के मोहताज नहीं रहें। अपनी रक्षा करने में स्पर्धा हो सके। इस दृष्टि से आजादी के बाद देश में कमजोर वर्गों के सामाजिक, आर्थिक विकास की विविध योजनायें आरम्भ की गयी। कानून न्याय एवं प्रशासन तन्त्र को प्रभावकारी बनाया गया जिससे दलितों गैर दलितों के बीच में वैमनष्यता न बढ़े तथा एक दूसरे के लिये विषवमन न करें और दलितों और पिछड़ों के बीच प्रभावकारी सम्बन्ध बने तथा दोनों वर्गों को संवैधानिक और राजनीतिक अधिकारों के सम्बन्ध में जान सकें। सामाजिक खुलेपन से पिछड़ों और दलितों के बीच मेल मिलाप तथा नजदीकता हो सकती है। सामाजिक अत्याचार सम्बन्धी जातिगत प्रतिबन्धों से ऊपर उठें जिससे पिछड़े और दलित आपस में प्रेम और सामुदायिक सम्पन्नता और सामुदायिकता को अर्जित करने का

---

1. डॉ0 रामगोपाल सिंह–''भारतीय दलित समस्यायें एवं समाधान'', पृष्ठ सं0 2–3, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल (म0प्र0)

प्रयास करें। पिछड़ों और दलितों के बीच की बुराइयों को दूर कर सामाजिक संरचना में विरोधाभास अर्थात समाज में सेवा व सुविधाओं के विभाजन सम्बन्धी व्यवस्था सम्पत्ति के स्वामित्व और वितरण की व्यवस्था, अधिकार और कर्तव्यों के निर्धारण की व्यवस्था, सत्ता और सत्ता के वितरण की व्यवस्था में अन्याय और भेदभाव न हो।

पिछड़ों और दलितों के सम्बन्धों के बीच में सामाजिक संरचना में लोगों के विचारों और प्रवृत्तियों में परिवर्तन होना आवश्यक है। इससे कि समाज के समन्वित विकास और शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान देना चाहिये। किन्तु उससे दलितों और पिछड़ों के बीच सामंजस्य, समन्वय और मैत्री भावना की आवश्यकता है। समन्वय का लक्ष्य अन्ततः दलित और पिछड़ों की पृथक सामाजिक पहचानों को मिटाना चाहिये जो नैतिक शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक सुधार कार्यक्रमों के आयोजनों से सम्भव हो सकता है। समाज में मौलिक परिवर्तनों को लाने में नेतृत्व की महती भूमिका होती है इसलिये जरूरत है हमारे नेता राजनीतिक स्वार्थों से अलग अपने सामाजिक दायित्वों को पहचानें।

पिछड़ों और दलितों के सम्बन्धों को मधुर और आकर्षक बनाने के लिये उच्च वर्ग तथा सामान्य वर्ग को भी

प्रयास करना चाहिये। व्यावसायिक पिछड़ापन और बंधुआ मजदूरी की निम्न दर और निर्धनता, ऋण ग्रस्तता आदि कारण हैं। सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति की कितनी ही ऊँची–ऊँची बातें क्यों न की जायें लेकिन जब तक पिछड़ों और दलितों की आर्थिक और भौतिक स्थिति में सुधार नहीं लाया जाता। उनकी दशा में कोई फर्क नहीं लाया जा सकता। इसके लिये पिछड़े और दलितों के सम्बन्धों को विभिन्न उन्मुक कार्यक्रमों से उनके स्तर को और सम्बन्धों को प्रिय बनाया जा सके।

वी0पी0 मण्डल का जीवनवृत अपने आप में सबसे अधिक कसौटी पूर्ण और तर्क और कुतर्कों से भरा है। वी0पी0 मंडल ने भारतीय समाज की लम्बी गुलामी और जड़ता को झकझोर दिया है। इस मंडल ने आरोही और अवरोही क्रम के रूप में अपने आपको परिभाषित करने का प्रयास किया है। जनमना जाति व्यवस्था भारतीय समाज का सबसे बड़ा कलंक है। इसके कारण न केवल हम सदियों तक विदेशी हमलावरों द्वारा रौंदे जाते रहे बल्कि हमारी ज्ञान विज्ञान की सारी धारायें भी सूख गयीं। इस व्यवस्था को बदलने के लिये वी0पी0 मंडल का जीवनवृत आधार बन सकता है। वी0पी0 मंडल ने भारतीय राजनीति के स्तम्भों, संसदीय प्रणाली को तथा विधायी प्रक्रियायों में उहापोह पैदा कर दिये।

इस समय हमारे समाज में दलित और पिछड़ों के सम्बन्धों को नजदीक जाने के लिए आरक्षण जैसी साम्य क्रिया के द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। इस समय हमारा समाज दस हजार जातियों और उपजातियों में बंटा हुआ है। यह विभाजन इतना कठोर और जटिल है कि वर्ग निर्माण की प्रक्रिया जो आधुनिक लोकतांत्रिक प्रणाली को जीवित और मजबूत रखने के लिए उसे नया वी0पी0 मंडल की रूपरेखा के आधार पर उसको क्रियान्वित किया जा सकता है। मंडल आयोग सारे समाज को सवर्ण पिछड़े, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को चार समूहों में विभाजित करने की सिफारिश करता है। मंडल आयोग के प्रणेता विदेश्वरी प्रसाद ने मंडल आयोग की आधार शिला रखी थी परन्तु धीरे–धीरे भारतीय राजनीति के लिए एक नासूर बन गया। इस नासूर को खत्म करने के लिए तेज धार वाले नस्तर की जरूरत है।

जाति व्यवस्था को चार समूहों में विभाजित कर सकते हैं। एक, दो, तीन, चार इसमें यह भी व्यवस्था है कि प्रत्येक जाति समूह अथवा व्यक्ति किसी भी श्रेणी को चुन लें। इसके बाद मान लीजिये विभिन्न सरकारी कार्यालयों, दफ्तरों और प्रतिष्ठानों में केवल इन जातियों के उल्लेख की प्रथा को निषिद्ध कर दिया जाये। इसके बाद आगामी समय में जातियों

की जगह इन श्रेणियों के इस्तेमाल का प्रयोग किया जाये। यदि ये लोग जाति के स्थान पर श्रेणी चुन लेंगे तो जाति के बंधन टूटने लगेंगे और वर्ग निर्माण की प्रक्रिया तेजी से चलने लगेगी। मंडल आयोग भारतीय राजनीति के लिए तथा वर्ण व्यवस्था से श्रेणी व्यवस्था की ओर एक रीढ़ की हड्डी है जिससे समाज को जाति विहीन बनाया जा सकता है और भारतीय समाज में विसंगति और जातीय वैमनुष्यता को दूर किया जा सकता है।

वी0पी0 मंडल के जीवनवृत का उद्देश्य भारतीय समाज को जाति विहीन समाज बनाना। इस मंडल के द्वारा भारतीय समाज का जाति और उपजातियों के स्थान पर समूहीकरण श्रेणी के आधार पर हो और धर्म सम्प्रदाय का विभाजन खत्म हो जांयेगा क्योंकि समूहीकरण से सभी वर्गों के लोग आपस में मिलजुल कर रहेंगे और नये जाति विहीन समाज का निर्माण होगा। अभी तक हमारे देश के समाज शास्त्रियों और चिन्तकों और बुद्धिजीवी वर्ग ने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया।

बराबरी के लिये सामाजिक समता के अभियान के द्वारा कई प्रकार के आन्दोलन चलाये गये तथा उन आन्दोलनों का स्वरूप पिछड़े और दलितों में आपस में मधुर और स्वच्छ सम्बन्ध स्थापित हो जिससे कि पिछड़े दलितों को और दलित पिछड़ों को हेय और घृणा की दृष्टि से न देखकर प्रेम

की दृष्टि से देखें जिससे कि समाज में वैमनष्यता के बीजों को नष्ट किया जा सकता है। पिछड़ों और दलितों के बीच मंडल आयोग के जीवनवृत्त के द्वारा परिवर्तन करके नई समाजवादी व्यवस्था को क्रियान्वित किया जाये। आज भारत का सारा समाज स्वतन्त्रता और समता की भूख से पैदा हुआ है। समाज को इस संकट से उबारने का काम बहुत कठिन है कि वर्ण व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था को क्रियान्वित करके नये आयामों को स्थापित किया जा सके।

हमारा इस समय फर्ज बनता है कि हम इतिहास की नब्ज को पहचानें, दीवार पर लिखी हुई इबारत को पढ़ें और समझें तथा आने वाले परिवर्तनों में अपने आपको सामाजिक, मानसिक और नैतिक रूप से तैयार करें। भारतीय संस्कृति को पुरातन पन्थी समस्याओं से निकालकर नयी परम्पराओं को मंडल आयोग के जीवनवृत्त पर उसको स्थापित करें। यदि भारतीय समाज जातीय और वर्णीय स्वार्थों में फंसा रहा तो उसका विकास कभी पूर्ण नहीं होगा और भयानक परिस्थितियों को आयनिष्ट करेगा। पिछड़ों और दलितों के बीच में नजदीकियां लाना और उसमें सम्बन्ध स्थापित कराना एक विचारणीय प्रश्न है। इसमें प्रमुख भूमिका सामाजिक परम्पराओं और शैक्षणिक विकास और मूलभूत अधिकारों का है। पिछड़ापन

समाज के लिये एक अभिशाप है जिससे कि समाज में मानसिक संकीर्णता और तुच्छता का जन्म होता है। सामाजिक अधिकार, नागरिक अधिकार और राजनतिक अधिकारों में समानता होनी चाहिये जिससे पिछड़ों और दलितों के बीच में रूढ़िवादी दृष्टिकोंण को समाप्त किया जा सके।

उत्तर मंडल में पिछड़ा दलित सम्बन्ध के बीच में कमलेश्वरी प्रसाद यादव आन्दोलन से जुड़े हुये एक बहुत ही सहनशील और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे। वे मेरे सहयोगी और मित्र थे तथा संविधान सभा के सदस्य भी थे। 1949 ई0 में जब मैने संघ के संगठन को राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा करने के निमित्त उनसे परामर्श किया था तो उन्होंने इस कार्य में मुझे पूरा सहयोग देने का वायदा किया था और तभी से दिल्ली में वे नेताओं से बराबर सम्पर्क में लगे हुये थे। पिछड़ी जातियों के नेतृत्व के लिये जब मैने उनसे डा0 पंजाब राव देशमुख के नाम की चर्चा की तो वे बहुत प्रसन्न हुये। शीघ्र ही बाद में देश की पिछड़ी जातियों के प्रमुख नेताओं एवं कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन 1950 ई0 में 26 जनवरी के दिन दिल्ली स्थित दीवान चन्द्र हाल में आयोजित किया गया। सम्मेलन ने सर्वसम्मति से बिहार राज्य पिछड़ा वर्ग संघ को अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ के रूप में खड़ा किया और उसमें बिहार वर्ग

संघ के मूलभूत सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों को पूर्ण रूप से स्वीकृत कर लिया। सम्मेलन में डा० पंजाब राव देशमुख अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ के अध्यक्ष चुन लिये गये। इस तरह बिहार राज्य पिछड़ा वर्ग संघ ने पिछड़ी जातियों के आन्दोलन को भारतव्यापी आन्दोलन बना दिया।

पिछड़ा दलित सम्बन्ध उत्तर मंडल, भारतीय राजनीति में एक ज्वलन्त प्रश्न हैं। आरम्भ से लेकर वर्तमान समय तक पिछड़ा दलित सम्बन्धों के बीच कई प्रकार के आयोग जाति समितियां, व्याख्यान, कार्यशालायें और सुधारात्मक पक्ष को लेते हुये कई प्रकार की नीतियां निर्धारित की गईं। पिछड़ा दलित सम्बन्ध भारतीय समाज लोकतंत्रात्मक प्रणाली के लिये एक चुनौती है। भारतीय समाज में कई बार पिछड़ों एवं दलितों के सम्बन्धों के बीच में उहापोह हुई है और कई कटुता के संकेत दिखलाई पड़ते रहते हैं। पिछड़े दलितों के सम्बन्धों के बीच में मधुरता को स्थापित करना और कटुता को समाप्त करना एक प्रमुख मुद्दा है। भारतीय समाज में आज भी ऐसी बहुत सी विसंगतियां हैं जो सामाजिक वैमनष्यता को पैदा करती हैं। पिछड़ों और दलितों के बीच में भारत के सांस्कृतिक इतिहास की अभूतपूर्व और सनसनीपूर्ण खोज करने और विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक काल

से आज तक दलित पिछड़े समाज के सम्बन्धों में मधुरता स्थापित करना चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है।

अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ के गठन होते ही देश में विभिन्न राज्यों में आन्दोलन की गति बहुत तेज हो गई और संघ का संगठन बनना प्रारम्भ हो गया। उन्होंने विभिन्न राज्यों के संगठन को अनुशासित करने के उद्देश्य से सारे देश का दौरा किया और उसे एक वर्ष के भीतर ही एक सूत्र में बांध दिया। डॉ0 देशमुख तथा शिवपाल सिंह चौरसिया भी संगठन के कार्य में लगे हुये थे। दिल्ली प्रदेश पिछड़ा वर्ग संघ का गठन हो चुका था जिसमें राम प्रसाद सैनी, प्यारेलाल सोनकर, पृथ्वीपाल सिंह, ज्ञानेन्द्र नाथ, भैरव प्रसाद चक, राम प्रसाद धनकर, सरदार मोहन सिंह, भगवान दास सेठ, बिहारीलाल, जी0डी0 चौरसिया, जी0पी0 यादव, वदन सिंह पाल, आद नेता संगठन का कार्य कर रहे थे। उस समय दिल्ली प्रदेश के मुख्यमंत्री चौधरी ब्रह्म प्रकाश पिछड़ा वर्ग आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहे थे। उत्तर प्रदेश में राज्य संघ के अध्यक्ष बदलूराम रसिक के साथ द्वारिका प्रसाद मौर्य, दुर्गा दत्त सिंह कुशन, चन्द्रका प्रसाद जिज्ञासु, दुर्गादीन साहू, छेदीलाल साथी, बाबूलाल प्रजापति, कुँवर उदयवीर सिंह आदि नेता संगठन के कार्य में व्यस्त थे। मध्य प्रदेश पिछड़ा वर्ग संघ में डा0 इन्द्रजीत

सिंह, खूबचन्द्र पटेल, चिन्तामणि सहाय, गोकुल प्रसाद सैनी, कन्हैयालाल जी आदि नेता संगठन कार्य को संचालित कर रहे थे। पंजाब पिछड़ा वर्ग संघ का गठन हो चुका था। जिसमें डा० हजारीलाल, सन्तराम बिये, अमीर सिंह चौधरी, चानन सिंह, सीताराम सैनी आदि नेता सक्रिय रूप से कार्य कर रहे थे। पश्चिम बंगाल में राज्य पिछड़ा वर्ग के संघ के अध्यक्ष आशुतोष के साथ एस०के० सरकार, उपेन्द्र नाथ वर्मन, गौर सुन्दरनाथ, खलील रहमान अंसारी, विवेकानन्द विश्वास आदि नेता संगठन के कार्य में सक्रिय थे। उड़ीसा राज्य में पिछड़ा वर्ग संघ का कार्य युद्धमणि भंगराज, डॉ० पी० पारीजा, लक्ष्मीनरायण साहू आदि नेताओं के संचालन में चल रहा था। राजस्थान राज्य में राज्य संघ का संगठन कार्य और आन्दोलन का संचालन महन्त लक्षानन्द, घीसाराम जाट, कालूराम राठौर, स्वामी परमानन्द जी भारती, सन्तोष सिंह कछवाह, छोटेलाल सुक्खा जी, राम स्वरूप चन्दलाल आदि नेता कर रहे थे।

पिछड़ी जातियों के संगठन के कार्य में बम्बई प्रदेश किसी अन्य राज्य से पीछे नहीं था। वहाँ के आन्दोलन में के०एस० डोंडकर, डब्लू सिंह वाग, जी०सी० बोबाडें, के०पी० सहाय, एस०आर० लोन्ढे, आर०बी० राउत, डी०आर० सिन्हा, बी०आर० गाढ़े आदि नेता कार्य कर रहे थे। आन्ध्र प्रदेश में

पिछड़ा वर्ग संगठन का गठन हो चुका था जिसमें जी० लच्छना, डॉ०एन० चेंन्गा रेड्डी, जी०आर० वर्मा, के० कामराज, ए० हुसैनप्पा, टी०एम० विश्वनाथ रेडी आदि नेता कार्य कर रहे थे। मद्रास पिछड़ा वर्ग संघ के अध्यक्ष पद पर वी०एम० घटकाचलम थे उनके साथ एन०ई० मनोरम, एस० रामनायन, एम०ए० नईयर आदि नेता मद्रास राज्य में आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। केरल प्रदेश में प्रमुख रूप से क्रिश्चियन पिछड़ा वर्ग संघ कार्य कर रहा था, जिसके पी०एम० अब्राहम मी०नीलकण्ठ, बी०डी० जौन, ई०पी० वर्गीज आदि प्रमुख नेता थे।

मैसूर प्रदेश पिछड़ा वर्ग के संघ के संगठन में बी० गोपाल रेड्डी, एन०सी० देसप्पा, बी० मरिअप्पा, के०जी० देशप्पा, के०पी० बोडियर, एम० वीरप्पा, एन०बी० कृनप्पा आदि नेता कार्य कर रहे थे। आसाम प्रदेश पिछड़ा वर्ग संघ के संगठन कार्य में जितेन्द्र नाथ चौधरी, हरीलाल गुप्ता, गौर मोहनदास चारूवरमन, सोनाराम फुकन, गिरधारीदास, ज्ञानमोहन दास, एम०एन० सैकिया, नीलम्बरदास आदि नेता संचालक थे। इस प्रकार देश के सभी प्रान्तों में प्रदेश स्तर के नेता वर्ग की देखरेख में संगठन का कार्य बहुत तेजी के साथ चल रहा था। उस समय बराबर देश के विभिन्न प्रान्तों के दौरा पर रहता था और संघ के संचालकों को अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ

से अनुशासित होकर चलने का आदेश देता था इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इससे सम्पूर्ण भारत में पिछड़ा वर्ग आन्दोलन बहुत तेजी से फैला। क्योंकि उस समय में सभी राज्य में ब्राह्मण मुख्य मंत्री थे और वहां की पिछड़ी जातियां सभी प्रकार कुचली जा रही थीं।

बी0पी0 मण्डल के पहले पिछड़ी जातियों के लिए बनाये गये आयोग और आन्दोलन का गढ़ बिहार रहा। भारत की राजधानी दिल्ली में अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघके गठन ओर राज्यों में प्रचार एवं संगठन से कांग्रेस के नेता सतर्क हो गये। अब पंडित जवाहरलाल नेहरू की दृष्टि में भी यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि बिहार प्रदेश पिछड़ी जातियों के आन्दोलन का गढ़ है। जहाँ से उनका आन्दोलन बिजली कीतरह तेजी से सारे देश में फैला है।

29 जनवरी 1953 ई0 में भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के 340वीं धारा के अनुसार पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति की थी। आयोग का उद्‌देश्य परगणित जातियों एवं जनजातियों को छोड़कर अन्य पिछड़ी की पहचान करना था तथा इनके उत्थान के लिए अपनी अनुसंशाओं के साथ सरकार को सुझाव देना था। काका साहब कालेलकर को इस आयोग का अध्यक्ष बनाया गया था जो एक ब्राह्मण थे और महात्मा गांधी

के शिष्य थे। आयोग की नियुक्ति से पिछड़ीजातियों में खुशी की लहर सी फैल गयी। आयोग के सदस्यों को सारे देश के भ्रमण करने के साथ अन्य पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध में वास्तविक तत्यों को संग्रह करना था।

सन् 1950 में अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ का गठन होते ही अनेक राज्यों में संघ के गठन बनने लगे थे और कुछ राज्यों में संघ की कुछ इकाइयाँ पहले भी काम कर रही थी। सभी राज्य की शाखायें अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग से आबद्ध हो गयी थी फिर भी देश के स्तर पर पिछड़ा वर्ग आन्दोलन की गति बहुत धीमी थी। पं0 नेहरू पिछड़ा आन्दोलन का प्रचार–प्रसार नहीं चाहते थे। जिस प्रकार जगजीवन राम के माध्यम से हरिजनों पर अपना प्रभाव बनाये रखते थे। इसी प्रकार डा0 देशमुख के माध्यम से अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे। डॉ0 देशमुख को इसी उद्देश्य से उन्होंने मन्त्रिमण्डल में मंत्री बनाया था। जगजीवन राम हरिजनों तथा अन्य पिछड़ी जातियों पर अपने नेतृत्व का दावा करते थे। इससे वह राजनैतिक लाभ उठाते थे। डा0 देशमुख को पंडित की सरकार में मंत्री बनने से जगजीवन को काफी चिन्ता हुई। इसलिये जहां एक ओर वे बिहार की पिछड़ी जातियों के आन्दोलन पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने की चेष्टा की वहीं दूसरी

ओर अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ पर अपना कब्जा कायम रखना चाहते थे। सन् 1953 में 19 मई को जब दिल्ली क्लब में संघ के अधिवेशन का आयोजन हुआ तो उसमें उन्होंने विभेद डालने की चेष्टा की। 18 मई की विषय समिति की बैठक में कुछ सदस्यों ने डॉ0 देशमुख पर आरोप लगाते हुये कहा कि केन्द्रीय सरकार के मन्त्री बनने के लोभ में उन्होंने संघ के आन्दोलन को फैलने से रोक रखा है। कुछ सदस्यों ने उनसे संघ के अध्यक्ष पद से अविलम्ब इस्तीफा की माँग को शिवदयाल सिंहं चौरसिया ने पूरा समर्थन किया था, क्योंकि वे जगजीवन राम की सांठगांठ में थे। उस समय डॉ0 देशमुख की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के साथ आन्दोलन का भविष्य जुड़ा हुआ था। जगजीवन राम अपने राजनैतिक प्रभुत्व और स्वार्थ में पिछड़ा वर्ग संघ के संगठन को तोड़ना चाहते थे। ऐसी स्थिति में डॉ0 देशमुख का समर्थन कर संघ के संगठन को खंडित होने से बचाया। उन्होंने उस समय संघ के सदस्यों और कार्यकर्ताओं से कहा था कि आन्दोलन के हित में डॉ0 देशमुख का अध्यक्ष बना रहना बहुत आवश्यक है। इस पर सभी सदस्य शान्त हो गये और चौरसिया जी ने अपनी गलती महसूस की।

19 मई के दिन के खुले अधिवेशन में सांसद रणवीर सिंह के स्वागत भाषण के बाद उसका उद्घाटन करते

हुये भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन ने कहा भारतीय समाज में फैली हुयी विषमताओं तथा अन्य पिछड़ी जातियों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव देश की एकता, अखण्डता और प्रगति की राह में बाधक है। डा0 राधाकृष्णन ने कहा हम ऊँचे आदर्शों की बात करते हैं किन्तु व्यवहारिक रूप से हम उन आदर्शों के विपरीताचरण करते हैं। भारत दुनिया की शोषित मानवता के उद्धार की बात करता है किन्तु अपने देश में ही पहली विषमता की ओर ध्यान नहीं देता है। हमें देश में भेदभाव से रहित समाज के निर्माण की आवश्यकता है।[2]

डॉ0 देशमुख ने कहा जिस प्रकार स्वतंत्र भारत में जमींदारी प्रथा का अन्त शान्तिमय ढंग से हुआ और एक क्रान्ति हो गयी उसी प्रकार परगणित जातियों जनजातियों तथा अन्य पिछड़ी जातियों का उत्थान का कार्य शान्तिमय ढंगसे होना चाहिये। अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों को सामाजिक एवं आर्थिक सुधार के लिए उन्हें सरकारी नौकरियों में विशेष सुविधाओं के अलावा उन्हें छात्रवृत्ति की मदद करनी चाहिये।[3]

सम्मेलन को सम्बोधित करते हुये डॉ0 देशमुख ने कहा था कि पिछड़ा वर्ग आन्दोलन भारत के विकास के क्रम

---

2. आर.एल. चन्दापुरी– ''भारत में ब्राह्मणराज और पिछड़ावर्ग आन्दोलन, पृ0 सं0 120, चन्दापुरीमिशन प्रकाशन, पटना, बिहार।

3. वही, पृष्ठ संख्या 120

में एक ऐतिहासिक कड़ी है। पिछड़ी जातियों में जागृति उत्पन्न करने और उन्हें शिक्षित करने के कार्य में सभी वर्ग के लोगों को सहयोग प्रदान करना चाहिये। लोकतंत्र को मजबूत बनाना चाहिये। सम्मेलन के अन्त में एक प्रस्ताव पारित कर पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति पर सरकार को बधाई दी गई और देश की पिछड़ी जातियों से अनुरोध किया गया कि वे उसे सहयोग प्रदान करें।

सन् 1955 में पिछड़ा वर्ग आयोग की रपट और उसकी अनुशंसायें राष्ट्रपति को सुपुर्द कर दी गई। दो वर्षों की कड़ी मेहनत और सारे देश के भ्रमण के बाद आयोग ने रपट तैयार की। आयोग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अन्य पिछड़ी जातियों क़ी एक केन्द्रीय सूची तैयार करना था जिसके आधार पर आयोग की सिफारिशों के अनुसार उनके कल्याण और उत्थान का कार्य प्रशस्त किया जा सकता था। अन्य पिछड़ी जातियों की एक केन्द्रीय सूची तैयार करना था जिसके आधार पर आयोग की सिफारिशों के अनुसार उनके कल्याण और उत्थान का कार्य प्रशस्त किया जा सकता था।[4]

डॉ0 अम्बेडकर ने कहा था कि पिछड़े वर्ग अन्य पिछड़ी जातियों का एक समूह है। इसके अतिरिक्त कुछ

---

4. वही, पृष्ठ सं0 130

दूसरी चीज नहीं है। आयोग के सामने वही सूची उपलब्ध थी जो सन् 1949 में विभिन्न राज्यों ने तैयार की थी जिसके आधार पर अन्य पिछड़ी जातियों के छात्रों को केन्द्र सरकार की ओर से छात्रवृत्ति प्रदान की जाती थी। इसके अलावा मद्रास प्रदेश में पिछड़ी जातियों की एक सूची थी जिसके अनुसार उन्हें सरकारी नौकरियों तथा छात्रों को दाखिला में आरक्षण प्राप्त था।

कालेलकर आयोग ने पिछड़ी जातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक तथा प्रशासनिक कल्याण तथा उनके हित में अनेक प्रकार की अनुसंशायें कीं। उसने ग्रामीण जीवन में महत्वपूर्ण बदलाव और व्यवस्था में परिवर्तन के सुझाव दिये। जमीन के पुनः वितरण, किसानों की रक्षा, छोटे किसानों को कर्ज तथा खेती सम्बन्धी सिंचाई के लिए सुझाव दिये। उसने अन्य पिछड़ी जातियों के कल्याण एवं उनकी देखभाल के लिए सरकार को अलग मंत्रालय को खोले जाने की अनुसंशायें कीं। आयोग अन्य पिछड़ी जातियों के लिये सरकारी नौकरियों के वर्ग एक में 25 प्रतिशत, दो में 35 प्रतिशत, वर्ग तीन व चार में 40 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने की सिफारिश की गयी। टेक्नीकल एवं मेडीकल कॉलेज में दाखिला के लिये 50 प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखने की सिफारिश की।

पंडित नेहरू ने तत्काल परिस्थितियों में दलित,

शोषित एवं पिछड़ी जातियों में आती हुई जाति से उन्हें दिग्भ्रमित करने के लिये भूदान आन्दोलन प्रारम्भ कराया फिर उसकी शुरूआत संगठित रूप से बिहार के गया जिले से की गयी थी। भूदान आन्दोलन को सभी ब्राह्मणवादी दलों और उनके नेताओं ने समर्थन दिया था। महात्मा गांधी के शिष्य आचार्य विनोवा भावे को विष्णु के अवतार के रूप में भूदान आन्दोलन का प्रवर्तक बनाया था। नेहरू भक्त श्री जयप्रकाश नारायण उनके प्रथम शिष्य थे। भूदान में सम्पत्ति दान, बुद्धि दान, ज्ञान दान, श्रमदान को सम्मिलित किया था। उनका यह भी मानना है कि– भूदान यज्ञ कोई आन्दोलन नहीं था। वह सरकार पूँजीपति सामन्तवाद और ब्राह्मणी व्यवस्था के बचाव के लिये पंडित नेहरू के दिमाग की उपज थी।[5]

यह कैसा मजाक था कि जय प्रकाश नारायण ने एक बार ग्रामदान, प्रखंडदान, जिलादान और राज्य दान से लेकर सारा भूमंडल ही आचार्य विनोवा भावे के चरणों में अर्पित कर दिया था। वास्तव में वहाँ न कुछ दान देने की वस्तु थी और न कुछ दान दिया गया था। यह केवल ब्राह्मणवाद का पाखण्ड था जिसमें आंधी और तूफान में जनता को बेहोश कर दिया गया था। उस समय कुछ काल के लिये पिछड़ी जातियों

---

5. वही, पृष्ठ सं0 135

का आन्दोलन भ्रमजाल में पड़ गया था जैसे ही जनता होश में आई न वहाँ आंधी थी और जोर की हवा थी। भूदान आन्दोलन अपने आश्रम में चले गये।[6]

मंडल आयोग के पहले बने हुये विभिन्न आयोगों की रूपरेखा और पृष्ठभूमि मंडल आयोग से भिन्न थी। काका कालेलकर आयोग और मंडल आयोग में बहुत सी भिन्नतायें थीं। काका कालेलकर आयोग बनने पर भारतीय समाज में किसी प्रकार की चहल कदमी नहीं हुई थी परन्तु मंडल आयोग ने सारे भारत वर्ष में आम जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया था। सामाजिक न्याय की कल्पना इस देश के लिये ही नहीं सारे विश्व में नई है। हमारे देश में कालेज, विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्रायें प्राध्यापकों ने भी सामाजिक न्याय को नहीं समझा। यहां तक की हाईकोर्ट के जजों को भी इसको समझने में दिक्कत आयी। काका कालेलकर आयोग में जटिलतायें कम थीं परन्तु मंडल आयोग में 70 के दशक में मूलभूत अधिकारों और निदेशक सिद्धान्तों को लेकर भारी वाद विवाद चला और इसी का परिणाम है किसी भी देश के नागरिकों को तीन तरह के अधिकार होते हैं। 1. नागरिक अधिकार जैसे- कानून की नजर में बराबरी 2. राजनैतिक अधिकार जैसे- वयस्क मताधिकार

---

6. वही, पृष्ठ सं0 135

3. सामाजिक अधिकार जैसे– सामाजिक, सांस्कृतिक बराबरी और सत्ता में बराबरी के आधार पर साझेदारी का अधिकार।

कुछ लोग जाति के आधार पर आरक्षण का विरोध करते हैं और आर्थिक आधार की बात करते है, किन्तु आर्थिक आधार पर आरक्षणों की कोई योजना आज तक पेश नहीं की जा सकी है। आर्थिक आधार की बात कुछ लोग संविधान निर्माण की बात करते रहे हैं। मंडल आयोग से पहले जवाहर लाल नेहरू उसके बाद राजीव गांधी इसके अलावा बहुत सी राजनीतिक पार्टियों के नेता जैसे भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी इत्यादि।

मंडल आयोग जाति के आधार पर आरक्षण चाहता है न कि अर्थ के आधार पर। कुल लोगों का मानना रहा है कि जाति के आधार पर आरक्षण से जाति वाद को बढ़ावा मिलेगा। जबकि दूसरे लोगों का कहना था कि लगभग 10 हजार जातियों का चार व पांच श्रेणियों में समूहकरण होगा तो कालान्तर में लोगों की निष्ठा जाति के संकीर्ण समूह से हटकर व्यापक समूह में बनेगी और जातियों के बंधन टूटने लगेंगे। विश्व में जाति प्रथा के टूटने का यही क्रम रहा है। यूरोप के लोग जब अमेरिका जा बसे तो जाति–समूह–नस्ल समूहों में विलीन हुये और जाति प्रथा टूटी। इससे यह बात

भी सिद्ध होती है कि वर्ग निर्माण की प्रक्रिया जब तेज होती है तब जातियां टूटती हैं।

कालेलकर आयोग ने आरक्षण का आधार समूहीकरण नहीं माना था जबकि मंडल आयोग का आधार समूहीकरण है। वस्तुतः मंडल आयोग ने सारे शिक्षित समाज राजनीतिक दलों, श्रमिक और छात्र संगठनों का आरक्षण आधारित सामाजिक न्याय के पक्ष और विरोध में ध्रुवीकरण किया।

अरुण शौरी ने मंडल आयोग के सम्बन्ध में कहा था कि मंडल आयोग ने पिछड़ी जाति का वर्गीकरण किया है जबकि कालेलकर आयोग ने नहीं, तो उनकी यह समझ का ही कसूर है। मंडल आयोग ने तो शुरू में ही ग्यारह आधार गिनाये। जिनको के समाज शास्त्रियों ने, न्यायविदों ने माना है। उन्होंने 1931 की जनगणना को आधार सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया क्यों कि उसके बाद जातियों के आंकड़े जनगणना में इकट्ठा करने का काम नहीं हुआ। मंडल आयोग को जिसने डेढ़ साल में लगभग 1200 पृष्ठों की रिपोर्ट देकर कमीशनों के कार्य के इतिहास में कीर्तिमान स्थापित किया। कालेलकर ऐसे गांधीवादी थे जिन्होंने अपनी अध्यक्षता में काम करने वाली समिति की रिपोर्ट को हस्ताक्षर करने के बाद 'तारपीडो' किया। यह बहुत जलील काम था। जो सम्भवतः

जवाहरलाल नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं के कहने पर करना पड़ा।

अरुण शौरि ने काका कालेलकर की बातों को भी तोड़ मरोड़ कर पेश किया है। राष्ट्रपति को भेजे गये पत्र में काका कालेलकर ने निम्नलिखित तर्क दिये थे जो मंडल आयोग से बिल्कुल भिन्न थे। (1) पिछड़ी जातियां यदि पिछड़ी रहीं तो यह कसूर पिछड़ी जातियों का है जिन्होंने शिक्षा का महत्व नहीं समझा और जिन्होंने अतीत में मूर्खतावश शिक्षा की उपेक्षा की। (2) सरकारी नौकरियों में आरक्षण गलत है क्योंकि सरकारी नौकरिया नौकरी के लिये नहीं समाज सेवा के लिये होती हैं। यदि पिछड़ी जातियां प्रशासन की दया दृष्टि पर भरोसा रखे तो उन्हें आर्थिक लाभ हो सकता है। (3) जाति के आधार पर पिछड़ेपन की शिनाख्त करने पर जाति व्यवस्था स्थायी तौर पर बनी रहेगी और सुविधायें उन जातियों के कुछ लोगों को मिलेगी असली जरूरतमंदों तक सुविधायें नहीं पहुंचेंगी। (4) यह तर्क आज तक सवर्ण जातियों के बुद्धि जीवियों द्वारा दिया जा रहा है कि वास्तव में वे चाहते हैं कि जातियों के संदर्भ में कोई बात न हो जाति का नाम ही नहीं लिया जाये क्योंकि इससे उनके द्वारा की जा रही जातिवादी लूट पर पर्दा पड़ता है। पिछड़ी जातियों के असली जरूरतमंदों के लिये घड़ियाली

आंसू बहानेके पीछे भी उनकी असली नियत साफ है क्योंकि यदि उनसे कहा जाये 30 प्रतिशत गैर आरक्षित पदों को अपनी जातियों के असली जरूरतमंदों के लिये छोड़ दें तो उसके लिये से कभी तैयार नहीं होंगे।

अरुण शौरी और उनके जैसे लोगों को सम्भल जाना चाहिये कि आरक्षण व्यवस्था विश्व के कई देशों में कहीं रिवर्स डिस्क्रिमिनेशन कहीं प्रोवेंशियल ट्रीटमेंट और कहीं और नाम से अपनाया जा रहा है। ऐतिहासिक कारणों से बाधक लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये ही नहीं, उनके कुचले हुये गर्व को बहाल करने के लिये यह व्यवस्था अपनायी गई है। गर्व से जीने की अनिवार्य शर्त है और किसी के गर्व को कुचलना, उसकी हत्या करने से भी बड़ा अपराध है। अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़े वर्गों जिन्हें इतिहास में शूद्र कहा गया, के गर्व को शास्त्र और शस्त्र बल से कुचला गया है। उनके गर्व को वहाल किये बिना हमारा समाज स्वतंत्रता समता जैसे मूल्यों को कैसे साकार कर सकता है। मंडल आयोग ने इस बुराई को दूर करने के लिये अपनी विभिन्न प्रकार की सिफारिशें दीं जो मंडल आयोग से पहले बनाये गये आयोग थे जैसे– काका कालेलकर आयोग, भूदान आन्दोलन, सोशलिस्ट पार्टी का आन्दोलन उनके द्वारा कोई विशेष

उपलब्धियां प्राप्त नहीं हुई। इन कमियों को दूर करने के लिये मंडल आयोग ने विभिन्न प्रकार की अपनी सिफारिशें दीं।

आरक्षण की समस्या यह नहीं है यह समस्या जड़ताओं से निकलकर समाज को आगे ले जाने की है। जिसके अधीन मानव आदम व्यवस्था से चलकर आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था तक पहुंचा। यह तमसो माँ ज्योतिर्गमय, की प्रक्रिया है। मंडल आयोग भी लोगों को अन्धकार से प्रकाश की ओर, छांव से धूप की ओर कायरता से वीरता की ओर, पतन से उत्थान की ओर, मैदान से पर्वत की ओर ले जाने का प्रयास करेगा। राज की कल्पना पहले एक व्यक्ति की जागीर के रूप में होती थी फिर एक सम्भ्रान्त तबके की जागीर के रूप में होने लगी। अब समाज के सभी तबक़ों की जिम्मेदारी की तरफ सभ्य समाज बढ़ रहा है। सामाजिक न्याय की लहर है और सामाजिक न्याय हमारे संविधान का पहला शब्द है।

काका कालेलकर और मंडल आयोग ने भारतीय समाज को चुनौती और कसौटी पर लाकर खड़ा कर दिया क्योंकि इन दोनों आयोगों से भारतीय समाज के पिछड़े और दलित वर्गों में जागरुकता की झलकियाँ और रश्मियों के संकेत दिखलाई पड़ते है जबकि दोनों आयोगों की पृष्ठभूमि, विचारधारायें और आधारभूत सिद्धान्त अलग–अलग हैं। मंडल

आयोग ने सारे भारत वर्ष के विभिन्न राज्यों में तहलका पैदा कर दिया था। इस आयोग को समाप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्र और छात्राओं ने आत्मदाह किया। मध्य प्रदेश के ग्वालियर सम्भाग के जिला भिण्ड में एक स्नातक छात्र ने आत्मदाह किया था तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रांगण में सवाई माधौपुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के छात्र ने भी आत्मदाह किया। काका कालेलकर के समय इस प्रकार की कोई अमानवीय और दर्दनाक घटनायें नहीं हुई थीं जिस प्रकार से कि मंडल आयोग के समय हुई।

मंडल आयोग की सिफारिशों में कई न्यायविदों, समाजशास्त्रियों और राजनैतिक चिन्तकों ने जो बड़ी त्रुटि देखी है कि इसमें पिछड़े वर्गों के समूह में शक्तिशाली किसान जातियों तथा कमजोर भूमिहीन कारीगर जातियों को एक कोष्ठक में रख दिया है। जिसके कारण कमजोर जातियों के शक्तिशाली जातियों के द्वारा शोषण का खतरा है। कर्पूरी ठाकुर फार्मूले में स्थिति को दूर करने का प्रयास हुआ है। अतः मंडल आयोग द्वारा सुझाये गये चार समूह के स्थान पर पांच समूह बनाये जाना चाहिये। जैसे– 1. द्विज जातियां 2. भूस्वामी किसान जातियां जिसके पास निश्चित मात्रा में अधिक भूमि हो। 3. भूमिहीन मजदूर कारीगर जातियां 4. अनुसूचित जातियां 5. अनुसूचित

जनजातियां।

मंडल आयोग की सिफारिशें भारतीय समाज को हजारों साल जड़ बनाये रखने वाली व्यवस्था को बदलने का औजार है। यदि हम इन पर आम सहमति बनाकर लागू कर सकते हैं तो हमारे लिये देश की अन्य बड़ी समस्याओं को हल करना भी मुश्किल नहीं होगा।[7]

---

7. मस्तराम कपूर– मंडल रिपोर्ट वर्णव्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर, पृष्ठ सं0 55, सारांश प्रकाशन प्रा0 लि0 13, दरियागंज, नई दिल्ली।

# अध्याय - अष्टम्

## उपसंहार

भारत में समता के मूल्य का सर्वाधिक महत्व है। इसका कारण है– यहां की सदियों पुरानी सामाजिक व्यवस्था, जिसमें समाज के लगभग 90 प्रतिशत सदस्यों को न केवल सदियों तक शिक्षा, सत्ता और आर्थिक साधनों से वंचित रखा गया, बल्कि इकतरफा कानून बनाकर उनके गर्व को भी कुचला गया।

गर्व, स्वतंत्रता का अनिवार्य तत्व है। इसलिये पराधीन जाति में स्वतंत्रता की पहली ललक खोये हुये गर्व को प्राप्त करने में व्यक्त होती है। समता, शोषित–दलित वर्गों को उनका खोया हुआ गर्व लौटाने वाला मूल्य है। इस प्रकार स्वतंत्रता और समता एक ही सिक्के के दो पहलू है। ऊँच–नीच की श्रेणियों में बंधा हुआ आदमी कभी स्वतंत्रचेता नहीं हो सकता, इसीलिये हमारे यहाँ सन्यास के लिये समदृष्टि को प्राप्त करना अनिवार्य माना जाता है।

संविधान में भारतीय मनीषा के इन सुपरिचित मूल्यों का समष्टि के स्तर पर प्रयोग हुआ है। दार्शनिक पृष्ठभूमि के कारण इस सुन्दर प्रयोग की सफलता के लिये भारत सर्वश्रेष्ठ भूमि है। तथापि इस दिशा में हमारी उपलब्धि नगण्य

ही नहीं, नकारात्मक भी रही है।

समाज के स्तर पर इन मूल्यों का प्रयोग हमारे यहां 19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ, जब स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और महात्मा फुले जैसे समाज–सुधारकों के प्रयास से नव–जागरण की लहर चली। यहऐसा युग था, जब स्वतंत्रता की पहली शर्त, राष्ट्र के खोये हुये गर्व को प्राप्त करने और समाज के उपेक्षित वर्ग के गर्व को बहाल करने की कोशिश साहित्य और संस्कृति के स्तर पर व्यापक पैमाने पर हुई। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना और 1887 में सोशल कॉन्फ्रेंस की स्थापना से स्वतंत्रता और समता के लिए दो अलग मंच बने। कुछ समय तक इन दोनों मंचों के बीच अच्छा ताल–मेल बना रहा। कांग्रेस के अधिकांश नेता सोशल कांफ्रेंस के भी नेता होते थे। कुछ समय बाद कांग्रेस में ऐसा गुट प्रबल होने लगा, जो समता के आन्दोलन के प्रतीत असहिष्णु था। इस गुट के नेता बाल गंगाधर तिलक थे। यह गुट न केवल सोशल कांफ्रेंस को कांग्रेस से अलग रखने के पक्ष में था, बल्कि कांग्रेस के पूना अधिवेशन के समय उसने पंडाल को जला देने की धमकी भी दी ताकि सोशल कांफ्रेंस वहां अपना अधिवेशन न कर सके। इस गुट ने रानडे और गोखले जैसे नेताओं के खिलाफ, जो स्वतंत्रता के साथ–साथ

समता को भी लेकर चलना चाहते थे, एक तरह का जेहाद छेड़ दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में इस गुट को 'गरम दल' का और रानडे–गोखले गुट को 'नरम दल' का नाम दिया गया। गरम दल ने स्वतंत्रता के आन्दोलन में कुछ गरमी जरूर पैदा की लेकिन समता के आन्दोलन का कई स्तरों पर विरोध भी किया। उसने भारत के बहुसंख्यक दलित वर्गों की आकांक्षाओं को नजरअंदाज किया और स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, बाल–अविवाहित आदि सुधारों का भी विरोध किया। एक तरह से यह 19वीं शताब्दी के समाज सुधारों की लहर का बैकलैश था।

जब कांग्रेस पर गरमदलियों का कब्जा हो गया तो हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन लंगड़ा हो गया, इस दृष्टि से कि यह कुछ ऊँची जातियों के शिक्षित तबके का आन्दोलन बन गया और दलित वर्ग इससे कट गया। आगे चलकर महात्मा गांधी और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने इस कमी को पूरा करने की कोशिश की।

महात्मा गांधी स्वतंत्रता के मूल्य के सम्भवतः सबसे अच्छे प्रवक्ता थे। उन्होंने स्वतंत्रता का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह सारे विश्व के लिये अनुकरणीय बना। न केवल अमरीका की अश्वेत जातियों ने महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को

अपनाया, बल्कि दूसरे विश्व युद्ध के दौरान जर्मन सेनाओं का विरोध करने वाले फ्रान्स के अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने भी इसे अपनाया। स्वतंत्रता के लिये सत्याग्रह (रिजिस्टेंट), असहयोग, सिविल नाफरमानी और 'करो या मरो' के क्रमिक चरणों का विकास महात्मा गांधी की मानव जाति को अप्रतिम देन है।

किन्तु महात्मा गांधी में समता की कल्पना स्पष्ट नहीं थी। सम्भवतः इसका कारण था कि सवर्ण जाति में पैदा होने के कारण उन्होंने कभी जातीय तिरस्कार की यातना नहीं भोगी थी। यह यातना भोगी डॉ0 अम्बेडकर ने जो राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वतंत्रता के साथ समता के तत्व को जोड़ने वाले सबसे प्रखर नेता हुये। डॉ0 अम्बेडकर ने 1916 में अमरीका के ए0ए0 गोल्डन विजर द्वारा आयोजित नृतत्व विज्ञान विषयक गोष्ठी में जाति के उद्गम के विषय में अपना पहला निबन्ध पढ़ा था। पच्चीस वर्ष की अवस्था में लिखा गया यह निबन्ध इतना प्रौढ़ था कि विश्व के प्रसिद्ध समाज–शास्त्रियों ने इसकी प्रशंसा की। इसके बाद 1936 में आर्य समाज के जात–पांत तोड़क मंडल की तरफ से उन्हें लाहौर में अध्यक्षीय भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया। लेकिन यह कार्यक्रम अन्तिम समय में रद्द कर दिया गया, क्योंकि आर्य समाज के तत्कालीन नेता अम्बेडकर के कुछ विचारों से सहमत नहीं हुये। बाद में उनका यह भाषण

''जाति संस्था का उन्मूलन'' शीर्षक से छपा। यह पुस्तक भारतीय समाज की जातीय असमता का अद्‌भुत दस्तावेज है। इस पुस्तक को श्री मधुलिमये ने भारतीयों के लिये कम्युनिष्ट मैनिफैस्टो से भी अधिक महत्वपूर्ण कहा है।

अब तक हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन पर जो भी इतिहास पुस्तकें लिखी ग़ई हैं, वे भावनाओं में बह कर लिखी गई हैं। इसीलिए, इनमें गरमदलियों को, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को संकीर्ण बनाया, नरमदलियों से बड़ा देशभक्त कहा गया और डॉ0 अम्बेडकर जैसे नेताओं को, जिन्होंने स्वतंत्रता के साथ समता के मूल्य को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की, स्वतंत्रता आन्दोलन का विरोधी कहा गया। किन्तु सच बात यह है कि वे स्वतंत्रता आन्दोलन के विरोधी नहीं थे। उनका कहना इतना ही था कि समता के बिना स्वतंत्रता बेमानी है। उन्होंने भारत को आजादी दिये जाने का कभी विरोध नहीं किया। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में उनका भाषण इसका प्रमाण है, जिसमें उन्होंने कहा था कि दलित अपना अधिकार स्वतंत्र देश में ही प्राप्त कर सकते हैं और जिस भाषण से अंग्रेज अधिकारी बहुत परेशान हुये थे।

लेकिन उनका आग्रह था कि दलितों को सवर्ण जातियों के रहम पर न छोड़ा जाय। उनकी अकाट्य युक्तियों

का उत्तर न कांग्रेस के पास था और न अंग्रेज अधिकारियों के पास। उधर, अंग्रेज अधिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन में तोड़–फोड़ करने की चालें चल रहे थे। उन्होंने अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल के सिद्धान्त को पहले ही स्वीकार कर लिया था। कम्युनल अवार्ड में उन्होंने दलितों के लिए भी पृथक निर्वाचक मंडल को स्वीकार कर लिया। महात्मा गांधी ने पूना जेल में दलितों को पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार दिये जाने के विरोध में आमरण अनशन किया और जब उनकी हालत खराब हो गई तो डॉ0 अम्बेडकर ने पूना समझौते पर हस्ताक्षर करके पृथक निर्वाचक मंडल की मांग को छोड़ दिया और उसके बदले में कांग्रेस के नेतृत्व ने संयुक्त निर्वाचक मंडल के साथ आरक्षण की व्यवस्था को राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार कर लिया। यह समझौता स्वतंत्रता आन्दोलन को स्वतंत्रता और समता दोनों मूल्यों से पूरित करने वाला ऐतिहासिक समझौता था। अगर यह समझौता न होता तो भारत का विभाजन दो हिस्सों में न होकर तीन हिस्सों में होता और भारत का आकार आज से आधा होता। पृथक निर्वाचक मंडल की परिणति पृथक राष्ट्र में होती है। भारत का विभाजन जिस द्विराष्ट्र सिद्धांत पर हुआ, उसकी बुनियाद मुसलमानों को दिये गये पृथक निर्वाचक मंडल के अधिकार में थी।

महात्मा गांधी और डॉ0 अम्बेडकर के वैचारिक आदान—प्रदान ने महात्मा गांधी की समता विषयक मान्यताओं में आमूल परिवर्तन किया। किन्तु कांग्रेस के अधिकांश नेता इस मूल्य को आत्मसात नहीं कर पाये। इनमें कुछ तो पुरातन पंथी थे, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने पूना समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद आयोजित सम्मिलित भोज में शामिल होने का प्रायश्चित गंगाजल पीकर किया था। कुछ ऐसे नेता थे जिन पर मार्क्सवाद हावी था और जो जाति के तत्व को स्वीकार ही नहीं करते थे और मानते थे कि आर्थिक कारण ही सारी असमानताओं के मूल में है।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस के नेतृत्व ने समता के उद्देश्य से अपनाई गई आरक्षण नीति को गांधी जी के प्रभाव के कारण मान तो लिया, किन्तु उनका इन नीतियों के प्रति शाब्दिक लगाव ही रहा। सम्भवतः इसीलिये संविधान में समता के प्रावधान को मूलभूत अधिकारों के अध्याय में नहीं रखा गया। समयाभाव के कारण कुछ अत्यन्त पिछड़ी जातियों की शिनाख्त करने तथा उनके लिए आरक्षण निश्चित करने का काम पृथक आयोग को सौंपा गया। यह आयोग सर्वप्रथम काका कालेलकर कमेटी के रूप में बना। किन्तु इस कमेटी की सिफारिशों को कांग्रेस के नेतृत्व ने रद्दी की

टोकरी में डाल दिया। फिर जनता सरकार टूट गई और कांग्रेस सरकार आ गई तथा यह काम रुक गया।

संविधान में की गई आरक्षण की व्यवस्था को न कांग्रेस चाहती है और न अन्य दक्षिणपंथी तथा वामपंथी पार्टियां। मध्यमार्गी पार्टियों में भी इसे मानने वाले वे लोग हैं जो कभी डॉ0 लोहिया की समाजवादी पार्टी से जुड़े थे। कांग्रेस के नेताओं में शुरू से ही इस नीति के बारे में भ्रामक धारणायें रहीं। संविधान में आरक्षण के लिए सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन की कसौटी के स्पष्ट उल्लेख के बावजूद जवाहरलाल जैसे बड़े नेता आर्थिक कसौटी की बात करते रहे। काका कालेलकर कमेटी की सिफारिशों को रद्द करते समय उन्होंने आर्थिक कसौटी की बात की थी। उनके उत्तराधिकारी तो किसी भी वैचारिक झंझट से मुक्त रहे। वे अनुसूचित जातियों और जन–जातियों के वोटों को जेब में रखने के लिये आरक्षण का समय 10–10 साल के लिये बढ़ाते रहे। जब भी उन्हें लगेगा कि इन जातियों के वोट उनकी झोली में नहीं जाने वाले हैं वे आरक्षणों को खत्म कर देंगे। दक्षिणपंथी पार्टियां आरक्षण का शुरू से ही विरोध करती रहीं क्योंकि ये सवर्ण जातियों की पार्टियां हैं और समता का नाम ही उनके लिये सांड़ को भड़काने वाला लाल कपड़ा है। वामपंथी पार्टियां आर्थिक कारणों

के अलावा और कोई और कारण समाज के विग्रहों का मानती ही नहीं।

डॉ0 अम्बेडकर के बाद डॉ0 लोहिया ने समता के दर्शन का बहुत विश्वसनीय ढंग से प्रतिपादन किया। समान अवसरों के लिये विशेष अवसर का सिद्धान्त रखकर उन्होंने अनुसूचित जातियो, जन–जातियों, पिछड़े वर्गों और स्त्रियों के लिये 60 प्रतिशत आरक्षण देने की बात कही। डॉ0 लोहिया का कहना था कि पिछड़ों को पहले अवसर दो योग्यता बाद में आ जायेगी। पहले योग्य बनाकर फिर अवसर देने की बात करना धूर्तता है। यह अवसर न देने की साजिश है।

इस समय आरक्षण के सम्बन्ध में बहुत सी भ्रान्त धारणायें लोगों में बनी हुई हैं। इनमें कुछ तो मूर्खतापूर्ण और बचकानी हैं, कुछ चालाकी भरी और कुछ अधूरी सोच से पैदा हुई। आरक्षण के लिये आर्थिक कसौटी का नारा उछालने वालों और योग्यता की दुहाई देने वालों के तर्क में दम नहीं है। कारण यह कि यह व्यवस्था आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये नहीं की गई बल्कि कुचले हुये गर्व को बहाल करने और सामाजिक–सांस्कृतिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिये की गई। जहां तक योग्यता की दुहाई देने वालों का सवाल है उनसे पूछा जा सकात है कि सरकारी सेवाओं में कार्य–कुशलता के

ह्रास की जिम्मेदारी न्यून प्रतिशत पर आती है (आरक्षित कोटे में लगभग 5 प्रतिशत पद श्रेणी एक में अब तक भरे गये हैं) या बहुसंख्यक प्रतिशत पर? इसके अलावा यह भी पूछा जा सकता है कि योग्यता की कसौटी क्या है? जाति–व्यवस्था के कारण कुछ लोगों को सदियों से जो विशेषाधिकार मिले हैं, क्या उसे योग्यता कहा जा सकता है? चालाकी भरे तर्क वे लोग देते हैं जो कहते हैं कि आरक्षण से जिन लोगों को एक पीढ़ी तक लाभ मिल चुका है, उन्हें इसकी सुविधा न दी जाय, ताकि उनके और भाइयों को यह सुविधा मिल सके। ऐसा लगता है कि ये लोग पिछड़े गरीबों की स्थिति से द्रवित होकर यह बात कह रहे हैं। किन्तु वास्तव में उनका इरादा यह होता है कि उससे आरक्षित वर्ग में अन्तर्कलह को भड़का कर अपना उल्लू सीधा कर सकें। अधूरी सोच वाले लोग आरक्षण की व्यवस्था को समझ ही नहीं पाते। वे सोचते हैं कि हमारे देश में ही यह अजीब व्यवस्था है, अन्य लोकतांत्रिक देशों में यह नहीं है।

लेकिन वस्तु–स्थिति यह है कि विश्व में शायद ही कोई देश हो जिसमें समता की यह प्रक्रिया किसी न किसी रूप में न अपनाई गई हो। सब देशों में किसी न किसी प्रकार की विषमतायें हैं और उन्हें दूर करने के प्रयास वहाँ किये गये हैं। कहीं विषमतायें नस्ल के कारण हैं, कहीं धर्म, भाषा,

भौगोलिक स्थिति या संस्कृति के कारण। अमरीका, अफ्रीका, यूरोप, एशिया में कोई भी देश विषमता की समस्या से मुक्त नहीं है। भारत की स्थिति इस रूप में भिन्न है कि यहाँ धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि की विषमताओं के साथ–साथ जाति व्यवस्था की विषमता भी है और जो समूह धर्म, भाषा आदि की दृष्टि से एक है, उनमें भी भयंकर जातिगत विग्रह है।

भारत की जातिगत विषमता की तुलना कुछ हद तक अमरीका की नस्लगत विषमता से की जा सकती है। वहां भी जब अश्वेत जातियों की ओर से समान अवसरों की मांग उठी तो जॉन्सन प्रशासन ने एफर्मेटिव एक्शन (सकारात्मक कार्यक्रम) नाम से एक योजना चलाई, जिसमें अश्वेत लोगों को बराबरी के स्तर पर लाने के लिए प्रतिपूरक व्यवस्थायें की गईं। जॉन रॉल्स ने अपनी पुस्तक "थियोरी ऑफ जस्टिस" में लिखा है: *"वंशानुगत सुविधा और यहां तक कि प्राकृतिक योग्यता भी विशेषाधिकारों का मनमाना तरीका है और कोई भी सामाजिक नीति तभी न्यायपूर्ण हो सकती है, जब सुविधा–वंचित वर्गों को विशेष प्राथमिकतायें दी जायें।"* इस विचार के अनुसार अब सुविधा–वंचित वर्गों को विशेष अवसर देने का सिद्धान्त कई देशों में लोकप्रिय हुआ है और इसे भिन्न–भिन्न नाम दिये गये हैं, जैसे– सकारात्मक कदम, सकारात्मक भेद, विपरीत पक्षपात,

तरजीही नियुक्तियां आदि। समाजशास्त्री जॉन पोर्टन ने कनाडा के सम्बन्ध में अपने एक लेख में लिखा है: "सारे श्रेणीबद्ध ढांचे में अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के लिये कोटा प्रणाली का विकास अमरीका में कनाडा से कहीं ज्यादा हुआ है।"

इस तरजीही व्यवस्था से जिन लोगों को नुकसान होता है, उनमें जलन भी पैदा होती है जैसे हमारे यहां सवर्ण जातियों में दिखाई देती है। जॉन पोर्टन ने उक्त लेख में एक जगह लिखा: "कनाडा में अंग्रेजी भाषी कर्मचारी फ्रेन्च भाषी कर्मचारी की तरजीही नियुक्ति या पदोन्नति से उसी तरह जलता है जैसे अमरीका का श्वेत कर्मचारी अश्वेतों के पक्ष में किये गये सकारात्मक पक्षपात से अथवा पुरुष, स्त्रियों के पक्ष में किये गये भेदभाव से जलता है।"

किन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद समतामूलक समाज के निर्माण के लिए अधिकार–वंचित लोगों को विशेष अवसर देने का सिद्धान्त, विभिन्न प्रकार की विषमताओं को दूर करने के उपाय के रूप में सब जगह माना जाने लगा है। यहां तक कि अब लोकतंत्र की परिभाषा ही बदल गई है। अब लोकतंत्र बहुसंख्यक जनता की इच्छा से चलने वाला शासन नहीं, सबकी इच्छा से चलने वाला, सबकी साझेदारी से चलने वाला शासन माना जाता है। इस नई व्यवस्था के निर्माण में

भारत का विशेष योगदान है।

अब आते हैं मंडल आयोग पर जिसका का गठन श्री बिंदेश्वरी प्रसाद मंडल की अध्यक्षता में 20 दिसम्बर,1978 को हुआ था। 21 मार्च,1979 को जनता सरकार के प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई के उद्घाटन भाषण के बाद इसने काम करना शुरू किया और कांग्रेस सरकार की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के समापन भाषण के साथ 12 दिसम्बर, 1980 को इसने अपना काम समाप्त किया। दो खण्डों में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में आयोग ने 3743 जातियों की शिनाख्त करके उन्हें पिछड़ी जातियों में रखा। इन जातियों का कुल जनसंख्या में अनुपात 52 प्रतिशत के लगभग है लेकिन आयोग ने सर्वोच्च न्यायालय के सुझाव के अनुसार आरक्षणों की सीमा 50 प्रतिशत रखने के लिए पिछड़ी जातियों के लिये 27 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की। आयोग ने पिछड़ेपन को निर्धारित करने के लिये जाति व्यवसाय, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, शैक्षिक स्थिति, भौगोलिक स्थिति आदि 11 कसौटियों को अपनाया और इन सबके लिये उसने अलग–अलग भारांक दिये किन्तु जाति की कसौटी को प्राथमिक माना गया क्योंकि आयोग का विचार यह था कि हिन्दू समाज जातियों में बंटा हुआ है और इसमें जाति ही मूल समूह है। रिपोर्ट की एक विशेषता यह कही जा

सकती है कि इसमें न सिर्फ हिन्दुओं के बल्कि मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों आदि के पिछड़े समूहों की शिनाख्त भी की गई और उन्हें पिछड़ी जातियों के कोटे में सुविधायें देने की सिफारिश की। गैर–हिन्दुओं की तादाद 16.16 प्रतिशत आंकी गई और इसमें से 8.4 प्रतिशतको पिछड़ों में शामिल किया गया सवर्ण हिन्दुओं का प्रतिशत 17.58 और उच्च वर्ग के गैर–हिन्दुओं का लगभग 8 आंकलित किया गया। अनुसूचित जातियों और जनजातियों का प्रतिशत 15.05 तथा 7.51 माना गया। संक्षेप में यह रिपोर्ट देश कीसारी आबादी को चार समूहों में विभाजित करने वाली थी जैसे: सवर्ण जातियां, पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां और उनके बीच जनसंख्या के अनुपात में सत्ता और सुविधाओं के वितरण द्वारा समतामूलक समाज के संवैधानिक लक्ष्य की ओर बढ़नेकी सिफारिश इसके केन्द्र में थी।

मंडल आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए हमें इसकी पृष्ठभूमि को जानना होगा। तर्क यह था कि जब हमारा संविधान बन रहा था तो हमारे पास इतना समय नहीं था कि दलित वर्गों में आने वाली सभी जातियों की शिनाख्त की जा सकती और उन्हें सूचीबद्ध किया जाता। जल्दी–जल्दी में केवल अस्पृश्यता की बाधा वाली जातियों की

पहचान की गई और जनजातियों के साथ–साथ उनकी भी एक अनुसूची बनाई गई तथा उनके लिये आरक्षणों की व्यवस्था की गई। अन्य दलित जातियों की पहचान और उनके लिये आरक्षण की व्यवस्था करने के लिये संविधान में एक आयोग बनाने की व्यवस्था की गई। इसके अन्तर्गत पहले 1953 में काका कालेलकर कमेटी बनी और उसने अन्य दलितों (पिछड़े वर्गों) को 70 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की, क्योंकि कमेटी ने पिछड़ों में स्त्रियों को शामिल किया था। इस रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया।

मजे की बात यह रही कि स्वयं काका कालेलकर ने अपनी रिपोर्ट को विवादास्पद बना दिया। काका कालेलकर ने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने के बाद राष्ट्रपति के नाम अपने अग्रेषण–पत्र में निम्नलिखित तर्क दियेः

1. पिछड़ी जातियां यदि पिछड़ी रहीं तो इसमें दोष इन जातियों का ही है क्योंकि इन्होंने शिक्षा के महत्व को नहीं समझा और अतीत में मूर्खतावश शिक्षा की उपेक्षा की। अतः उनका अब सरकारी नौकरियों आदि में विशेष सुविधाओं की मांग करना गलत है।

2. सरकारी नौकरियों में आरक्षण गलत है क्योंकि सरकारी नौकरियां नौकरों के लिये नहीं, समाज–सेवा के लिये होती हैं।

यदि पिछड़ी जातियां प्रशासन की दया–दृष्टि पर ही भरोसा रखें तो उन्हें अधिक लाभ हो सकता है।

3. जाति के आधार पर पिछड़ेपन की शिनाख्त करने से जाति–व्यवस्था स्थायी तौर पर बनी रहेगी और सुविधायें उन जातियों के कुछ लोगों को ही मिलेंगी, असली जरूरतमंदों तक सुविधायें नहीं पहुंचेंगी।

इसके बाद वी.पी. सिंह ने प्रधानमंत्री के तौर पर मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा अगस्त 1990 में करके देश को मंडलीकरण की ओर मोड़ दिया था। 1990 में मंडल लागू कर देने के बाद वी.पी. सिंह शरद यादव और मुलायम सिंह यादव व लालूप्रसाद सामाजिक न्याय के सबसे बडे प्रतीक के रूप में उभरे। दलित नेता राम विलास पासवान के उदय का भी यही वक्त रहा। इस पूरे दौर में मंडलवादी सामाजिक न्याय की वैचारिक कमान शरद यादव के ही हाथ में रही। सामाजिक न्याय का पारा इतने उफान पर था कि प्रगतिशील श्रेणी का शायद ही कोई बुद्धजीवी ऐसा होगा जिसने सामाजिक बदलाव की इस मुहिम का खुलकर समर्थन न किया हो। मंडलवादी सामाजिक न्याय का पूरा सैद्धांतिक आधार ही इस तर्क पर बुना गया था चूंकि पिछड़ी जातियां परम्परागत समाज के चौथे पायदान पर रहीं और एतिहासिक रूप

से उन्हें द्विज सवर्ण जातियों के अत्याचार झेलने पड़े। इसलिए उन्हें दलितों की ही तरह आरक्षण की सुविधा मिलनी चाहिए। इस नारे की एक व्यापक अपील थी लिहाजा पिछड़ी जातियां इसके ओर इसे उछालने वाले नेताओं के पीछे गोलबन्द होना शुरू हो गयी। इसका शुद्धतम रूप उत्तर भारत के दो प्रमुख राज्यों विहार और यू.पी. में देखने को मिला।

लेकिन मंडल लागू हुए एक दशक भी नहीं हुआ कि सामाजिक न्याय के नेतृत्व मे बिखराव आने लगा और उत्तर मंडल राजनीति का परिदृश्य स्पष्ट दिखने लगा। शायद यही कारण है कि सामाजिक न्याय के नेतागण पासवान, मायावती, मुलायम सिंह, शरद यादव, लालू प्रसाद और नीतीश आज एक साथ नहीं हैं। ये सभी पिछड़ी और दलित जातियों के उत्थान की बात तो करते हैं लेकिन उनकी चालें और समूह अलग–अलग हैं। मजे की बात यह है कि आर्थिक नीतियों पर सभी एक हैं, सभी निजीकरण विदेशी निवेश के पक्ष में हैं लेकिन बाजार तो खुली होड़ और गुणवत्ता के सिद्धान्त पर टिका होता है जहां आरक्षण नहीं है। शायद इस अंर्तविरोध की ही मजबूरी है कि अब मायावती सवर्णो की भी बात करने लगीं। नीतीश कुमार ने तो सवर्णों और पिछड़ों को एक साथ लेकर चलने का नारा दे डाला।

मंडल नेतृत्व के विखराव का नतीजा यह हुआ, लालू से शरद, नीतीश और पासवान अलग हो गये। फिर पासवान ने नीतीश और शरद

का साथ छोड़ दिया। मुलायम सिंह यादव पहले ही अलग खेमा बना चुके थे। आज मंडल लागू करने वाले वी.पी. सिंह विल्कुल ही अलग–थलग पड़ गये हैं अब तो मंडलवादी खेमा उन्हें अपने मंचों पर भी बुलाना उचित नही समझता।

बहरहाल एक तरफ मंडल का नेतृत्व बिखर गया तो वहीं परम्परागत रूप से मंडल विरोधी राजनैतिक दलों (कांग्रेस तथा बी.जे.पी) का मंडलीकरण हो गया। यू.पी. मे जब बी.जे.पी. की सरकार बनी तो मुख्यमंत्री कल्याण सिंह बने। मध्यप्रदेश में उमाभारती बनी उमा का रिप्लेसमेंट बाबूलाल गौर के रूप में मिला। जो जन्म से यादव है और गौर के रिप्लेसमेंट में शिवराज सिंह चौहान मिले जो कि किरार जाति के हैं। राजस्थान में बी.जे.पी. ने बसुन्धरा राजे को जाट बहु के रूप में पेश किया। कांग्रेस पार्टी का उत्तर भारत में कुछ खास बचा नही तो लालू के साथ लग गयीं। हरियाणा में उसने हुड्डा का एक जाट के रूप में प्रमोट किया लेकिन इसी बीच एक रोचक बात हुई, राजनैतिक दलों का मंडलीकरण तो हुआ लेकिन सामाजिक न्याय का स्लोगन धीरे–धीरे गायब होने लगा। जो बौद्धिक तबका लालू और मुलायम को सामाजिक न्याय के नाम पर आँख मूंदकर समर्थन दे रहा था। उसने एक दशक के भीतर अपने समर्थन का आधार सेक्युलरिज्म बना लिया। इससे मंडल और सामाजिक न्याय के बीच अंर्तविरोध खड़ा हो गया। सच भी यही है मंडल आंदोलन का निचोड़ यह निकला कि द्विज सवर्ण वर्चस्व को

तोड़कर नव उग्र या अगड़ी पिछड़ी जातियों का वर्चस्व कायम किया जाए। इसीलिए मंडल लागू होने के महज डेढ़ दशक के भीतर ही दलित और अति पिछड़ी जातियों ने खुद को मण्डल से अलग कर लिया।

इसमें कोई शक नहीं है कि भारतीय राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण कारक है, बिना इसे ध्यान में रखे कोई बात नहीं हो सकती । लोहिया भी पिछडी जातियों के उत्थान की बात करते थे, जे.पी. सम्पूर्ण क्रांति के हिमायती थे लेकिन सामाजिक न्याय के नेतागण भूल जाते हैं कि जातियें में भी वर्ग की छायायें हैं। जाति और वर्ग एक दूसरे से बिल्कुल अलग भी नहीं हैं। दोनों के बीच एक द्वंदात्मक रिश्ता भी है ज़िस तरह सवर्ण का पिछड़ी जातियों और अतिपिछड़ी जातियों के बीच भी एक द्वंद है। यहां तक कि पिछड़ी जातियों के भी। इसका कारण यह है, आज पूरी लडाई सत्ता विमर्श की लड़ाई बन गयी है, वह परिवर्तन की लड़ाई नहीं है। एक जाति का अभिजन, दूसरी जाति के अभिजन को हटाकर सत्ता हथियाना चाहता है। बगैर इस बात को समझे मंडलवादी राजनीति के निहितार्थ को नहीं समझा जा सकता।

लेकिन अब धीरे–धीरे निजी क्षेत्र में भी आरक्षण की बात उठने लगी है लेकिन सामाजिक न्याय के प्रणेता राजसत्ता से यह नही पूछते कि रोजगार सृजन की जिम्मेदारी किसकी है? आर्थिक सुधार कार्यक्रम, रोजगार मुहैया करा रहा है या छीन रहा है। क्या यह राजसत्ता की नाकामी नहीं कि वह बेरोजगारी की समस्या दूर नही कर पायी और अब

निजी क्षेत्र में आरक्षण की वकालत करने लगी। दरअसल राजसत्ता को अब लग रहा है कि सरकारी क्षेत्रों में नौकरियां ही नहीं है। वोट बैंक मिटने का खतरा पैदा हो गया है इसलिए निजी क्षेत्र को दुहा जाए। जो लोग परिवर्तनगामी राजनीति में यकीन रखते हैं वे मंडल की आड़ में आरक्षण के खेल का कभी समर्थन नहीं करेंगे। क्योंकि यह तदर्थवाद है, पैबंद है यह रोगी का पूरी तरह उपचार नहीं करता, यह घाव को जितना ठीक करता है उससे अधिक बढ़ाता है।

मण्डल क्रांति की साफ समझ अब भी राजनेताओं में नहीं बनी है वे इसे केवल आरक्षण व्यवस्था तक सीमित मानते हैं जबकि यह आरक्षणों के माध्यम से सामाजिक असंतुलन को समाप्त करने और इस प्रकार जातिगत विषमता को दूर करने का कार्यक्रम है। इसे वर्ण व्यवस्था के खिलाफ युद्ध भी कहा जा सकता है। मण्डल राजनीति के मुख्य शक्ति वर्ण व्यवस्था का विरोध था। जिसमें डॉ. अम्बेडकर और डॉ. लोहिया की उदार लोकतांत्रिक चेतना से युक्त विचारधारा दिशासूचक की तरह कार्य कर रही थी। लेकिन जिन नेताओं पर इसको बढाने की जिम्मेदारी थी, उन्होने अपने लोकतन्त्र विरोधी सामन्ती चरित्र के कारण इसको किसी मुकाम पर नही पहुँचने दिया। अपने आप को डॉ. लोहिया का मानस पुत्र घोषित करने वाले लोग चाहे वह मुलायम सिंह यादव हों या लालूप्रसाद दोनों वंशवाद की विरोध की राजनीति के रूप में पहचाने जाने वाले सोशलिस्टों के आंदोलन क़ो वंशवादी राजनीति से गर्क कर दिया।

आंतरिक लोकतंत्र की जबरदस्त बकालत करने वाले डॉ. लोहिया के इन शिष्यों के दलों में आंतरिक लोकतंत्र की कोई गुंजाइश नहीं है। वर्ण – व्यवस्था के विरोध से शुरूआत कर राजनीतिक शक्ति जुटाने वाले नेता अंत में ज़नेऊ प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा पूरी कर अपने संघर्ष को तिलांजलि देने को अभिशप्त है। मंडल आंदोलन एक ऐसी राजनीतिक कोख से पैदा हुआ था जिसकी पृष्ठभूमि में मूल सुधार कानूनों के विरोध में उपजी प्रतिक्रियाएं थी। पुराने उत्पादन सम्बंधों के चलते प्रतिगामिता ही इसका अनिवार्य परिणाम था। मंडल क्रांति के हश्र ने यह इबारत साफ तौर पर लिख दी है कि उत्पादन संबंधों के बदलने की सशक्त प्रतियोगिता के बिना कोई स्थाई सामाजिक परिवर्तन किया जाना सम्भव नहीं है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भेदभाव पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास नया नहीं है। अंग्रेजी शासन कायम होने के बाद नूतन विचारों का समावेश भारतीय समाज में हुआ जिसके चलते एक नई चेतना पनपी और पददलित जातियों में परम्परागत जकड़बन्दी का जुँआ उतार फेकने के साहस का संचार होने लगा। नतीजतन 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही उल्लेखनीय सामाजिक परिघटनायें सामने आने लगीं। समाज परिर्वतन के आन्दोलन को उसकी तार्किक परिणति तक ले जाने के लिए दो तरह के विकल्प विद्रोहियों और नये विचारकों के मस्तिष्क में रहते थे– या तो विषमता और उत्पीड़न के लिये जिस जाति

व्यवस्था को उत्तरदायी मानते थे उसे पूरी तरह तोड़ देना अथवा सारी वंचित जातियों को गोलबन्द कर प्रभुत्व अपने हाथ में लेकर उन समुदायों को दोयम दर्जे पर खड़ा कर देना जिन्होंने स्वयं श्रेष्ठता का दुरूपयोग उनके दमन के लियें किया था। स्वाधीनता के बाद न सिर्फ केवल राजनीतिक आजादी मिली बल्कि देश के संवैधानिक लोकतंत्र की नयी व्यवस्था कायम की गई जिसकी इकाई जातियाँ न होकर व्यक्ति यानि नागरिक हैं। इस हस्तक्षेप में समाज परिवर्तन के आन्दोलन को उन नये मुकामों तक पहुँचाया जिसकी कल्पना सामाजिक न्याय के प्रस्थान बिन्दु के समय उसके दूर दृष्टा योद्धा तक नहीं कर पाये थे। डॉ0 अम्बेडकर ने सारी अछूत जातियों को अपनी अलग-2 पहचान (बौद्ध) की नई पहचान में तिरोहित करने की कोशिश की लेकिन यह नई पहचान स्वीकार नहीं हो सकी। दूसरी ओर मंडल क्रांति के जनक पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह भारतीय समाज को जातियों का संघ बता कर वास्तविकता के बहुत निकट पहुँचने में सफल रहे। अब लड़ाई जातियों को मिटाने की नहीं लड़ी जा रही है बल्कि जातियों के बीच नये समायोजन को तलाशने के उपक्रम हो रहे हैं। जिससे समसामयिक परिस्थितियों में जाति व्यवस्था की प्रासंगिकता बहाल रह सके। मंडल क्रांति की उथल-पुथल का दौर समाप्त होते ही भारतीय समाज के समुद्र मंथन का एक चक्र पूर्ण हो चुका है अब न कभी पिछड़ा बनाम सवर्ण की लड़ाई है और न कहीं दलित बनाम सवर्ण की। अम्बेडकरवादी

मायावती ''हाथी नहीं गणेश हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश हैं'' का नारा लगाते हुये दलित ब्राह्मण भाईचारे का कोरस गा रही हैं, जो चमत्कार से कम नहीं है। इसे सोशल इंजीनियरिंग का नाम दिया गया। उनका यह प्रयोग काफी सफल भी रहा। परिस्थितियों ने यह साबित कर दिया है कि जाति व्यवस्था भारतीय समाज का मौलिक तत्व है, उसकी अभिन्न पहचान है, यह शायद ही कभी मिट पाये। लेकिन सामाजिक न्याय की जद्दो–जहद की उपलब्धि यह है कि उसने जाति व्यवस्था को परिष्कृत कर उसे ऐसी शक्ल दे दी है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी वह सहज बनती जा रही है।

# परिशिष्ट

परिशिष्ट

**मस्तराम कपूर : साक्षात्कार (24.01.06)**

(वरिष्ठ चिन्तक और मण्डल राजनीति के विशेषज्ञ)

प्रश्न 1 आप पत्रकार के साथ–2 सोशलिस्ट आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से शामिल हुये हैं और "पिछड़ों ने बांधी गांठ, सौ में पावे साठ" जैसे नारों के तहत काम किया है। वी0पी0 सिंह ने जब मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की घोषणा की थी तो आपको कैसा लगा था ?

उत्तर पिछड़ों के लिए लोहियावादी समाजवादियों ने आन्दोलन शुरू किया लेकिन वी0पी0 सिंह कुछ हद तक इस मामले में साफ नहीं थे। राजनैतिक रूप से पिछड़ों के नेता देवीलाल के डर से उन्होंने पिछड़ी जातियों के लिए मण्डल कमीशन की रिपोर्ट आनन–फानन में लागू कर दी। इसको लागू करने के लिए उन पर तीन सदस्यीय खंडपीठ का दबाव भी काम कर रहा था। लोहिया भी हमेशा से इस सम्बन्ध में कोई ठोस और कारगर काम करने के लिये कहते थे। मैने भी मंडल रिपोर्ट अविलम्ब लागू करने के लिए कई पत्र लिखे। लेकिन 10 महीने तक टालमटोल का दौर जारी

रहा। मुझे अच्छा इसलिये लगा क्योंकि इससे पिछड़ों को बड़े पैमाने पर भागीदारी दी जा रही थी।

प्रश्न 2 इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में सामान्यतः मण्डल विरोधियों को क्या आपत्तियाँ थीं ?

उत्तर इस रिपोर्ट के विरुद्ध आमतौर पर दो आपत्तियाँ की जा रही थीं। एक तो यह कि यह समाज को जातियों में बांटने वाली है और दूसरी यह कि यह योग्यता के विरुद्ध है। पहली आपत्ति इसलिये निराधार है कि हमारा समाज पहले से ही जातियों–जनजातियों में भयानक रूप से बंटा हुआ है। यह स्थिति दो ढाई हजार साल से है और इसमें आज भी कोई बदलाव नहीं आया है। आज भी हमारे समाज की प्राथमिक निष्ठा जाति के प्रति है। राष्ट्रपति से लेकर चपरासी तक और न्यायाधीश से लेकर चाट पकौड़ी बेचने वाले तक कोई जांति वाद से मुक्त नहीं है। अपवाद स्वरूप कुछ व्यक्तियों को छोड़कर जिन्हें दीप लेकर ढूढ़ना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में यह कहना कि मण्डल रिपोर्ट हमें जातियों में बांटेगी कोरा वितंडावाद है।

प्रश्न 3 इस रिपोर्ट के लागू होने से सवर्ण छात्रों में जो प्रतिक्रिया हुई उन्होंने आत्मदाह जैसी कार्यवाहियां की। उससे पूरा सामाजिक परिदृश्य तनाव से घिर गया।

आप इसके लिए किसे दोषी मानते हैं ?

उत्तर इस तरजीही व्यवस्था से जिन लोगों को नुकसान होता है उनमें जलन भी पैदा होती है। जैसे हमारे यहां सवर्ण जातियों में दिखाई देता है। प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने आत्मदाह जैसी कार्यवाहियां कीं और पूरा सामाजिक परिदृश्य तनाव से घिर गया था। शुरू से डा0 अम्बेडकर ने सामाजिक मुद्दों को लेकर दलित जातियों के उत्थान के लिए आन्दोलन शुरू किया था लेकिन बाद में पूना समझौते बाद उनका आन्दोलन केवल दलित जातियों तक सीमित हो गया। अगर अम्बेडकर चाहते तो पिछड़ों को भागीदारी दलित जातियों के साथ संवैधानिक उपबन्धों में मिल जाती। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दूसरा पहलू यह था कि मण्डल रिपोर्ट लागू होने से पहले जनमत तैयार नहीं किया गया था। इसके लिये किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

प्रश्न 4 मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की कार्यवाही यद्यपि सोशलिस्टों के एजेण्डे को ही फलीभूत करने का कदम था। फिर भी मधुलिमये जैसे दिग्गज सोशलिस्ट इसको हजम नहीं कर पाये। उन्होंने वी0पी0 सिंह की जमकर आलोचना क्यों की ?

उत्तर विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की जो घोषणा की उसकी प्रेरणा सामाजिक न्याय की स्थापना के प्रति प्रतिबद्धता कतई नहीं थी। वी0पी0 सिंह केवल देवीलाल को परास्त करना नहीं चाहते थे। वे अजीत सिंह पर भी चोट करना चाहते थे। ऐसा लगता है कि उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि सभी किसान समूहों की एकता, जो जनता दल के थोपकर जन–समर्थन का आधार था समाप्त हो। अतः उन्होंने जाट–सैनी बनाम यादव, गूजर का द्वन्द खड़ा किया और मण्डल आयोग का हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर पिछड़े वर्गों की सूची से जाट–सैनियों का नाम निकाल बाहर करने की योजना बनायी। हालांकि ये सब जातियां अछूत श्रेणी में आती थीं और उनका रहन–सहन तथा हुक्का पानी एक है। राज्य और केन्द्र की समान सूची की बात कर वी0पी0 सिंह आरक्षण के दायरे से मध्य प्रदेश के कुर्मी और उड़ीसा के खेड़ापत किसानों को बाहर रखना चाहते थे। वी0पी0 सिंह ने नये नीति वक्तव्य की घोषणा के पहले वामपंथी दलों तथा भा0ज0पा0 से कोई औपचारिक वार्तालाप नहीं किया, न ही उन्होंने कांग्रेस तथा अन्य दलों से कोई प़रामर्श किया। इतने महत्वपूर्ण सवाल को

गुटवंदी के शतरंज का एक चाल मात्र समझना बहुत गलत था। ऐसा करना एक पक्ष से आत्मघात था। पर वी0पी0 सिंह जो समान दृष्टि के थे इसकी अपेक्षा नहीं थी। दूसरा पहलू यह भी था कि वी0पी0 सिंह मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने में काफी बिलम्व लगा रहे थे। इस कारण मधुलिमये ने उनकी आलोचना की।

प्रश्न 5 उत्तर मण्डल काल में जब सत्ता केन्द्रों से सवर्णों का एकाधिकार समाप्त कर पिछड़े वर्ग के नेता पदासीन हुये तो वर्णव्यवस्था विरोधी आन्दोलन व्यवहारिक स्तर पर कमजोर क्यों पड़ गया और पिछड़ों की छवि दलितों के बीच नये खलनायक के रूप में स्थापित क्यों हुई।

उत्तर जब राजनीति में विचारधारा और मूल्यों का पतन हो जाता है तो स्वाभाविक रूप से राजनीति का यही हश्र होता है। उत्तर मण्डल काल में जब सत्ता केन्द्रों से सवर्णों का एकाधिकार समाप्त कर पिछड़े वर्गों के नेता पदासीन हुये तो वर्ण व्यवस्था विरोधी आन्दोलन व्यवहारिक स्तर पर कमजोर पड़ गया। ऐसा नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न 6 आरक्षण व्यवस्था की प्रासंगिकता को वर्तमान संदर्भो में आप किस तरह आंकते हैं ?

उत्तर जाति व्यवस्था को समाप्त करने का एक मात्र उपाय अभी आरक्षण ही दिखता है। समता मूलक समाज की स्थापना भी इससे हो सकती है।

मेरे नजरिये से अनुकूल औजार और कोई नहीं है।

प्रश्न 7 वर्तमान समय में कैसे विकल्प की आवश्यकता है?

उत्तर वर्तमान समय में समाजवाद ही एक ऐसा रास्ता है जिस पर मण्डलवादी ताकतों को एक होकर काम करना होगा। तभी वर्ण व्यवस्था विरोधी ताकतें कमजोर होंगी। जाति व्यवस्था टूटेगी और समता मूलक समाज की स्थापना होगी।

## राजकिशोर : साक्षात्कार (27.01.06)

(वरिष्ठ पत्रकार एवं चिन्तक)

प्रश्न 1 आप पत्रकार के साथ–साथ सोशलिस्ट आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से शामिल हुये हैं और ''पिछड़ों ने बांधी गांठ, सौ में पावें साठ'' जैसे नारों के तहत काम किया है। वी0पी0 सिंह ने जब मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की घोषणा की थी तो आपको कैसा लगा था ?

उत्तर वी0पी0 सिंह ने जब मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने की घोषणा की थी तो मुझे अच्छा भी लगा था और बुरा भी। अच्छा इसलिये कि पिछड़ी जातियों को प्रशासन में हिस्सा मिलने जा रहा था और बुरा लगने की बात यह थी कि आरक्षण से सम्बन्धित कोई योजना तभी सफल होती है जब समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था कायम करने के लिये जो कोशिश वी0पी0 सिंह ने की उससे समस्त राजनीति में मण्डल रिपोर्ट से कोई मेल नहीं था। इसलिये यह आरोप सही जान पड़ता है कि यह एक रणनीतिक कदम था।

प्रश्न 2 इस रिपोर्ट के लागू होने से सवर्ण छात्रों में जो प्रक्रिया हुई, उन्होंने आत्मदाह जैसी कार्यवाहियाँ कीं,

उससे पूरा सामाजिक परिदृश्य तनाव से घिर गया। आप इसके लिये किसे दोषी मानते हैं ?

उत्तर आत्मदाह जैसी कार्यवाहियों के पीछे दो बातें थीं— पहली बात यह कि सवर्ण समाज को यह नहीं बताया गया कि आरक्षण के विस्तार की योजना किन बड़े लक्ष्यों से प्रेरित है, वास्तव में ऐसे कोई लक्ष्य थे ही नहीं जिससे समाज को कायल किया जाता। दूसरी बात यह है कि तब तक भारत में रोजगार के जो अवसर थे वे मुख्यतः सरकारी नौकरियों में थे इसलिये गैर पिछड़े छात्रों को भविष्य अन्धकारमय लग रहा था।

प्रश्न 3 मण्डल आयोग की रिपोर्ट के प्रभाव को परिवर्ती राजनीतिक परिस्थितियों से आप किस रूप में देखते हैं ?

उत्तर मण्डल आयोग की रिपोर्ट में मुख्यतः परिवर्तन उत्तर भारत की राजनीति में ही आया क्योंकि देश के अन्य हिस्सों में पिछड़ी जातियां राजनीति और प्रशासन में अपना हिस्सा पहले से ही पा रही थी। उत्तर भारत की राजनीति में मण्डल फैसले का प्रभाव कुछ अच्छा नहीं पड़ा। दूसरा कारण यह है कि जो दल मण्डल की राजनीति कर रहे थे उनके पास सामाजिक और

आर्थिक न्याय का कोई कार्यक्रम नहीं था। इस कार्यक्रम के अभाव में लाभ सिर्फ इतना दिखाई पड़ता है कि पिछड़ी जातियों के नौजवानों को कुछ नौकरियाँ मिलीं होगीं लेकिन इससे ज्यादा नुकसान यह हुआ कि पिछड़ावादी राजनीति घमण्डी और संकीर्ण दृष्टि वाली हो गई।

प्रश्न 4 उत्तर मण्डल काल में जब सत्ता केन्द्रों से सवर्णो का एकाधिकार समाप्त कर पिछड़े वर्ग के नेता पदासीन हुये तो वर्ण व्यवस्था विरोधी आन्दोलन व्यवहारिक स्तर पर कमजोर क्यों पड़ गया और पिछड़ों की छवि दलितों के बीच नये खलनायक के रूप में स्थापित क्यों हुई ?

उत्तर ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि पिछड़ी जातियों के जो नेता सत्ता में आये उनमें से एक का भी लक्ष्य जातिवाद को समाप्त करना नहीं था। मुलायम सिंह यादव जिस पार्टी में आये थे उसका लक्ष्य यह था लेकिन उस पार्टी के अन्य कार्यक्रमों की तरह मुलायम सिंह ने इस कार्यक्रम को भी भुला दिया। चूँकि पिछड़ा वाद के पास भारतीय समाज का कोई व्यापक स्वप्न नहीं था न तो वह समता के किसी दर्शन पर आधारित था इसलिये मण्डल की बजह से पिछड़ी जातियों में

उदारता और निरंकुशता बढ़ी तथा दलितों से उनका तनाव और मजबूत तथा हिंसक हुआ। पिछड़ी जातियों और दलित नेतृत्वएक मंच पर नहीं आ पाये इसी से साबित होता है कि उनके पास कोई ऐसा विषय नहीं था जो सभी वंचित लोगों को लामबन्द कर सके।

प्रश्न 5 मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की कार्यवाही सामाजिक लोकतंत्र को साकार रूप प्रदान करने वाला प्रभावी कदम समझा जा रहा था जिसकी आवश्यकता राजनीतिक लोकतंत्र को सार्थक तौर से अमल में लाने के लिये महसूस की गई थी लेकिन परिणाम इसके ठीक विपरीत नजर आया। सामाजिक लोकतंत्र के उत्पाद मुलायम सिंह और लालू प्रसाद जैसे नेता फासीवाद के नये प्रतीकों के रूप में उभरे जिन्होंने अपनी–अपनी सत्ता शैली में लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर करने का निरन्तर आभास दिया। इस विपर्याय की व्याख्या आप किस तरह करना चाहेंगे ?

उत्तर मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने में कार्यवाही सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना का प्रभाव है। यह विवेचना हमारे बुद्धिजीवी वर्ग की थी। राजनीतिक वर्ग में इस तरह की कोई महत्वाकांक्षा न उस समय दिखाई पड़ी और न बाद में। उल्टे पिछड़ी जातियों

के उभार में उन नेताओं को और ज्यादा शक्तिशाली किया जो पहले से ही मझली जातियों के नेता के रूप में उभर रहे थे। चूँकि इस नेताओं का सम्पूर्ण आचरण लोकतंत्र विरोधी था और उसमें जगह–2 पर तानाशाही नेतृत्व में इसलिये और इसलिये भी कि 90 के दशक में भारत में राजनीतिक पतन के तेज होने का समय था। मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव जैसे नेताओं के चरित्र और राजनीति दोनों में गिरावट आई। उनमें तानाशाही का तत्व पढ़ने का एक और कारण यह था कि बहुत पहले इन्दिरा गांधी और राजीव गांधी यह दिखा गये थे कि एक समर्थ नेता बड़े लोकतंत्र को कितनी दूर तक परास्त कर सकता है।

प्रश्न 6 आरक्षण व्यवस्था की प्रासंगिकता को वर्तमान संदर्भों में आप किस तरह आंकते हैं ?

उत्तर आरक्षण व्यवस्था निश्चय ही अभी पूरी तरह प्रादेशिक हैं और इसका विस्तार दूसरे क्षेत्रों में भी किया जाना चाहिये लेकिन यह व्यवस्था तभी सफल हो सकेगी जब आरक्षण भी समय सीमा निश्चित कर और वक्त पड़ने पर थोड़ा बढ़ाकर ऐसी व्यवस्था कायम की जाये जिसमें आरक्षण अनावश्यक हो जाये।

## जनेश्वर मिश्र : साक्षात्कार (07.02.06)

राज्यसभा सदस्य (समाजवादी चिन्तक)

प्रश्न 1 आप सोशलिस्ट आन्दोलन में सक्रिय रूप से जुड़े हुये हैं और समाजवादी पार्टी का आपको थिन्कटैंक माना जाता है। आपने "पिछड़ों ने बांधी गांठ, सौ में पावें साठ" जैसे नारों के तहत काम किया है। वी0पी0 सिंह ने जब मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की घोषणा की थी तो आपको कैसा लगा था ?

उत्तर हम लोहिया के लोग हैं, वी0पी0 सिंह ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने की घोषणा के पूर्व ही 1950–60 के दौरान एक सम्मेलन प्रस्ताव पास हुआ था जिसमें विशेष अवसर का सिद्धान्त पास किया गया था। यहीं पर यह नारा दिया गया था, "पिछड़ों ने बांधी गांठ, सौ में पावें साठ" तब से हम आरक्षण की लड़ाई लड़ रहे हैं। एक सोशलिस्ट को तब भी अच्छा लगा था कि जातिप्रथा के खात्मे के लिए एक छोटा कदम उठ रहा है।

प्रश्न 2 इस रिपोर्ट के लागू होने से सवर्ण छात्रों में जो प्रतिक्रिया हुई उन्होंने आत्मदाह जैसी कार्यवाहियां की उससे पूरा सामाजिक परिदृश्य तनाव से घिर गया।

आप इसके लिये किसे दोषी मानते हैं ?

उत्तर वी०पी० सिंह ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने से पहले जनमत तैयार नहीं किया था इसकी तीखी प्रक्रिया हुई। परिणाम स्वरूप सवर्ण छात्रों ने आत्मदाह किये। इसके लिये दोषी किसी को नहीं माना जा सकता।

प्रश्न 3 मण्डल आयोग की रिपोर्ट के प्रभाव को परावर्ती राजनीतिक परिस्थितियों में आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर ये लड़ाई बहुत पहले की आजादी के दौरान भी अम्बेडकर ने यही सवाल उठाया था कि न तो कोई जन्म से बड़ा है और न छोटा। इसके साथ–साथ सामाजिक आजादी भी होनी चाहिये। उन्होंने इसकी खड़ी लाइन से तुलना की। गांधी जी ने घूम–घूम कर विचार किया, कोई छोटा या बड़ा नहीं रहेगा और सब बराबर हो जायेंगे। उसके पहले अम्बेडकर ने दलितों को कहा कि आजाद हिन्दुस्तान में क्या हालत होगी उनके आरक्षण की बात मान ली गई, जो ऊँचा होता है वो ऊँचा पाता है और जो नीचा होता है वो नीचा। पिछड़ों को बहुत कम हिस्सा मिला था। काका कालेलकर की रिपोर्ट आ गई थी। जनता सरकार ने अपने घोषणा पत्र में लागू करने की बात की। जनता

पार्टी के बाद जब इन्दिरा गांधी की हुकूमत आई तब तक लागू नहीं हुई। वी0पी0 सिंह ने कहा– हम इसे लागू करेंगे, पिछड़ों को नौकरी नहीं मिल रही थी। जनमत न बनाने के कारण आत्म हत्यायें होने लगीं और वातावरण तनाव से घिर गया। समाज में कसमसाहट की स्थिति आ गयी थी। पिछड़े वर्ग के लोग भी आगे आये। इससे निश्चय ही पिछड़ी जातियों में चेतना के स्तर पर नव जागरण का दौर शुरू हुआ।

प्रश्न 4 उत्तर मण्डल काल में जब सत्ता केन्द्रों से सवर्णो का एकाधिकार समाप्त कर पिछड़े वर्ग के नेता पदासीन हुये तो वर्ण व्यवस्था विरोधी आन्दोलन व्यवहारिक स्तर पर कमजोर क्यों पड़ गया ओर पिछड़ों की छवि दलितों के बीच नये खलनायक के रूप में स्थापित क्यों हुई ?

उत्तर वोट का गणित अलग होता है। खेमों से टूट कर लोग इधर–उधर होने लगते हैं। यह लड़ाई सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक परिवर्तन की है। मेरा मानना है जब तक समता की स्थिति में समान न पहुंच जाये दोनों में बहुत दूर के रिश्ते नहीं हैं। समता का मतलब जो सभी को एक साथ लेकर चले। इन्सानी फितरत इसको बिगाड़ने की कोशिश कर रही है और उसका

सामना होगा।

प्रश्न 5 आज पिछड़ी जातियों में केवल अजगर जातियां ही मण्डल आयोग की रिपोर्ट से ज्यादा लाभान्वित हुई हैं। अति पिछड़ी जातियों की स्थिति में मूलभूत अन्तर नहीं आया है। क्या यह सामाजिक न्याय के अनुरूप है ?

उत्तर उनसे जो लाभ लेने वाला है वह लोगों को न्यायालय में क्रीमियर के बारे में दिया है। मैं नहीं समझता कि अदालत में पिछड़ों की संख्या है ही नहीं। इसलिये छेड़खानी होती है। दस साल बाद देखा जायेगा अजगर जातियों के लिये रास्ता ढूढ़ा जायेगा। रोज–रोज रास्ते तोड़े नहीं जाते, बदले नहीं जाते।

## के0पी0 सिंह : साक्षात्कार (03.07.06)

(मण्डल राजनीति के विशेषज्ञ)

प्रश्न 1 मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के पीछे सिर्फ संकीर्ण राजनैतिक चाल थी या वास्तव में परिवर्तन की भावना से प्रेरित होकर यह कदम उठाया गया था ?

उत्तर यह सही है कि वी0पी0 सिंह का सामाजिक न्याय के आन्दोलन में भागीदारी करने का कोई पूर्व इतिहास नहीं था लेकिन यह कहना अर्ध सत्य होगा कि उन्होंने मात्र देवीलाल की वगावत से पार पाने के लिये मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने का फैसला किया था। किसी भी हुकूमत को नेक कहलाने के लिये अपने में न्याय के तत्व का समावेश करना नितान्त आवश्यक है लेकिन असमानता पर आधारित भारत के सामाजिक ढाँचे में शासन प्रशासन के लिये न्याय के सार्वभौम सिद्धान्तों का निर्वाह करना मुश्किल है। यहाँ तक कि जज की कुर्सी पर बैठकर ही भारत का आदमी फैसला सुनाते समय यह देखता है कि दोनों पक्षों में उसकी जाति के लोग किस तरफ हैं। इसलिये भारत में हुकूमत के पास नैतिक ताकत की कमी रही है। ऐसे

में मूल्यों पर आधारित व्यवस्था के निर्माण में जोर देते रहे। वी0पी0 सिंह ने जब यह देखा कि जातिगत पूर्वाग्रह के रहते वे ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने में सफल नहीं हो सकते तो जातिगत ढाँचे को ध्वस्त करने की कार्यवाही का महत्व उन्होंने समझ लिया। इसी कारण उन्होंने मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू नहीं की, बल्कि वी0पी0 ने अम्बेडकर को भारतरत्न से नवाजने का भी फैसला किया। जो जातीय व्यवस्था के कारण अपमानित और शोषित रहे। सबमें महात्वाकांक्षा जगाई जाये और उनका सशक्तीकरण हो सके। वी0पी0 सिंह का विश्वास था कि इससे जातिगत शिथिलीकरण वेमानी हो जायेगा और लोगों में निरपेक्ष न्याय दृष्टि विकसित हो सके।

प्रश्न 2 क्या यह सही है कि अगर मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने का फैसला वी0पी0 सिंह ने न किया होता तो उनकी सरकार.......... रहती और उन्हें राजनीति से पलायन न करना पड़ता।

उत्तर यह एक कुटिल धारणा है, गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्रियों में मोरारजी देसाई ने तो कोई मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू नहीं की थी और वे शक्त व ईमानदार प्रशासक माने जाते थे। लेकिन इसके बावजूद इनकी

सरकार ही असमय बीच में ही पतन का शिकार हुई। और इसके बाद उनकी भी सत्ता में कभी वापिसी न हो सकी। चन्द्रशेखर जी को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने मण्डल के कारण निर्धन व जातिगत रणनीति को शान्त किया लेकिन उनकी सरकार भी समर्थन वापस लेकर चार माह के अन्दर गिरा दी गई। इनकी कार्य कुशलता का बड़ा बखान किया गया था लेकिन नये चुनाव में इनकी पार्टी मात्र 5 सीटें हासिल कर सकी। मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के फैसले की बजह से वी0पी0 सिंह इन लोगों की तुलना में वेहतर हालत में रहे। इन्हें 1996 में संयुक्त मोर्चा सरकार का नेतृत्व करने का आमंत्रण मिला। इसे उन्होंने स्वयं ही स्वीकार नहीं किया। राजनीति से उनको मुखर वर्ग की आलोचना का सामना करने मे अक्षम होने के सुकुमार स्वभाव के कारण पलायन करना पड़ा। मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने के फैसले की बजह से नहीं।

प्रश्न 3 मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के फैसले का समकालीन राजनीति पर कितना प्रभाव हुआ ?

उत्तर इस एक फैसले ने भारत के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को इतना ज्यादा झकझोरा कि

इतना बड़ा बदलाव पहले कभी नहीं हुआ था। इस रिपोर्ट की बजह से जो परिदृश्य नियमित हुआ। उसी के कारण भाजपा जैसे रूढ़िवादी दल को उ0प्र0 में लोध जाति के कल्याण सिंह को मुख्यमंत्री बनाना पड़ा। रिपोर्ट लागू होने के बाद 15 सालों की अवधि में सीमित कार्यकाल के लिये उ0प्र0 के सिर्फ दो सवर्ण मुख्यमंत्री राम प्रकाश गुप्त व राजनाथ सिंह सत्ता में बैठ पाये जबकि इसके पहले कुछ राज्य में ब्राह्मण व ठाकुर मे से ही बारी–बारी से मुख्यमंत्री बनाने की परम्परा सी बन गई थी। वसपा के आन्दोलन को भी जो तूफानी गति मिली उसमें मण्डल झंझावत का भारी योगदान रहा। लोकसभा और अन्य राज्यों में सामाजिक सन्तुलन में काफी सुधार की स्थिति बनी।

प्रश्न 4 मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू होने के बाद देश की राजनैतिक गुणवत्ता में कितना सुधार आया ?

उत्तर विडम्बना यह है कि इस मामले में नकारात्मक प्रगति हुई। दुर्भाग्य से पिछड़े और दलितों का नेतृत्व फासिस्ट नेताओं के हाथ में चला गया। जिन्होंने भ्रष्ट और स्वेच्छाचारी शासन का संचालन किया। बिहार में लालू प्रसाद यादव और उ0प्र0 मुलायम सिंह यादव और मायावती इसके उदाहरण हैं।

प्रश्न 5 उत्तर मण्डल की राजनीति ने शोषित समाज की एकता की स्थिति में कितना योगदान कर पाया ?

उत्तर दुर्भाग्य से उत्तर मण्डल की राजनीति में शोषित समाज की एकता मजबूत होने के बजाय विखराव की शिकार हुई है। दलित चिन्तकों का एक वर्ग पहले से ही यह मानता था कि आक्रामक पिछड़ी जातियों की सत्ता दलितों के लिये क्रूर साबित होगी। और उनकी आशंका चरितार्थ सिद्ध हुई। पिछड़ी जातियों के अधिकांश मुख्यमंत्रियों ने दलित समुदाय को यथावत स्थिति में रखने की कोशिश की। दलित नेताओं को बराबरी का सम्मान देने में भी उन्हें पर्याप्त हिचक रही है।

प्रश्न 6 आपकी दृष्टि में मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने से समाज में हुये बदलाव को लेकर नकारात्मक अधिक है ऐसा क्यों ?

उत्तर ऐसा नहीं है, उत्तर मण्डल की राजनीति में बहुत सारी ऐसी बातें हो रही हैं जो सुखद और सकारात्मक हैं। एक समय था जब वसपा की सभाओं में कांशीराम ऐलान करते थे कि कोई सवर्ण बैठा हो तो उठकर चला जाये। उन्हें सवर्णों के समर्थन की जरूरत नहीं है लेकिन अब उनकी अगली पीढ़ी की नेता दलित–ब्राह्मण

सम्मेलन करा रही हैं। इसी तरह मुलायम सिंह यादव ने पिछड़ों और दलितों को अलग से बात करने को महत्व देना बन्द कर दिया है। उन्होंने कन्या विद्या धन योजना के लाभ से सवर्णों को अलग नहीं रखा। इसी तरह वजीफा व ग्रामों में भूमि पट्टे देने में उन्होंने सामान्य वर्ग को भी शामिल कर दिया है। मण्डल आयोग की रिपोर्ट के कारण जाति अतिरिक्त सम्मान अर्जित करने का हथियार नहीं रह गयी तो जातिगत अलगाव की राजनीति धीरे–2 समाप्ति पर है। यह एक शुभ लक्षण है कि देर सवेर इससे जनतंत्र के बुनियादी मुद्दों की राजनीति को मजबूती मिलेगी।

# संदर्भ ग्रन्थ सूची

# Bibliography

## मूल स्रोत : (Primary Sources)


1. KaKa Kalelkar Comission Recommendations : (for 830 must back words castes and tribes. 1995)

2. Mandal Commission : (A Dissent note by L.R. Naik a Member of mandal commission)

3. मंडल कमीशन प्रतिवेदन : (बहुजन पब्लिकेशन ट्रस्ट, नई दिल्ली 1991)

4. Rigveda (with Hindi translation) : Sanskriti Sansthan Bareili ,1965

5.- Mahabharat with Hindi Translation 6 vols : Gorakhpur, Gita Press 2053 V.S.

6. Ramayan (Valmiki) with Hindi Translation : Gorakhpur, Gita Press, 2053 V.S. (In Two Vols.)

7. Shrimad Bhagwat MahaPuran, With Hindi Translation, Two Vols. : Gorakhpur, GitaPress, 2053, V.S.

National Commission for Scheduled Castes & Scheduled Tribes, Vol-I, IV Report, 1996-97-98. Ministry ; of Welfare, Govt. of India, Delhi.

Report of the Backward Class Commission, Vol-I & II, 1980, Govt. of India, Delhi.

Ist Backward Class Commission (Kaka Kalelkar) Report, Vol-I, 1955, Govt. of India, Delhi.

P S Krishnan Report on Empowerment of Backward Classes, Tenth Plan (2002-07), Govt. of India, Delhi.

Annual Report ; 2003-04, Ministry of Social Jutice and Enpowerment, Govt. of India, Delhi.

Performance Budget of Ministry of SJ & Emp ; 2004-05, Govt. of India, Delhi.

Approach Paper (On Economic Empowerment), Tenth Plan (2002-07), Govt. of India, Delhi.

NBCFDC : Objective, Organisation, Operating Procedure (Booklet), Ministry of Welfare, Govt. of India, Delhi - 16 .

H.P. State Commission for OBCs : 2002, Recommendation No - XXXVII, Block : 38, SDA Complex, Cosumpati, Shimla.

Karnataka Backward Classes Commission Report, Vol - 1 , Part - 1 , 1975 Govt. of Karnataka, Banglore.

National Commission for Backward Classes, Annul Report 2003 - 2004, Ministry of Social Justice & Empowerment , New Delhi.

Report of the Depressed Classes (Starte Committee) Bombay Presidency, March - 1930, Rpt. 1950, Govt.Press, Kolhapur .

"Judgement Writ Petition (Civil) No. 930 of 1990, Vol - I & II Ministry of Welfare, Govt. of India, New Delhi.

"Affirmative Disintegration : India's most Dangerous Decade" by Shyam J. Kamath, The Freeman, Vol - 41, No. 5, May 1991.

## द्वितीयक स्रोत : (Secondary Sources)

### (अ) पुस्तकें (Books)

Akinchan. S, : "Caste, Class and politics" , 1995, Gyan Publishing House , N. Delhi.

Beteille. Andre : " Castes; old and New Essays in Social Structure and Social Stratification 1969, Asia publishing House , Bombay.

Barman B.K. Roy : "Beyond Mandal and after backward classes in Persective" .

Beteille. Andre : " India's : Equal Opportunity for all and Special opportunities for some : Development and Democracy , 1993 Johannesburg.

Beteille Andre : "The backward classes and the new social order , in the idea of nature inequality and other essays. 1983 , OUP , Delhi.

Beteille Andre : "Society and Politics in India : Essays in a Comprarative perspective, 1991 , The Anthlone Press, London.

Bhattacharya; Jogindra Nath ; : " Hindu Caste and sects, 1995, Munshiram and Manoharlal Publisher Pvt. Ltd.

Benjamin . Joseph ; : "Scheduled Castes in Indian Politics and Society", 1989, Ess Ess Publications, New Delhi.

Burman; B.K. Roy; : "Mandal and Aftermath : Backward Classes in Per," 1992, Mittal Publications, New Delhi.

Bakshi ; SR and Bala Kiran; (ed.) : "Social Status And Development of Backward Classes", 2000, Deep & Deep Publications, New Delhi.

Crooke, W. : "The Tribes and Castes of North-Western India , Vol-1, Rpt; 1974 Cosmo Publications, N. Delhi.

Christophe Jaffrelot; : "India's Silent Revolution : The Rise of the Low Castes in North Indian Politics", 2003, Permanent Black, New Delhi.

Clark. D. Cunningham & Menon N R Madhav : "Seeking Equality in Multicultural Societies"October17, 1997.

Dumont. L; : "Homo Hierarchicus", 1998, Oxford University Press, New Delhi.

D'Souza. Victor.S; : "Inequality and its Perpetuation, 1981, Manohar Publications, Delhi.

Devi Shakuntla ; : "Caste System in India", 1999, Pointer Publishers , Jaipur.

Dube S.C.: : "Indian Society", 1990, National Book Trust, Delhi.

Dutt, N.K.; : "Origin and Growth of Caste in India", Vol.1 & 2 Firma KLM Pvt. Ltd. ,Calcutta 1986.

Dane S.S. : "India from primitive communism to slavery"

Das, Arvind N. : "High living, plain thinking : Mandalised Metropolitan mind" A.A. Engineer, ed., Mandal Commission Controvarsy, Delhi, Ajanta Publications. 1991

Dasai, I.P. : "Caste, Caste Conflict and Reservation" Delhi, Ajanta Book International 1985

Dashkin, Lelah : "Backward classes benefits and social class in in India" in EPW

Engineer, Asghar Ali : "Mandal Commission Controvarsy" Delhi, Ajanta Publications. 1991

Fuller. C.J. (ed.) : "Caste Today", 1996, Oxford University Press, New Delhi

Harendra Rudi : "Minorty Rights and Reservation policy :Towards conherence, New frontiersin Education. 1966

Haredia, Rubi : "Minontry Rights and Reservation Policy :towards coherence and consistence, New frontiers in Education. 1986

Guha Ramachandra & Parry, Jonathan P, : "Institutions & Inequalities", Essays in Honour of Andre Beteille".1999, Oxford University Press, New Delhi.

Ghurye G.S., : "Caste and Raxe in India" Rpt, 1996, Popular Prakashan Pvt; Ltd; Bombay.

Galanter Marc ; : "Law and Society in Modern India, 1989, OUP, New Delhi.

Galanter Marc ; : "Pursuing Equality : An Assessment of Indian Policy of Compensatory Discrimination for Disadvantaged group", in Kaviraj. S; (ed.) Politics in India, 1997, OUP, New Delhi.

Hutton. J.H; : "Census of India", Vol-1, 1986, Gian Publishing House, Delhi.

Hooda. Sagar Preet ; : "Contesting Reservations", 2001, Rawat Publications, Jaipur.

Kaladia K.M. : "The Criminal Tribes of India Sociology bulletin" New Delhi. 1952

Kothari, Rajni : "Caste and politics : the great sewlar up surge" is a Engineer ed Mandal Commission controversy, Delhi : Ajanta Publications. 1991

Khan, Munmtaj Ali : "Reservation for schedule case" : Gaps between policy and implementation New Delhi : Uppal Publishing house 1994.

Kothari, Rajni (ed.) : "Caste in Indian Politics", 1995, Orient Lontman Ltd; Hyderabad.

Lal . A.K., : "Protective Discrimination, Ideology and Praxis, 2002, Concept Publishing House, New Delhi .

Mathur , M.L., : "Encyclopaedia of Backward Castes : Mandal, Media and Aftermath, Vol - IV, 2003, Kalpaz Publications, Delhi .

Majumdar . D.N; & Madan . T.N : "An Introduction to Social Anthropology", 1988, National Publishing House, New Delhi.

Mohanti K.K. : "Social Mobility and Caste Dynamics", 1993, Rawat Publications, Jaipur.

Mishra, Jitendra : "Equality Versus Justice" : the problem of reservation For Backword classes 1996 .

N.N. Dubey & Ratha Murdia : "Administration of policy and programs for backward classes" 1975

Omvedt Gail : " Dalits and the Democratic Revolutions : Dr. Ambedkar & and Dalit Movement in Colonial India", 1994, Sage Publications , New Delhi.

Partha, S. Ghosh; : "Positive Discrimination in India; A Political Analysis, Vol - XV, No.2 July , 1997, Ethnic Studies Report.

Panandiker, V.A. Pai : "The Politics of Backwardness", 1997, Konark Publishers Pvt. Ltd. Delhi.

Prasad . Anirudh : "Reservational Jutice to OBCs", 1997, Deep & Deep Publications, New Delhi .

Risley. H.H. : "The Tribes and Castes of Bengal" Vol-1; Rpt. 1981 Firma Mukhopadhyay, Calcutta .

S.R. Maheshwari : "The Mandal Commission and Mandalisation" .

Singh S.N. : "Reservation policy for backward classes"

Srinivas, M.N. : "Social Change in Modern India", 1977, Orient Longman, New Delhi .

Srinivas, M.N. : "Caste : Its Twentieth Century Avtar, 1996, Viking Press, New Delhi.

Srinivas, M.N. : "Caste in Modern India & Other Essays", 1970, Asia Publishing House, Bombay.

Surana Pushpendra : "Social Movements and Social Structure", 1983, Manohar Publications, New Delhi .

Shah, Ghanshyam (ed.) : "Social Transformation in India", Vol-1, 1997, Rawat Publications, jaipur.

Shah, A.M. & Other (ed.) : "Social Structure and Change : Development & Ethnicity (Chapter on Criteria for identification of BCs by BKR Burman), Vol-IV, 1997 Sage Publications, New Delhi .

Sharma, Premlata : "The Problems of Dalits and OBCs; 2002, Book Enclave, Jaipur .

Sharma. K.L. : "Social Inequality in India", 1999, Rawat Publications, Jaipur.

Sharma. K.L. : "Caste and Class in India", 1994, Rawat Publications, Jaipur.

Sharma Rama : "Bhangi : Scavanger in Indian Society : Marginality, Identity and Politicalization of the Community, 1995, M D Publications Pvt: Ltd; New Delhi .

Sharma S.R. : "Protective Discrimination : OBCs in India, 2002, Raj Publications, New Delhi .

Venkateswarlu. D : "Harijan and Upper Caste Conflict : A Study of the Andhra Pradesh"; Discovery Publishing House, New Delhi .

Vakil, A.K. : "Reservation Policy and Scheduled Castes in India",1985, Ashish Publishing House, New Delhi.

Wilson, John : "Indian Caste", 1976, Deep Publication, New Delhi.

Yadav, K.C. : "India's Unequal Citizens : A Study of OBCs" , 1994, Manohar Publishers & Distributors, New Delhi .

Yadav K.S. : "Indian unequal citizens" ( A Study of O.B.C.A.)

श्री निवास एम.एन. : ''आधुनिक भारत में जाति'' राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली

वर्मा लक्ष्मीकान्त : ''समाजवादी आन्दोलन लोहिया के वाद'' सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ

कपूर, मस्तराम : ''मण्डल रिपोर्ट : वर्ण व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर, लेखक मंच द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली।

रशीद उद्दीन खान : भारत में लोकतन्त्र , राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

राजकिशोर : जाति का जहर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

शिशिर, करमेन्दु : जाति व्यवस्था का स्वरूप और संघर्ष आधार प्रकाशन पंचकला हरियाणा

शम्भूनाथ : संस्कृति की उत्तर कथा : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

बाबा साहेब अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाड्गमय : प्रकाशक कल्याण मन्त्रालय भारत सरकार

नीलकांत : " जाति वर्ग और इतिहास" हाथ प्रकाशन, इलाहाबाद

जोशी, ओमप्रकाश : "भारत में सामाजिक परिवर्तन" रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर

राम मनोहर लोहिया : "समाजवादी आन्दोलन का इतिहास राम मनोहर लोहिया समता न्यास, हैदराबाद

शरद ओंकार : "समता और सम्पन्नता, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

दुबे अभय कुमार : " लोकतन्त्र के सात अध्याय" वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

श्री निवास एम.एन. : "आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पटना

कपूर मस्तराम : "समसामयिक प्रतिक्रियाएं, लेखक मंच, नई दिल्ली

राजकिशोर : "जाति कौन तोडेगा : प्रकाशन संस्थान , नई दिल्ली , 1998

लिमये, मधु : "राजनीति का शतरंज : वी.पी. से पी.वी. तक समता ट्रस्ट भोपाल

शंभुनाथ : जातिवाद और रंगभेद : वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली 1990

सुरेन्द्र मोहन : समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली

सच्चिदानन्द सिन्हा : कास्ट सिस्टम : मिथ्स रियलिटी चैलेंज पब्लिशिंग हाउस , नई दिल्ली

## (ब) लेख (Article)

Article on "Reservation / Set Asides in Services in India & USA", by Sheela Rai. Practical Lawyer, 1998 - 2003 Estern Book Company, Lucknow.

"Indentifying Other Backward Classes" by A. Ramaiah, Economics & Political Weekly, 6 June, 1992.

"Moment in a History of Reservations" by Bhagwan Das, Economic & Political Weekly, 28 October, 2000.

"Scheduled Castes & Scheduled Tribes : The Reservation Debate" by Prakash Louis, Economics & Political Weekly, 21 June, 2003.

"Muslim Reservation : No Provision for Community quotas" by D L Seth, Times of India, 20 September, 1997.

"Do Muslims Need Reservations : by M. Mujtaba Khan & Dipankar Gupta, The Ecnomic Times, New Delhi, 26 July, 2004.

"Caste based Census will compound past Blunders". by Ghanshyam Shah, Times of India, New Delhi, 22 May, 1998.

"Why Caste Numbers Still Count" by S M Dahiwale Times of India, New Delhi, 31 July, 1998.

"Census Options : Caste in as Caste Does" by Narendra Pani, Times of India, New Delhi, 1998.

"Divide & Rule, Counting on Caste in Census" by M N Srinivas, Times of India, New Delhi, 7 May, 1998.

"Dronacharya Mindset : Private Sector quotas to improves efficiency" by Gail Omvedt, Times of India, New Delhi, 3 September, 2004.

"Right to Reservation (Int. with Meira Kumar), Times of India, New Delhi, 8 September, 2004. "Seminar" (On Caste), June 1960.

"Issue of Reservation" by U.C. Agarwal, The Hindustan Times, New Delhi, 28 October, 1999.

"Reservation Policy for Private Sector" by Sukhadeo Thorat, Economic & Political Weekly, 19 June, 2004.

"Affirmation Without Reservation" by Pratap Bhanu Mehta, Economic & Political Weekly, 3 July, 2004.

"Reservations About Reservation" by Neera Chandhoke, The Hindu, 16 August, 2004.

"Reservation Policy for Backward Classes in India" by Kruti Dholakia.

राजकिशोर : दलितों और सवर्णों का रोटी वेटी का रिश्ता हो, अमर उजाला: 9 अक्टूबर, 1997

बृजेन्द्र राकेश : "सर्वानुमति कितनी दूर" हिन्दुस्तान, 10 मई 1992, नई दिल्ली।

सुरेन्द्र मोहन : उस तबके को उठाने के लिए चाहिए मानसिक तैयारी, संडे मेल, 14, अक्टूबर, 1990

आनन्द स्वरूप : वोट वटोरने का साधन तो नहीं है आरक्षण नवभारत टाइम्स, लखनऊ, 3 मई, 1989

बुद्ध प्रिय मौर्य : पिछड़ों ने कब डॉ. अम्बेडकर को नेता माना नवभारत टाइम्स, लखनऊ, 11 अगस्त,1990

नरेन्द्र सिंह पुंडीर : पिछड़े वर्गो के विकास के दूसरे पहलू नवभारत टाइम्स, लखनऊ, 2 मई, 1993

किशोरी दास : अति पिछड़ों का जमाना कब आयेगा जनसत्ता 8 अर्पेल,1993

मस्तराम कपूर : राजनैतिक आरक्षण का खतरनाक रास्ता 9 जनवरी, 1998

ललित मोहन मिश्र : आरक्षणनीति और डॉ. लोहिया नवभारत टाइम्स, लखनऊ, 12 मई, 1991

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : विन्देश्वरी प्रसाद मंडल और उनका आयोग चौथी दुनिया, अक्टूबर,1990

महरउद्दीन खां : आरक्षण विरोध के मुखौटे नवभारत टाइम्स, 12 सितम्बर, 1990

हृदय नारायण दीक्षित : "विषमता के विरूद्ध न्याय का शंखनाद"
मासिक पत्रिका "संदेश" उ0प्र0 शासन, लखनऊ

कौशलेन्द्र प्रताप यादव : "पिछड़े वर्ग के पिछड़ेपन का राज"
कुबेर टाइम्स, 10 नवम्बर, 1990

रामसेवक श्रीवास्तव : सवर्ण और दलित के बीच चौडी होती खाई
दैनिक हिन्दुस्तान, 8 सितम्बर, 1994

राजीव शुक्ल : "उत्तर प्रदेश : दलित – सवर्ण राजनीति का द्वन्द"
दैनिक जागरण, 11 अगस्त, 1996

रामाधार गिरि : आज भी प्रासंगिक है लोहिया जी

कृष्णदत्त पालीवाल : अम्बेडकर और गांधी दो दृष्टिकोण थे
ज़नसत्ता, 23 सितम्बर, 1994

सत्य मित्र दुबे : ज़ाति पूछो तो क्यों पूछों साधु की
दिनमान टाइम्स, 27 अक्टूबर, 1990

राजकिशोर : हरिजन दलित और उससे आगे
नवभारत टाइम्स, 22 फरवरी, 1994

रमेश नैयर : जातीय उन्माद का फैलता लावा
दिनमान टाइम्स, 20 जून, 1992

जे. आर. पावगी : अम्बेडकर और सामाजिक समरसता
स्वतंत्र भारत, 10 अप्रैल, 1995

कमल किशोर : साम्प्रदायिकता के नये आयाम
सुपर ब्लेंज, पृ0 27

राजकिशोर : देवता चिढ़ाने के लिए नहीं होते
अमर उजाला, 6 मार्च, 1994

बीरेन्द्र सेंगर : आखिर जाट – जाटव एक दूसरे के खून के प्यासे क्यों हैं।
चौथी दुनियां, 9 अक्टूबर, 1990

राजीव चतुर्वेदी : दिशा की तलाश में दलित राजनीति
दैनिक जागरण, 28 मई, 1994

धीरूभाई सेठ : भारतीय राजनीति में वर्ग और जाति
जनसत्ता, 9 जनवरी, 1993

दिनकर शुक्ल : विरोध में उठा मलाईदार तबका
जनसत्ता 18 जनवरी, 1993

आर्यभूषण भारद्वाज : गांधी जी और दलित राजनीति
कुबेर टाइम्स, 9 फरवरी, 1992

शशिधर खां : आरक्षण के सूत्रों से घिरा बिहार
जनसत्ता, 26 मार्च, 1993

सुभाष गाताडे : आरक्षण में सेंध
जनसत्ता, 3 अगस्त, 2005

प्रो. भीम सिंह : कैसे होगी पिछड़ों की समुचित भागीदारी
हिन्दुस्तान, 20 जून, 2001

भारत डोगरा : अति पिछड़ी जातियों के हित की चिंता
राष्ट्रीय सहारा, 13 जुलाई, 2001

डॉ. श्यौराज सिंह वैचेन : क्या दलित ब्राह्मण बन सकते है
हिन्दुस्तान, 3 मई, 2001

जी. एस. भार्गव : आरक्षण के रक्षा कवच के वावत
हिन्दुस्तान, 26 नवम्बर, 2005

| | | |
|---|---|---|
| बलराम शास्त्री | : | सामाजिक न्याय , संविधान और आरक्षण<br>दैनिक आज 17 नवम्बर, 2005 |
| विमल कुमार | : | रिजर्वेशन से समाज नही बदलेगा ,<br>नव भारत टाइम्स, 27 जनवरी,06 , नई दिल्ली |
| चन्द्रभान प्रसाद | : | कहां खो गया सामाजिक न्याय<br>. नव भारत टाइम्स, 20 दिसम्बर,05 |

## (स) पत्र एवं पत्रिकायें (Magzines)

| | | |
|---|---|---|
| दलित चेतना | – | नई दिल्ली |
| परीक्षा मंथन | – | इलाहाबाद |
| भारत अश्वघोश | – | नई दिल्ली |
| असली भारत | – | नई दिल्ली |
| संचेतना | – | नई दिल्ली |
| समकालीन जनमत | – | पटना |
| समकालीन तीसरी दुनिया | – | नई दिल्ली |
| हंस | – | नई दिल्ली |
| संदेश | – | लखनऊ |
| टाइम्स ऑफ इन्डिया | – | नई दिल्ली |
| नवभारत टाइम्स | – | नई दिल्ली |
| हिंदुस्तान | – | नई दिल्ली |
| स्वतन्त्र भारत | – | नई दिल्ली |
| दैनिक जागरण | – | लखनऊ |
| अमर उजाला | – | लखनऊ |
| दैनिक भास्कर | – | भोपाल |
| जनसत्ता | – | लखनऊ |
| राष्ट्रीय सहारा | – | लखनऊ |